महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

(संसद द्वारा पारित अधिनियम 1997, क्रमांक 3 के अंतर्गत स्थापित केंद्रीय विश्वविद्यालय)

Mahatma Gandhi Antarrashtriya Hindi Vishwavidyalaya, Wardha

(A Central University Established by Parliament by Act No.3 of 1997)

ज्ञान शांति मैत्री

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम (80 क्रेडिट)

तृतीय सेमेस्टर

दूर शिक्षा निदेशालय

महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा

पोस्ट - हिंदी विश्वविद्यालय, गांधी हिल्स, वर्धा - 442001 (महाराष्ट्र)

मार्ग निर्देशन समिति

प्रो. गिरीश्वर मिश्र
कुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. आनंद वर्धन शर्मा
प्रतिकुलपति, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

प्रो. अरबिंद कुमार झा
निदेशक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

पाठ्यचर्या निर्माण समिति

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शिवसिंह बघेल
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

श्री अमोद गुर्जर
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी
असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

संपादन मंडल

प्रो. मनोज कुमार
निदेशक – म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. मिथिलेश कुमार
असिस्टेंट प्रोफेसर , म.गां.फ्यू. गु. समाज कार्य अध्ययन केंद्र, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

डॉ. शंभू जोशी, असिस्टेंट प्रोफेसर एवं पाठ्यक्रम संयोजक, दूर शिक्षा निदेशालय, म.गां.अं.हिं.वि., वर्धा

इकाई लेखन

खंड-1, 2 एवं 3
डॉ. मिथिलेश कुमार
खंड 2 इकाई-4 अनुराग पाण्डेय

खंड-4
इकाई 1,2,3 अनुराग पाण्डेय
इकाई-4 डॉ. शंभू जोशी

कार्यालयीन एवं मुद्रण सहयोग

श्री विनोद वैद्य
अनुभाग अधिकारी, दू.शि. निदेशालय

श्री महेन्द्र प्रसाद
सहायक संपादक, दू.शि. निदेशालय

डॉ. मेघा आचार्य
प्रूफ रीडर, दू.शि. निदेशालय

सुश्री राधा
टंकक, दू.शि. निदेशालय

अनुक्रम

क्र.सं.	खंड का नाम	पृष्ठ संख्या
1	खंड - 1 **समाज कार्य में अनुसंधान के मूल तत्व**	4-34
2	खंड - 2 **समाज कार्य में अनुसंधान विधियां**	36-93
3	खंड - 3 **आँकड़ा संग्रहण की विधियाँ**	95-132
4	खंड - 4 **विश्लेषण प्रविधि**	134-174

ज्ञान शांति मैत्री

MSW12 समाज कार्य अनुसंधान

खंड परिचय

प्रिय विद्यार्थियों,

एमएसडब्ल्यू पाठ्यक्रम के तृतीय सत्र के **प्रश्नपत्र MSW 12 'समाज कार्य अनुसंधान'** में आपका स्वागत है। इस प्रश्नपत्र को **चार** खंडों में विभाजित किया गया है।

पहला खंड समाज कार्य में अनुसंधान के मूल तत्वोंपर केंद्रित है। इस खंड में सामाजिक अनुसंधान क्या ? सामाजिक अनुसंधान की परिभाषा क्याहै ? पर प्रकाश डाला गया है। आगे सामाजिक अनुसंधान के प्रकारों को रेखांकित किया गया है। अंत में विभिन्नशोध प्रारूपों का उल्लेख किया गया है।

दूसरा खंडसमाज कार्य में अनुसंधान विधियों से संबंधित है। इस खंड में बताया गया है कि शोध समस्या निर्धारण किस प्रकार किया जाता है? शोध के महत्वपूर्ण अंग के रूप में परिकल्पना के महत्व को दर्शाते हुए इसके विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डाला गया है। प्राथमिक एवं द्वितीयक स्रोतों के संबंध में जानकारी प्रदान की गयी है। इसके अतिरिक्त विभिन्न अनुसंधान विधियों को बताया गया है ।

तीसरे खंड में आँकड़ा संग्रहण की विभिन्न विधियों पर प्रकाश डाला गया है। जिसमें प्रतिचयन, प्रश्नावली एवं अनुसूची, साक्षात्कार एवं अवलोकन महत्वपूर्ण हैं। इन विभिन्न विधियों का संक्षिप्त परिचय देकर इनके विभिन्न आयामों को प्रदर्शित किया गया है । साथ ही इनके गुण एवं दोषों पर भी प्रकाश डाला गया है।

चौथे खंड में विश्लेषण प्रविधि का उल्लेख किया गया है। इसमें विश्लेषण प्रविधि का सामान्य परिचय दिया गया है। शोध में प्रयुक्तकी जाने वाली सांख्यिकी की अवधारणा का उल्लेख किया गया है। शोध रिपोर्ट किस तरह लिखी जाती है और उसमें संदर्भ लेखन के विभिन्नतरीकों को समझाया गया है।

खंड 1

समाज कार्य में अनुसंधान के मूल तत्व

इकाई – 1

सामाजिक अनुसंधान
(SOCIAL RESEARCH)

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.3 सामाजिक शोध का अर्थ एवं परिभाषा
1.4 सामाजिक शोध का उद्देश्य
1.5 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता
1.6 सामाजिक शोध और समाज कार्य शोध
1.7 सारांश
1.8 बोध-प्रश्न
1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप : –

- सामाजिक शोध के अर्थ व परिभाषा को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शोध के उद्देश्यों को रेखांकित कर सकेंगे।
- सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता का वर्णन कर सकेंगे।
- शोध प्रक्रिया के चरणों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

सामाजिक शोध अन्वेषण, विश्लेषण तथा सत्यापन करने की एक व्यवस्थित पद्धति है, जिसका उद्देश्य ज्ञान का प्रमाणीकरण तथा विस्तार करना है । शोध को मानवीय सभ्यता के चरम विकास का मूल आधार माना गया है। शोध में वैज्ञानिक पद्धतियों के प्रयोग द्वारा क्या, क्यों, कैसे, कब आदि प्रश्नों के उत्तर को ढूँढा जाता है। समाजशास्त्रीय ज्ञान के आधार पर ही सामाजिक यथार्थ को सरलता से समझा जा सकता है। समाजशास्त्रीय ज्ञान का जन्म सामाजिक शोध से होता है और उसका संवर्धन लगातार क्रियाशील शोध प्रक्रियाओं से होता है। सामाजिक शोध द्वारा वैज्ञनिक पद्धति के प्रयोग से सामाजिक घटनाओं,

संरचनाओं व पद्धतियों का अध्ययन किया जाता है। सामाजिक शोध में मनुष्य द्वारा मनुष्य का अध्ययन किया जाता है। अत: इसमें विशिष्ट सावधानी की आवश्यकता होती है।

बार्न्स (1977: 2-3) के अनुसार :

> *''सामाजिक शोध का विशिष्ट गुण अनिवार्यत: उस गतिविधि में पाया जाता है, जिसमें मनुष्यों द्वारा स्वयं मनुष्यों का अध्ययन किया जाता है और इस तरह की गतिविधि के साथ जुड़े नैतिक प्रश्नों का उन्हें सामना करना पड़ता है। ये नैतिक प्रश्न सामाजिक विज्ञानों में अंतर्निहित, सर्वगत और अपरिहार्य हैं।''*

1.2 सामाजिक शोध का अर्थ एवं परिभाषा

सामाजिक शोध वह क्रमबद्ध और वैज्ञानिक अध्ययन-विधि है जिसके आधार पर सामाजिक घटनाओं के संबंध में हम नवीन ज्ञान प्राप्त करते हैं अथवा विद्यमान ज्ञान को विस्तृत अथवा परिष्कृत करते हैं तथा विभिन्न घटनाओं के पारस्परिक संबंधों व उपलब्ध सिद्धांतों की पुनः परीक्षा करते हैं। दूसरे शब्दों में कहा जा सकता है कि सामाजिक घटनाओं या प्रचलित सिद्धांतों के संबंध में नवीन ज्ञान प्राप्त करने के लिए इस्तेमाल में लाई गई वैज्ञानिक विधि ही सामाजिक शोध के नाम से जानी जाती है।

सामाजिक शोध को और भी स्पष्ट करने के लिए यहाँ कुछ विद्वानों की परिभाषाओं का उल्लेख किया जा रहा है –

1. **श्रीमती पी.वी. यंग-** *''हम सामाजिक अनुसंधान को एक वैज्ञानिक कार्य के रूप में परिभाषित कर सकते हैं, जिसका उद्देश्य तार्किक एवं क्रमबद्ध पद्धतियों द्वारा नवीन तथ्यों की खोज या पुराने तथ्यों और उनके अनुक्रमों, अंतसंबंधों, कारणों एवं उनको संचालित करने वाले प्राकृतिक नियमों को खोजना है।''*
2. **सी.ए. मोज़र-** *''सामाजिक घटनाओं एवं समस्याओं के संबंध में नए ज्ञान की प्राप्ति हेतु व्यवस्थित अन्वेषण को हम सामाजिक शोध कहते हैं।''* वास्तव में देखा जाए तो, *'सामाजिक यथार्थता की अंतसंबंधित प्रक्रियाओं की व्यवस्थित जाँच तथा विश्लेषण सामाजिक शोध है।"*
3. **बोगार्डस-** *"एक साथ रहने वाले लोगों के जीवन में क्रियाशील अंतर्निहित प्रक्रियाओं की खोज ही सामाजिक शोध है।"*

इसके अलावा विभिन्न विद्वानों ने सामाजिक शोध को अपनी-अपनी तरह से परिभाषित किया है। निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता हैं कि सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का तार्किक व व्यवस्थित अध्ययन ही सामाजिक शोध है, जिसमें व्याख्या कार्य-कारण संबंधों के आधार पर की जाती है। इस प्रकार सामाजिक शोध एक वैज्ञानिक पद्धति है, जिसका उद्देश्य सामाजिक घटनाओं व समस्याओं के बारे में क्रमबद्ध व तार्किक पद्धतियों द्वारा ज्ञान प्राप्त करना है और इस आधार पर सामाजिक घटनाओं में पाए जाने वाले

स्वाभाविक नियमों के बारे में जानकारी प्राप्त करना है। सामाजिक शोधकर्ता के समक्ष अध्ययन समस्या से संबंधित दो आधारभूत शोध प्रश्नहोते हैं-

- क्या हो रहा है ? और
- क्यों हो रहा है ?

'क्या हो रहा है?' प्रश्न का उत्तर उसे विवरणात्मक शोध की श्रेणी में खड़ा कर देता है तथा 'क्यों हो रहा है?' का उत्तर प्राप्त करने के लिए उसे कारणात्मक संबंधोंको तलाशना पड़ता है। इस प्रकार का शोध कार्य व्याख्यात्मक शोध कार्य के अंतर्गत आता है जो किसिद्धांत में परिवर्तित होता है।

1.3 सामाजिक शोध का उद्देश्य

सामाजिक शोध का प्रमुख उद्देश्य नवीन ज्ञान व सिद्धांतों की खोज तथा पुराने सिद्धांतों का सत्यापनहै। गुडे एवं हॉट ने सामाजिक शोध के उद्देश्यों को दो प्रमुख भागों में विभाजित किया है–

1. सैद्धांतिक उद्देश्य
2. व्यावहारिक उद्देश्य

1. सैद्धांतिक उद्देश्य

विवेचन की सुविधा के लिए यहाँ कुछ मूलबिंदुओंको प्रस्तुत किया गया है–

i. सामाजिक जीवन व घटनाओं के बारे में सूक्ष्म व गहन ज्ञान प्राप्त करना सामाजिक शोध का मूल उद्देश्य है।
ii. विभिन्न सामाजिक घटनाएँ या तथ्यों में अपने-अपने कार्यों के आधार पर प्रकार्यात्मक संबंध पाए जाते हैं और इन प्रकार्यात्मक संबंधोंके आधार पर ही सामाजिक जीवन में निरंतरता बनी रहती है।
iii. सामाजिक घटनाएँ भी प्राकृतिक घटनाओं की ही भाँति कुछ नियमों द्वारा संचालित और नियंत्रित होती हैं। इन नियमों को व्यवस्थित पद्धतियों द्वारा तलाशना सामाजिक शोध का सैद्धांतिक उद्देश्य है।
iv. परिभाषित अवधारणाओं का प्रमाणीकरण व सत्यापन भी सामाजिक शोध कासैद्धांतिक उद्देश्य है।

2. व्यावहारिक उद्देश्य

सामाजिक शोध के मूल लक्ष्यों में व्यावहारिक उद्देश्यों का भी महत्वपूर्ण स्थान है–

i. सामाजिक शोध द्वारा प्राप्त जानकारी के आधार पर समाज की जटिल समस्याओं का निदान खोजा जा सकता है।

ii. सामाजिक शोध से प्राप्त ज्ञान की सहायता से विभिन्न सामाजिक संघर्ष का उचित निवारण किया जा सकता है।

iii. इससे प्राप्त ज्ञान की सहायता से सामाजिक पुनर्निर्माण की योजनाओं कोक्रियान्वित किया जा सकता है।

iv. इससे उपलब्ध ज्ञान सामाजिक नियंत्रण में भी सहायक हो सकता है।

1.4 सामाजिक शोध का अध्ययन क्षेत्र एवं सार्थकता

सामाजिक शोध का क्षेत्र उतना ही व्यापक है जितना स्वयं मानव जीवन। सामाजिक शोध के अंतर्गत सामाजिक जीवन तथा उससे संबद्ध समस्त घटनाक्रम शामिल हैं। सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र को कार्ल पियर्सन (1937: 16) के इस कथन से आसानी से समझा जा सकता है कि -

''सामाजिक शोध का क्षेत्र वस्तुत: असीमित है और शोध की सामग्री अंतहीन। सामाजिक घटनाओं का प्रत्येक समूह सामाजिक जीवन का प्रत्येक पहलू पूर्व और वर्तमान विकास का प्रत्येक चरण सामाजिक वैज्ञानिक के लिए सामग्री है।''

अतः सामाजिक शोध में समाज की किसी भी सामान्य अथवा विशिष्ट घटना का अध्ययन विषय के रूप में चयन किया जा सकता है।

श्रीमती पी.वी.यंग ने सामाजिक शोध के अध्ययन क्षेत्र को इस प्रकार विभाजित किया है –

1) सामाजिक शोध के अंतर्गत सामाजिक जीवन में संरचनात्मक तथा प्रकार्यात्मक पक्षों के बारे में अध्ययन किया जाता है।

   थामस एवं जनैनिकी ने इस आधार पर तीन बातों पर विशेष बल देने को आवश्यक माना है –

   - एक दिए हुए समाज के संपूर्णजीवन का अध्ययन
   - तुलनात्मक पद्धति के आधार पर अध्ययन करना
   - व्यवस्थित व क्रमबद्ध अध्ययन करना

2) इस क्षेत्र के अंतर्गत सामाजिक घटनाओं संबंधी कार्यप्रणालियों, नवीन सिद्धांतों, नवीन संकल्पनाओं की रचना हेतु शोध कार्य किए जाते हैं।

3) पूर्व से प्रचलित अथवा विद्यमान सार्वभौमिक सिद्धांतों का परीक्षण अथवा चुनौती तथा उनमें नवीन प्रमाणों के प्रकाश में संशोधित करने के लिए भी सामाजिक शोध संबंधी कार्य संचालित किए जाते हैं।

4) सामाजिक शोध के विद्यार्थी का एक विस्तृत अभिरुचिपूर्ण क्षेत्र ऐसे अध्ययनों से भीसंबंधितहै जिसका उद्देश्य प्रायः विद्यमान वैज्ञानिक सिद्धांत के कार्यकलापों तथा अन्वेषण की स्थापित प्रविधियों के अंतर्गत तथ्य संकलन व विश्लेषण करना होता है।

5) सामाजिक शोध का एक उल्लेखनीय क्षेत्र प्रयोगात्मक प्रकृति के अध्ययन से संबंधित शोध भी है। इसके अंतर्गत सामाजिक जीवन का व्यवस्थित अध्ययन नियोजित किया जाता है।

उक्त वर्णित सामाजिक शोध के विस्तृत क्षेत्र के परिप्रेक्ष्य में यह कहना कदाचित गलत न होगा कि एक विस्तृत सामाजिक क्षेत्र के संबंधमें वैज्ञानिक ज्ञान प्रस्तुत करके सामाजिक शोध अज्ञानता का नाश करता है। जब विभिन्न सामाजिक समस्याओं यथा महिला कामगारों की समस्याओं, बेकारी, भिक्षावृत्ति, वृद्धों की समस्याओं, वेश्यावृत्ति, मजदूरों के शोषण और उनकी शोचनीय कार्यदशाओं, बाल मज़दूरी आदि पर सामाजिक शोध किया जाता है, तो उसके प्राप्त परिणामों से न केवल समाज कल्याण के क्षेत्र में सहायता प्राप्त होती है अपितु सामाजिक नीति-निर्माण के लिए भी आधार प्रस्तुत किया जाता है। विविध सामाजिक समस्याओं से संबंधित शोध कार्य कानून निर्माण की दिशा में भी अपना योगदान प्रस्तुत करते हैं। सामाजिक शोध से कार्य-कारण संबंध ज्ञात होते हैं, सैद्धांतिक व संकल्पनात्मक समझ विकसित होती है और अंततः विषय की उन्नति होती है। सामाजिक शोध न केवल सामाजिक नियंत्रण में मदद करता है, अपितु सामाजिक शोध सामाजिक-आर्थिक प्रगति में भी सहायक सिद्ध होता है।

1.5 सामाजिक शोध (सोशल रिसर्च) और समाज कार्य शोध (सोशल वर्क रिसर्च)

सामाजिक शोध

स्पष्ट तौर पर सामाजिक शोध का उद्देश्य मानव व्यवहार में कारण-कारक संबंधों को तलाशना है। सामान्यत: प्राकृतिक परिघटनाओं की भाँति ही मानव व्यवहार में भी संबंधों को मापने योग्य और पूर्वानुमानी तत्व पाए जाते हैं। सामाजिक शोध, भौतिक और प्राकृतिक विज्ञान के जैसे ही इन संबंधों को उन सभी तरीकों और प्रबलताओं में स्थापित करने, मापने और विश्लेषित करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। यद्यपि प्राकृतिक और भौतिक विज्ञानों के विपरीत सामाजिक शोध में विषय के रूप में सचेत और सक्रिय मनुष्य होते हैं। विषय का व्यक्तिगत व्यवहार, भले ही वह स्वतंत्र हो अथवा निर्धारित हो, सामाजिक शोध के कार्य को कठिन अवश्य बना देता है। साथ ही, शोधकर्ता और विषय एक जैसे ही होने के कारण सामाजिक शोध में वस्तुपरक अभिगम का दायरा काफी हद तक सिमट जाता है। सामाजिक अनुसंधान का सरोकार भौतिक आँकड़ों से कहीं अधिक जटिल, सामाजिक आँकड़ों से होता है। सामाजिक आँकड़ों की यह जटिल प्रकृति सामाजिक शोध में यथार्थ पूर्वानुमान की शक्ति को कम कर देती है। सामाजिक शोध की अधिकांश विषयवस्तु गुणात्मक है और मात्रात्मक मापन को स्वीकृत नहीं करती है। ऐसा इसलिए है, क्योंकि सामाजिक घटनाओं का पता ऐसी घटनाओं को प्रदर्शित करने वाली संकल्पनाओं अथवा शब्दों द्वारा सिर्फ प्रतीक के रूप से ही चल पाता है।

सामाजिक शोध की प्रक्रिया

शोध की प्रक्रिया शोध का नमूना होती है। शोध परियोजना में विभिन्न वैज्ञानिक क्रियाकलाप होते हैं, जिनमें शोधकर्ता जानकारी प्राप्त करने के लिए स्वयं को उसमें संलिप्त करता है। यद्यपि, प्रत्येक शोध

परियोजना स्वयं में विशिष्ट होती है, फिर भी सभी परियोजनाओं में कुछ समान क्रियाकलाप होते हैंजो परस्पर संबंधित होते हैं भले ही उनकी अध्ययन की जाने वाली परिघटनाएँ कुछ भी हों। अत: इन परस्पर संबंधित क्रियाकलापों की प्रणाली शोध प्रक्रिया होती है।

स्लूटर (1926 : 5) ने सामाजिक शोध के **पंद्रह चरणों** की चर्चा की है, जो इस प्रकार हैं –

1) शोध विषय का चुनाव
2) शोध समस्या को समझने के लिए क्षेत्र सर्वेक्षण
3) संदर्भ ग्रंथ सूची का निर्माण
4) समस्या को परिभाषित या निर्मित करना
5) समस्या के तत्वों का विभेदीकरण और रूपरेखा निर्माण
6) आँकड़ों या प्रमाणों से प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष संबंधों के आधार पर समस्या के तत्वों का वर्गीकरण
7) समस्या के तत्वों के आधार पर आँकड़ों या प्रमाणों का निर्धारण
8) वांछित आँकड़ों या प्रमाणों की उपलब्धता का अनुमान लगाना
9) समस्या के समाधान की जाँच करना
10) आँकड़ों तथा सूचनाओं का संकलन
11) आँकड़ों को विश्लेषण के लिए व्यवस्थित एवं नियमित करना
12) आँकड़ों एवं प्रमाणों का विश्लेषण एवं विवेचन
13) प्रस्तुतीकरण के लिए आँकड़ों को व्यवस्थित करना
14) उद्धरणों, संदर्भों एवं पाद् टिप्पणियों का चयन एवं प्रयोग
15) शोध प्रस्तुतीकरण के स्वरूप और शैली को विकसित करना

सी.आर. कोठारी (2005: 12) ने शोध प्रक्रिया के **ग्यारह** चरणों को प्रस्तुत किया है–

1) शोध समस्या का निर्माण
2) गहन साहित्य सर्वेक्षण
3) उपकल्पना का निर्माण
4) शोध प्रारूप निर्माण
5) निदर्शन प्रारूप निर्धारण
6) आँकड़ा संकलन
7) प्रोजेक्ट का संपादन
8) आँकड़ों का विश्लेषण
9) उपकल्पनाओं का परीक्षण
10) सामान्यीकरण और विवेचन

11) रिपोर्ट तैयार करना या परिणामों का प्रस्तुतीकरण, यानि निष्कर्षों का औपचारिक लेखन

राम आहूजा (2003: 125) ने मात्र **छह** चरणों का उल्लेख किया है, जो निम्नवत् हैं –

1) अध्ययन समस्या का निर्धारण

2) शोध प्रारूप तय करना

3) निदर्शन की योजना बनाना (संभाव्यता या असंभाव्यता अथवा दोनों)

4) आँकड़ा संकलन

5) आँकड़ा विश्लेषण (संपादन, संकेतन, प्रक्रियाकरण एवं सारणीयन)

6) प्रतिवेदन तैयार करना

इसे नीचे दिए गए चित्र के अनुसार छः चरणों के आधार पर शोध किया जा सकता है –

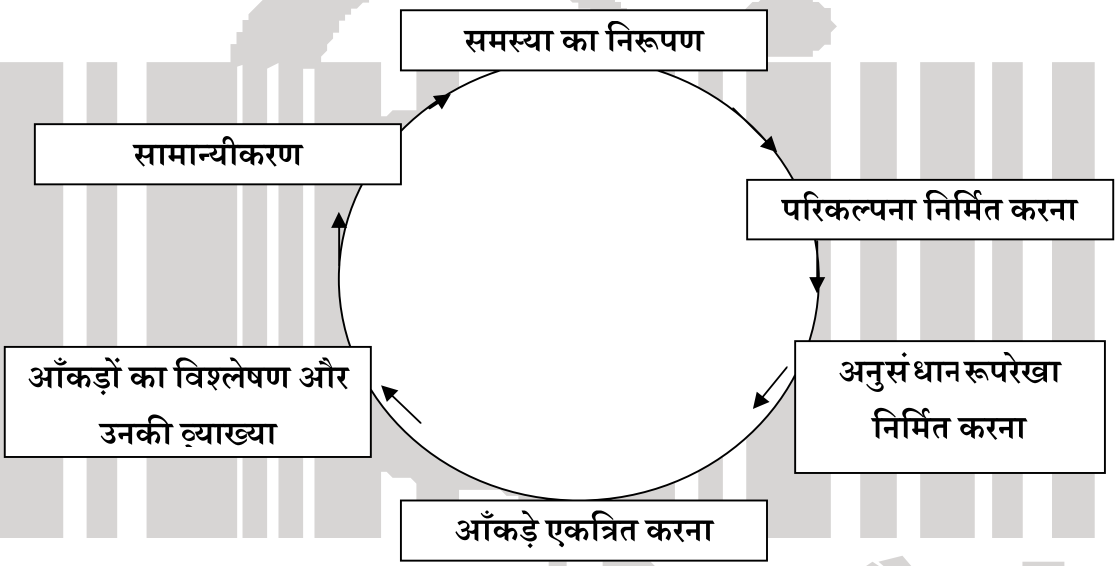

समाज कार्य शोध

सामाजिक ज्ञान प्राप्ति के लिए शोध विधियों का अनुप्रयोग ही समाज कार्य शोध है जिसकी आवश्यकता एक समाज कार्यकर्ता को समाज कार्य करते समय आने वाली समस्याओं का सामना करने के लिए होती है। समाज कार्य की विधियों और तकनीकों को समझने के लिए यह ज्ञान अत्यंत उपयोगी है। यह वह ज्ञान प्रस्तुत करता है, जिस पर एक समाज कार्यकर्ता उन निर्णयों को लेने से पूर्व विचार कर सकता है, जो उसके ग्राहकों, कार्यक्रमों अथवा संस्थाओं पर प्रभाव डाल सकती है जैसे- कार्यक्रम में परिवर्तन/रूपांतरण, वैकल्पिक तकनीकों का उपयोग आदि। सभी समाज कार्यकर्ताओं के लिए समाज कार्य शोध उनके व्यवहार में परिवर्तन अथवा रूपांतरण करने के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। यह कोई संदेहास्पद तथ्य नहीं है कि समाज कार्य शोध के परिणामों द्वारा समाज कार्यकर्ता का मार्गदर्शन अधिक

होता है। अत: समाजकार्य शोध उन्हीं मानवीय लक्ष्यों की आपूर्ति का प्रयत्न करता है जो समाज कार्य विधि के होते हैं।

समाज कार्य अनुसंधान का लक्ष्य

एक व्यावहारिक व्यवसाय के रूप में समाज कार्य को जाना जाता है। अतः समाज कार्य शोध का मुख्य लक्ष्य समाज कार्य व्यवहार अथवा उपचार की प्रभाविता से संबंधित प्रश्नोंके उत्तरों की खोज करना है। दूसरोंशब्दों में, इसके विषय में जानकारी प्रदान करने का प्रयास समाज कार्य शोध द्वारा किया जाता है कि समाज कार्य के लक्ष्यों के लिए कौन-से हस्तक्षेप अथवा उपचार वास्तव में सहायक अथवा अवरोधक हैं। इसके अलावा, यह समाज कार्यकर्ताओं द्वारा अपने कार्य को करने के दौरान आने वाली परेशानियों अथवा समस्याओं के निवारण तलाशने में भी सहायक होता है और साथ ही साथ यह समाज कार्य सिद्धांत और व्यवहार के लिए जानकारी के आधार निर्माण में भी सहायक होता है।

समाज कार्य शोध प्रक्रिया

समस्या की पहचान और लक्ष्यों को निर्धारित करने से समाज कार्य शोध आरंभ होता है। इसके बाद समस्याओं के मूल्यांकन अथवा मूल्यांकन की आवश्यकता का चरण आता है। समस्या की पहचान हो जाने और आवश्यकताओं के मूल्यांकन के पश्चात, अगली प्रक्रिया उन लक्ष्यों का निर्धारण है जिन्हें प्राप्त किया जाना है। यहाँ ध्यान रखा जाता है कि लक्ष्य विशिष्ट, यथार्थ रूप से स्पष्ट किए गए और मापने योग्य होने चाहिए। इस प्रक्रिया में तीसरा चरण हस्तक्षेप से पहले मापन करने की प्रक्रिया है, हस्तक्षेप पूर्व मापन का प्रयोग उस आधार के रूप में किया जाता है जिससे सेवार्थी अथवा संबंधितकी परिस्थिति की तुलना हस्तक्षेप को लागू करने के पश्चात की जाती है।प्रक्रिया में अगला चरण हस्तक्षेप को क्रियान्वित करना है। यहाँ यह उल्लेख करना महत्वपूर्ण है कि किसी भी हस्तक्षेप अवस्था के दौरान केवल एक संगत हस्तक्षेप किया जाना चाहिए। अंतिम चरण में, दो मापनों यानी हस्तक्षेप का उपयोग करना चाहिए और हस्तक्षेप के पश्चात के मापन की तुलना करके हस्तक्षेप के प्रभावों का मूल्यांकन किया जाता है।

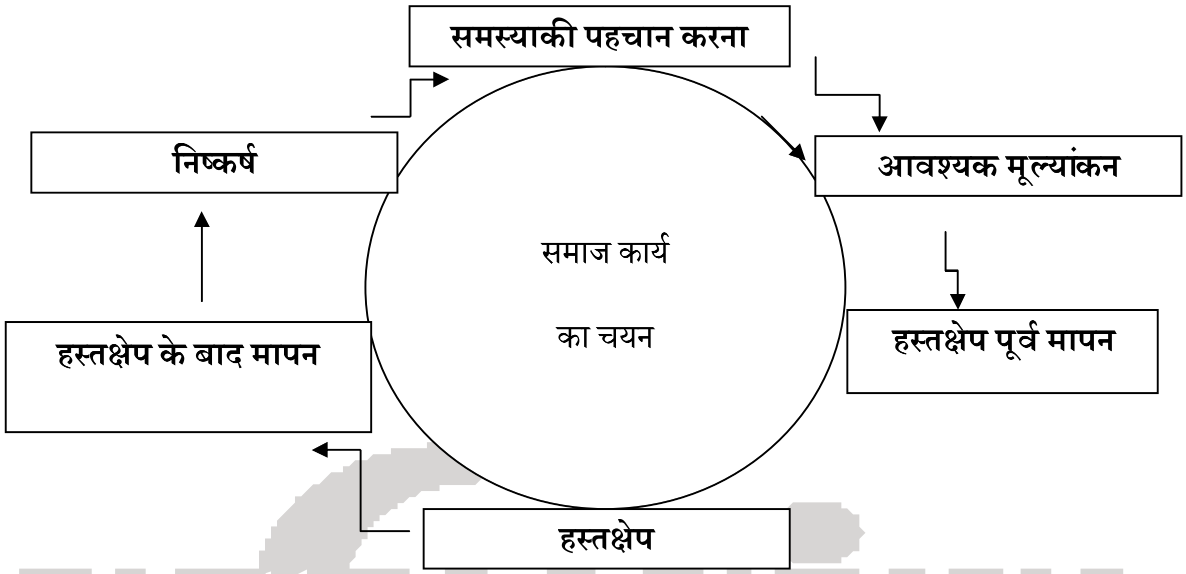

1.6 सारांश

उपरोक्त समस्त विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि सामाजिक शोध, सामाजिक जीवन के विविध पक्षों का वैज्ञानिक अध्ययन है, जिसके उद्देश्य सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक होते हैं। इसकी संपूर्णप्रक्रिया में कई चरण होते हैं। सामाजिक शोध में वस्तुनिष्ठता होती है जिससे न केवल विषय के बारे में समझ विकसित होती है, बल्कि नए ज्ञान की प्राप्ति के साथ-साथ यह समाज कल्याण, नीति-निर्माण, सामाजिक नियंत्रण, सामाजिक-आर्थिक प्रगति इत्यादि में भी सहायक होता है।

1.8. बोध प्रश्न

प्रश्न : 1- शोध से आप क्या समझते हैं ? इसकी विभिन्न परिभाषाओं तथा उद्देश्यों की चर्चा कीजिए।

प्रश्न : 2- सामाजिक अनुसंधान क्या है? संक्षेप में इसकी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्रश्न : 3- समाज कार्य अनुसंधान क्या है? संक्षेप में इसकी प्रक्रिया का वर्णन कीजिए।

प्रश्न : 4- सामाजिक अनुसंधान एवं समाज कार्य अनुसंधान में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।

1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहुजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च : सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

यंग, पी.वी. (1977). *साईण्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च.* नई दिल्ली : फोर्थ प्रिन्टिंग हॉल ऑफ इण्डिया प्राइवेट लिमिटेड.

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी.* न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन.

मोज़र, सी.ए. (1961). *सर्वे मेथड्स इन सोशल इन्वेस्टिगेशन.* न्यूयार्क: दी मैकमिलन कम्पनी.

गुडे एण्ड हाट, (1952). *मेथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* न्यूयार्क : मैकग्रा-हिल बुक कम्पनी.

सारन्ताकोस एस. (1998). *सोशल रिसर्च.* लन्दन : मैकमिलन.

इकाई – 2
सामाजिक अनुसंधान के प्रकार
(TYPES OF SOCIAL RESEARCH)

इकाई की रूपरेखा

2.1 उद्देश्य
2.2 प्रस्तावना
2.3 अन्वेषणात्मक सामाजिक अनुसंधान
2.4 वर्णनात्मक सामाजिक अनुसंधान
2.5 परीक्षणात्मक सामाजिक अनुसंधान
2.6 विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान
2.7 व्यावहारिक सामाजिक अनुसंधान
2.8 क्रियात्मक सामाजिक अनुसंधान
2.9 मूल्यांकनात्मक सामाजिक अनुसंधान
2.10 सारांश
2.11 बोध प्रश्न
2.12 संदर्भ एवं उपयोगीग्रंथ

2.1 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन उपरांत आप –

- सामाजिक अनुसंधानके विभिन्न प्रकारों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- इन विभिन्न प्रकारों में अंतर कर सकेंगे।

2.2 प्रस्तावना

सामाजिक शोध विभिन्न उद्देश्यों की पूर्ति के लिए किए जाते हैं, यथा- जिज्ञासा शांत करने के लिए, उपकल्पनाओं के निर्माण व सत्यापनके लिए, ज्ञान प्राप्ति हेतु इत्यादि । इस प्रकार किसी शोध का उद्देश्य यथार्थ का चित्रण करना होता है, तो किसी का समस्या के निराकरण हेतु विकल्पों की जानकारी प्राप्त करना। अत: कहा जा सकता है कि सामाजिक शोध विभिन्न प्रयोजनों एवं लक्ष्योंकी पूर्ति हेतु किए जाते हैं। लक्ष्यों एवं प्रयोजन की भिन्नता के कारण सामाजिक शोध के कई प्रकार सामने आए हैं, जो इस प्रकार हैं –

1) अन्वेषणात्मक या निरुपणात्मक सामाजिक शोध
2) वर्णनात्मक सामाजिक शोध
3) परीक्षणात्मक या प्रयोगात्मक सामाजिक शोध
4) विशुद्ध सामाजिक शोध
5) व्यावहारिक सामाजिक शोध
6) क्रियात्मक सामाजिक शोध
7) मूल्यांकनात्मक सामाजिक शोध

2.3 अन्वेषणात्मक सामाजिक शोध (Exploratory Social Research)

जब शोधकर्ता किसी सामाजिक घटना के पीछे छिपे कारणों को खोजना चाहता है, तो इस परिस्थिति में जिस सामाजिक शोध का सहारा लिया जाता है उसे अन्वेषणात्मक सामाजिक शोध कहते हैं। इस अनुसंधान का संबंध प्राथमिक अनुसंधान से है जिसके अंतर्गत समस्या के विषय में प्राथमिक जानकारी प्राप्त करके भावी-अध्ययन की आधारशिला निर्मित की जाती है। इस शोध का प्रयोग तब किया जाता है जब शोधकर्ता के पास विषय से संबंधित कोई सूचना अथवा साहित्य उपलब्ध नहीं होता है और उसे विषय के सैद्धांतिक एवं व्यवहारिक पक्ष के संबंध में पर्याप्त जानकारी प्राप्त करनी हो, जिससे कि उपकल्पना का निर्माण किया जा सके।

इस शोध के लिए शोधकर्ता को निम्नवत चरणों से गुजरना होता है–

- साहित्य का सर्वेक्षण
- अनुभव सर्वेक्षण
- सूचनादाताओं का चुनाव
- उपयुक्त प्रश्न पूछना

ज्ञान शांति मैत्री

अन्वेषणात्मक अनुसंधान के महत्व को निम्नानुसार निरूपित किया जा सकता है –

1) यह शोध शोध समस्या के महत्व पर ध्यान केंद्रित करता है तथा संबंधित विषय पर शोधकर्ताओं के ध्यान को भी आकृष्ट करता है।
2) विभिन्न शोध पद्धतियों की उपयुक्तता की संभावना को स्पष्ट करता है।
3) यह अंतर्दृष्टिप्रेरक घटनाओं का विश्लेषण प्रस्तुत करता है।
4) किसी विषय समस्या के विस्तृत और गहन अध्ययन के लिए एक व्यावहारिक आधारशिला तैयार करता है।
5) यह विज्ञान के क्षेत्र का विस्तार करता है।

6) यह शोध हेतु नवीन उपकल्पनाओं को विकसितकरता है।
7) पूर्व निर्धारित परिकल्पनाओं का तात्कालिक दशाओं में परीक्षण करता है।
8) यह शोधकार्य को निश्चितता प्रदान करता है।

2.4 वर्णनात्मक सामाजिक अनुसंधान(Descriptive Social Research)

वर्णनात्मक सामाजिक शोध एक ऐसा सामाजिक शोध है जिसका उद्देश्य समस्या से संबंधित वास्तविक तथ्यों को एकत्रित कर उनके आधार पर विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना है। अर्थात किसी अध्ययन विषय के बारे में यथार्थ तथा तथ्य एकत्रित करके उन्हें एक विवरण के रूप में प्रस्तुत करना ही वर्णनात्मक सामाजिक शोध का मूल उद्देश्य होता है। सामाजिक जीवन में अनेक ऐसे विषय होते हैंजिनका अतीत में कोई गहन अध्ययन प्राप्त नहीं होता, ऐसी परिस्थिति में यह जरूरी होता है कि अध्ययन से संबंधित समूह, समुदाय अथवा विषय के बारे में यथार्थ सूचनाएँ संकलित करके उन्हें जनसामान्य के सामने प्रस्तुत किया जाए। ऐसे अध्ययनों के लिए जिस शोध का सहारा लिया जाता है उसे वर्णनात्मक सामाजिक शोध कहते हैं।

इस प्रकार के शोध में किसी पूर्व निर्धारित सामाजिक संरचना, सामाजिक घटना अथवा सामाजिक परिस्थिति का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करना होता है। शोध के लिए चयन की गई सामाजिक समस्या/घटना के विविध पक्षों से संबंधिततथ्यों का संकलन करके उनका तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है और इसी आधार पर निष्कर्ष प्राप्त किए जाते हैं। इसके अंतर्गत तथ्य संकलन हेतु अवलोकन, अनुसूची, प्रश्नावली, साक्षात्कार आदि किसी भी प्रविधि का इस्तेमाल किया जा सकता है।

वर्णनात्मक शोध की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1) इसमें समस्या के विभिन्न पक्षों पर सविस्तार प्रकाश डाला जाता है।
2) इस अध्ययन में उपकल्पना के निर्माण की आवश्यकता नहीं होती।
3) प्रायः इसका प्रयोग उन समस्याओं के शोध के लिए अधिक उपयोगी माना जाता है जिससे संबंधितअध्ययन पहले नहीं किया जा चुका हो।
4) इसमें विषय के चयन में सावधानी बरती जाती है।
5) इसमें शोधकर्ता एक निष्पक्ष अवलोकनकर्ता के रूप में कार्य करता है।

इस शोध के लिए शोधकर्ता को निम्नवत चरणों से गुजरना होता है –

- अध्ययन विषय का चुनाव
- शोध उद्देश्यों का निर्धारण
- तथ्य-संकलन की प्रविधियों का निर्धारण
- निदर्शन का चयन

ज्ञान शांति मैत्री

- तथ्यों का संकलन
- तथ्यों का विश्लेषण
- प्रतिवेदन प्रस्तुतीकरण

2.5 परीक्षणात्मक सामाजिक अनुसंधान(Experimental Social Research)

परीक्षणात्मक सामाजिक शोध द्वारा यह जानने का प्रयत्न किया जाता है कि नवीन परिस्थिति अथवा परिवर्तन का समाज के विभिन्न समूहों, समाजों, समुदायों, संस्थाओं अथवा संरचनाओं पर'क्या' एवं 'कितना' प्रभाव पड़ता है। इसके लिए सामाजिक घटना/समस्या के उत्तरदायी कारकों के रूप में कुछ चरों/परिवर्त्यों को नियंत्रित किया जाता है तथा बाकी बचे चरों के प्रभाव को नवीन परिस्थितियों पर देखा जाता है । उपरोक्त पद्धति से प्राप्त तथ्यों और कार्य-कारण संबंधोंका विश्लेषण प्रस्तुत किया जाता है। परीक्षणात्मक अनुसंधान**तीन** प्रकार के होते हैं –

1. पश्चात परीक्षण
2. पूर्व-पश्चात परीक्षण
3. कार्यान्तर (ऐतिहासिक) तथ्य परीक्षण

1. पश्चात परीक्षण (After only experiment)

इसमें सबसे पहले लगभग समान विशेषताओं और समान प्रकृति वाले दो समूहोंको चुन लिया जाता है। इसमें से एक को नियंत्रित समूह और दूसरे को परीक्षणात्मक समूह कहा जाता है। नियंत्रित समूह में किसी नवीन परिस्थिति या चर द्वारा परिवर्तन लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया जाता है, लेकिन परीक्षणात्मक समूह में किसी एक नवीन कारक की सहायता से परिवर्तन लाने का प्रयत्न किया जाता है। कुछ समय के पश्चात दोनों समूहोंपर इस प्रभाव को मापा जाता है। यदि दोनों समूहों में परिवर्तन समान अनुपात में हैंतो यह माना जाता है कि इस नवीन चर का कोई प्रभाव नहीं पड़ा, परंतु यदि परीक्षणात्मक समूह में नियंत्रित समूह की तुलना में परिवर्तन परिलक्षित होता है, तो इसका अभिप्राय यह है कि इस परिवर्तन का कारण वह चर है जिसे परीक्षणात्मक समूह पर आरोपित किया गया था। उदाहरणस्वरूप, दो समान बेरोज़गार समूहों का चयन किया गया और उसमें से एक समूह में शिक्षा को चर के रूप में लागू किया और दूसरे समूह को पहले की तरह ही रखा गया। यदि कुछ समय उपरांत वह समूह, जिसमें शिक्षा के चर को प्रत्यारोपित किया गया था, बेरोज़गारी से उबर पाने में सफल रहा और दूसरा समूह जैसे का तैसा ही है। तो इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि शिक्षा से बेरोज़गारी को दूर किया जा सकता है।

2. पूर्व-पश्चात परीक्षण (Before after experiment)

इस विधि के अंतर्गत अध्ययन के लिए केवल एक ही समूह का चुनाव किया जाता है लेकिन इसका अध्ययन दो विभिन्न अवधियों में किया जाता है। इस आधार पर पूर्व और पश्चात के अंतर को देखा जाता है। इसी अंतर को परीक्षण अथवा उपचार का परिणाम मान लिया जाता है। उदाहरणस्वरूप, परिवार कल्याण प्रचार कार्य के प्रभाव को मापने के लिए पहले उस समूह में प्रचार से पूर्व प्रश्नावली द्वारा उसके बारे में गाँव वालों से सूचनाओं का संकलन किया जाता है। इसके बाद परिवार कल्याण कार्यक्रम का उस समूह में प्रचार किया जाता है। प्रचार कार्य के बाद पुनः उस प्रश्नावली से सूचनाएँ संकलित की जाती हैं। प्रश्नावली की सूचनाओं और तथ्यों के अंतर के आधार पर उस प्रचार कार्य के प्रभाव को मापा जाता है।

3. कार्यांतर तथ्य परीक्षण (Ex-post facto experiment)

ऐतिहासिक घटना के अध्ययन हेतु इस विधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें विभिन्न आधारों पर प्राचीन अभिलेखों के विभिन्न पक्षों की तुलना करके एक उपयोगी निष्कर्ष प्रस्तुत किया जाता है। इस शोध के लिए चुने गए समूह का दो विभिन्न अवधियों में अध्ययन करके पूर्व और पश्चात के अंतर को स्पष्ट किया जाता है। इस विधि का प्रयोग पहले ही घट चुकी घटना अथवा ऐतिहासिक घटना का विश्लेषण करने के लिए किया जाता है। भूतकाल में घटी हुई घटना को दोबारा दोहराया नहीं जा सकता है और ऐसी स्थिति के लिए उत्तरदायी कारणों को जानने के लिए इस विधि का इस्तेमाल किया जाता है। इस विधि द्वारा अध्ययन हेतु दो ऐसे समूहों का चुनाव किया जाता है, जिनमें से एक समूह में कोई ऐतिहासिक घटना घटित हो चुकी होती है और दूसरे समूह में उस प्रकार की कोई घटना घटित नहीं हुई है।

2.6 विशुद्ध अनुसंधान(Pure Research)

जब उद्देश्य किसी घटना/समस्या का समाधान ढूँढ़ना न होकर उनके मध्य पाए जाने वाले कार्य-कारण के संबंधों को समझकर विषय से संबंधित वर्तमान ज्ञान में वृद्धि करना होता है तब विशुद्ध शोध का प्रयोग किया जाता है। विशुद्ध सामाजिक अनुसंधान का कार्य नवीन ज्ञान की प्राप्ति कर, ज्ञान के भंडार में वृद्धि और पुराने ज्ञान का संशोधन करना है। इस प्रकार के शोधकार्य द्वारा सामाजिक जीवन के संबंध में मौलिक सिद्धांतों एवं नियमों को तलाशा जाता है। इस प्रकार विशुद्ध सामाजिक शोध के उद्देश्यों को निम्नांकित रूप से प्रस्तुत किया जा सकता है–

- नवीन ज्ञान की प्राप्ति
- नवीन अवधारणों का प्रतिपादन

- ➢ उपलब्ध अनुसंधानविधियों की जाँच
- ➢ कार्य-कारण संबंध बताना
- ➢ पूर्व ज्ञान का पुन: परीक्षण

2.7 व्यावहारिक अनुसंधान(Applied Research)

व्यावहारिक शोध में स्वीकृत सिद्धातों के आधार पर किसी घटना/समस्या का इस प्रकार से अध्ययन किया जाता है कि उसे एक व्यावहारिक समाधान के रूप में प्रस्तुत किया जा सके। इस शोध का उद्देश्य सामाजिक समस्याओं के संबंधमें नवीन ज्ञान प्राप्त करने के साथ-साथ सामाजिक जीवन के अनेक पक्षों यथा- शिक्षा, स्वास्थ्य, जनसंख्या, धर्म, आर्थिक एवं धार्मिक समस्याओं का वैज्ञानिक अध्ययन करना एवं इनके कार्य-कारण संबंधोंकी तर्कसंगत व्याख्या प्रस्तुत करना भी है। इस प्रकार से व्यावहारिक शोध का संबंध हमारे व्यावहारिक जीवन से है।

श्रीमती यंग के अनुसार, *''ज्ञान की खोज का एक निश्चित संबंधलोगों की प्राथमिक आवश्यकताओं व कल्याण से होता है। वैज्ञानिकों की यह मान्यता है कि समस्त ज्ञान सारभूत रूप से इस अर्थ में उपयोगी है कि वह सिद्धातों के निर्माण में या एक कला को व्यवहार में लाने में सहायक होता है। सिद्धांत तथा व्यवहार आगे चलकर प्राय: एक दूसरे से मिल जाते हैं।''*

स्टाउफर ने इसे **तीन** प्रकार से उपयोगी बताया है –

- व्यावहारिक शोध ऐसी विधियों का उपयोग और उनका विकास करता है जो कि विशुद्ध शोध के लिए प्रामाणिक सिद्ध हों।
- किस प्रकार के सामाजिक तथ्य समाज के लिए उपयोगी हैं, इसके बारे में यह शोध विश्वसनीय प्रमाण प्रस्तुत करता है।
- व्यावहारिक शोध ऐसे तथ्यों और विचारों को प्रस्तुत करता है जो सामान्यीकरण की प्रक्रिया को तेज कर सकते हैं।

2.8 क्रियात्मक शोध (Action Research)

क्रियात्मक शोध का विकास बीसवीं शताब्दी के मध्य में हुआ है। **गुडे एवं हॉट** ने इसके अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है,

ज्ञान शांति मैत्री

''क्रियात्मक अनुसंधान उस योजनाबद्ध कार्यक्रम का भाग है जिसका लक्ष्य विद्यमान अवस्थाओं को परिवर्तित करना होता है चाहे वे गंदी बस्ती की अवस्थाएं हो या प्रजातीय तनाव, पूर्वाग्रह व पक्षपात हो या किसी संगठन की प्रभावशीलता हो।''

इस प्रकार स्पष्ट है कि क्रियात्मक अनुसंधान से प्राप्त जानकारियों एवं निष्कर्षों का उपयोग मौजूदा स्थितियों में परिवर्तन लाने वाली किसी भावी योजना में किया जाता है। क्रियात्मक शोध में किसी सामाजिक घटना/समस्या के क्रिया पक्ष पर ध्यान केंद्रित किया जाता है तथा शोध के निष्कर्षों का उपयोग किन्हीं सामाजिक व्यवस्था में परिवर्तन लाने की योजना के एक भाग के रूप में किया जाता है और जब शोध अध्ययन के निष्कर्षों को मूर्तरूप देने किसी योजना से संबंधित हो तो उसे क्रियात्मक शोध की श्रेणी में रखा जाता है। क्रियात्मक शोध की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित हैं–

1) यह शोध किसी अत्यंत आवश्यक व्यावहारिक आवश्यकता के परिणामस्वरूप आरंभ होता है।
2) इसमें एक विकसित किया जा सकने वाला शोध स्वरूप उपयोग में लिया जाता है।
3) इसमें लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सामूहिक नियोजन, संचालन और मूल्यांकन की प्रक्रियाएँ अपनाई जाती हैं।
4) इसमें प्रमुख निर्देशक सिद्धांत मानव अंतःक्रिया का होता है।
5) इसमें किसी विशिष्ट विषयों का अध्ययन किया जाता है, न कि संपूर्णरूप से सैद्धांतिक समग्र का।

2.9 मूल्यांकनात्मक अनुसंधान (Evaluative Research)

मूल्यांकनात्मक शोध में समाज में उपस्थित गुणात्मक प्रकृति के तथ्यों तथा प्रवृत्तियों के अध्ययन और उनके विश्लेषण के साथ ही साथ उनकी उपयोगिता को भी मूल्यांकित किया जाता है। ऐसे शोध स्वाभाविक सामाजिक परिवर्तनों और नियोजित सामाजिक परिवर्तनों दोनों के ही स्वरूप के बारे में समझ विकसित करने के लिए उपयोगी सिद्ध होते हैं।

इसमें मूल्यांकन हेतु निम्न प्रकार की प्रक्रिया अपनाई जाती है –

- कुछ निश्चित क्षेत्रों में समग्र के आकार को ध्यान में रखते हुए प्रतिदर्श को चुना जाता है।
- प्रतिदर्श चुनने के बाद संबंधित इकाइयों का अवलोकन, साक्षात्कार तथा निरीक्षण किया जाता है।
- इसमें मूल्यांकन अनुसूचियों का उपयोग भी किया जाता है।

i. गणनात्मक अनुसंधान (Quantitative Research)

सामाजिक जीवन में बहुत-सी घटनाएँ और तथ्य इस प्रकार के होते है जिनका प्रत्यक्ष रूप से अवलोकन किया जा सकता है और उसी आधार पर वर्णन प्रस्तुत किया जा सकता है। शाब्दिक

तौर पर Quantity अथवा परिमाण का अर्थ है मात्रा। इस प्रकार के अनुसंधान में गणनात्मक मापन एवं सांख्यिकीय विश्लेषण किया जाता है। तथ्यों के विश्लेषण हेतु अनेक प्रकार की सांख्यिकीय प्रविधियों का उपयोग किया जाता है जिससे अध्ययन में विश्वसनीयता बढ़ जाती है।

ii. गुणात्मक अनुसंधान(Qualitative Research)

इस अनुसंधान में गुणात्मक विशेषताओं जैसे आचार-विचार, मनोवृत्ति, मानव व्यवहार, विश्वास आदि का अध्ययन कर निष्कर्ष को प्रतिपादित किया जाता है। इस अनुसंधान का उद्देश्य व्यक्तियों के गुणों का विश्लेषण करना होता है।

iii. तुलनात्मक अनुसंधान(Comparative Research)

इस शोध में विभिन्न इकाइयों व समूहों के मध्य पाई जाने वाली समानताओं और विभिन्नताओं का अध्ययन किया जाता है। उदाहरणस्वरूप, भारतीय ग्रामीण महिलाओं तथा इंग्लैंड अथवा अमेरिका की ग्रामीण महिलाओं का तुलनात्मक अध्ययन, विभिन्न महानगरों में महिला अपराधियों का तुलनात्मक अध्ययन, भारतीय व जापानी समाज का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करना इत्यादि।

2.10 सारांश

शोध एक प्रकार की खोज है जिसकी प्रेरणा मानव जिज्ञासा है। जिज्ञासा मानव की मौलिक प्रवृत्ति है। जब मानव किसी नवीन वस्तु को देखता है तो उसके बारे में संज्ञान प्राप्त कर वह अपनी जिज्ञासा को शांत करने की ओर अग्रसर होता है। समाज में किसी वस्तु का संज्ञान प्राप्त करने के लिए की गई आवश्यक खोज ही सामाजिक शोध कहलाती है। शोध को अनुसंधान, रिसर्च, इंवेस्टिगेशन, अन्वेषण, गवेषणा आदि नामों से भी जाना जाता है।

2.11 बोध प्रश्न

प्रश्न : 1- शोध से आप क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न : 2- परीक्षणात्मक सामाजिक अनुसंधान क्या है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

प्रश्न : 3- मूल्यांकनात्मक अनुसंधान क्या है? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

प्रश्न : 4- विशुद्ध अनुसंधान एवं क्रियात्मक अनुसंधान में क्या अंतर है? स्पष्ट कीजिए।

2.12 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू बिगनर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च, सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स,* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स ।

मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च : डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स,* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.

यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च*. नई दिल्ली : प्रेन्टिस हाल.

डाबी, जॉन टी. (1954). *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च* (सम्पादित). लंदन : द स्टेकवेल कम्पनी.

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी*. न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन.

कोठारी, एल.आर. (1985), *रिसर्च मैथडोलॉजी*. नई दिल्ली: विश्व प्रकाशन,.

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -3
शोध प्रारूप
(RESEARCH DESIGN)

इकाई की रूपरेखा

3.0 अध्ययन के उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ
3.3 शोध प्रारूप का उद्देश्य
3.4 शोध प्रारूप की अंतर्वस्तु
3.5 शोध प्रारूप का महत्व
3.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति
3.7 शोध प्रारूप के प्रकार
3.8 सारांश
3.9 बोध-प्रश्न
3.10 संदर्भ एवं उपयोगीग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप–

- सामाजिक शोध में शोध प्रारूप के अर्थ एवं महत्व के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- शोध प्रारूप के उद्देश्यों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- शोध प्रारूप के विविध प्रकारों का वर्णन कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

सामाजिक शोध में प्रचना अथवा अभिकल्प का अत्यंत महत्व होता है। शोध कार्य में सही दिशा की ओर अभिमुख होने के लिए शोधकर्ता को सर्वप्रथम शोध-प्रबंध की रूपरेखा तैयार करनी होती है। शोध समस्या की प्रकृति और उसके स्वरूप के अनुरूप ही शोध प्रारूप बनाया जाता है। सामाजिक शोध के सफल एवं उचित क्रियान्वयन के लिए स्पष्ट शोध प्रारूप का होना अत्यंत आवश्यक है। शोध प्रारूप का तात्पर्य संपूर्णशोध योजना के निर्धारण से है। शोध के वास्तविक क्रियान्वयन के पूर्व ही यह निश्चित कर लिया जाता है कि विविध विषयों पर किस प्रकार से क्रमबद्ध तरीके से कार्य करते हुए निष्कर्ष तक पहुँचा

जा सकता है। शोध की सुव्यवस्थित रूपरेखा पर ही यह आश्रित करता है कि शोधकर्त्ता इधर-उधर अनावश्यक संसाधन व समय नष्ट नहीं करता है। उसे शोध की सीमा और कार्यक्षेत्र की जानकारी रहती है और वह अपने शोध कार्य को लगातार समस्याओं का पूर्वानुमान लगाते हुए आगे बढ़ाता जाता है। इस इकाई में शोध प्रारूप के अर्थ, परिभाषाओं, उद्देश्यों, महत्व बताते हुए संक्षेप में इसके विविध प्रकारों को विश्लेषित किया गया है।

3.2 शोध प्रारूप का अर्थ एवं परिभाषाएँ

शोध प्रारूप या प्रचना का तात्पर्य अध्ययन के उस प्रकार से होता है जिसे एक सामाजिक शोधकर्ता द्वारा किसी समस्या को भली-भाँति समझने के उद्देश्य से सर्वाधिक उपयुक्त मानकर चुना जाता है। शोधकार्य प्रारंभ करने के पूर्व संपूर्णशोध प्रक्रियाओं की एक स्फ्ट संरचना, शोध प्रारूप/प्ररचना/अभिकल्प के रूप में जानी जाती है।

कई समाज वैज्ञानिकों ने इसे परिभाषित करने का प्रयास किया है । उसमें से कुछ प्रमुख हैं:

1. **एफ.एन. करलिंगर** (1964)- *''शोध प्रारूप अनुसंधान के लिए कल्पित एक योजना, एक संरचना तथा एक प्रणाली है, जिसका एकमात्र प्रयोजन शोध संबंधी प्रश्नों का उत्तर प्राप्त करना तथा प्रसरणों का नियंत्रण करना होता है।''*
2. **पी.वी. यंग** (1977)-*''क्या, कहाँ, कब, कितना, किस तरीके से इत्यादि के संबंध में निर्णय लेने के लिए किया गया विचार अध्ययन की योजना या अध्ययन प्रारूप का निर्माण करता है।''*
3. **आर.एल. एकॉफ** (1953)-*''निर्णय लिए जाने वाली परिस्थिति उत्पन्न होने के पूर्व ही निर्णय लेने की प्रक्रिया को प्रारूप कहते हैं।''*

इसके अतिरिक्त विभिन्न वेबसाइटों पर भी शोध प्रारूप की कुछ परिभाषाएँ प्रस्तुत की गई हैं–

''शोध प्रारूप को शोध की संरचना के रूप में विचार किया जा सकता है-यह 'गोंद' होता है जो किसी शोध कार्य के सभी तत्वों को बाँधे रखता है।''

(www.socialresearchmethods.net/kb/design.php)

''शोध उद्देश्यों के उत्तर देने के लिए शोध की योजना है; विशिष्ट समस्या के समाधान की संरचना या खाका है।''

(www.decisionanalyst.com/glossary)

''ऐसी योजना जो शोध प्रश्नों को परिभाषित करे, परीक्षण की जाने वाली उपकल्पनाओं और अध्ययन किए जाने वाले चरों/परिवर्त्यों की संख्या और प्रकार स्पष्ट करें। यह वैज्ञानिक जाँच के सुविकसित सिद्धातों का प्रयोग करके चरों/परिवर्त्यों में संबंधों का आँकलन करती है।''

ज्ञान शांति मैत्री

(www.globalhivmeinfo.org/Digital Library)

''क्या तथ्य इकट्ठा करना है, किनसे, कैसे और कब तक इकट्ठा करना है और प्राप्त तथ्यों को कैसे विश्लेषित करना है कि योजना शोध प्रारूप है।''

(www.ojp.usdoj.gov/BJA/evaluation/glossary)

उक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि शोध प्रारूप प्रस्तवित शोध की रूपरेखा होती है, जिसे वास्तविक शोध कार्य को प्रारंभ करने के पूर्व सजगता से निर्मित किया जाता है। शोध की प्रस्तावित रूपरेखा का निर्धारण विभिन्न बिंदुओंपर विचार-विमर्श के पश्चात किया जाता है।

पी.वी.यंग (1977) ने शोध से संबंधितविविध प्रश्नों द्वारा इसे स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है –

- अध्ययन किससे संबंधितहै और आवश्यक आँकड़े किस प्रकार के है ?
- कहाँ अथवा किस क्षेत्र में अध्ययन किया जाएगा ?
- कब या कितना समय अध्ययन में लगेगा ?
- अध्ययन क्यों किया जा रहा है ?
- आवश्यक आँकड़े कहाँ से प्राप्त होंगे ?
- चुनावों के किन आधारों का प्रयोग होगा ?
- तथ्य-संकलन की कौन-सी प्रविधि का प्रयोग किया जाएगा ?
- कितनी सामग्री या कितने धन की आवश्यकता होगी ?

इसे उदाहरण से आसानी से समझा जा सकता है। एक भवन का निर्माण करते समय सामग्री का आर्डर देने या उसके पूजन की तिथि निश्चित करने का कोई मतलब नहीं है, जब तक कि हमें यह न मालूम हो कि वह भवन किस प्रकार का निर्मित होना है। सबसे पहले यह निश्चित करना है उस भवन की संरचना क्या होगी अर्थात आवासीय मकान होगा, एक स्कूल होगा, एक फैक्ट्री होगी। इसके बाद हमें एक प्रारूप की आवश्यकता होगी कि उसमें किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता पड़ेगी। ठीक इसी प्रकार से सामाजिक शोध को प्रारूप या अभिकल्प की आवश्यकता होती है या तथ्य संकलन के पूर्व अथवा विश्लेषण आरंभ करने के पूर्व एक संरचना की आवश्यकता होती है।

गेराल्ड आर. लेस्ली (1994) के अनुसार-

''शोध प्रारूप ब्लू प्रिन्ट है, जो चरों/परिवंर्त्यों को पहचानता और तथ्यों को एकत्र करने तथा उनका विवरण देने के लिए की जाने वाली कार्य प्रणालियों को अभिव्यक्त करता है।''

सौमेन्द्र पटनायक (2006) शोध प्रारूप का विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करतेहुए कहते हैं कि,

''शोध प्रारूप एक प्रकार की रूपरेखा है, जिसे आपको शोध के वास्तविक क्रियान्वयन से पहले तैयार करना है। यह योजनाबद्ध रूप से तैयार एक खाका होता है जो उस रीति को बतलाता है जिसमें आपने अपने शोध की कार्ययोजना तैयार की है। आपके पास अपने शोध कार्य पर दो पहलुओं से विचार करने का विकल्पहै। ... अनुभवजन्य पहलू और विश्लेषणपरक पहलू। ये दोनों ही पहलू एक साथ आपके मस्तिष्कमें रहते हैं, जबकि व्यवहार में आपको अपना शोध कार्य दो चरणों में नियोजित करना है : एक सामग्री संग्रहण का चरण और दूसरा उस सामग्री के विश्लेषण का चरण। आपकी मनोगत सैद्धांतिक उन्मुखता और अवधारणात्मक प्रतिदर्शताएँ आपको इस शोध सामग्री के स्वरूप को निर्धारित करने में मदद करती हैं जो आपको एकत्र करनी है और कुछ हद तक यह समझने में भी कि आपको उन्हें कैसे एकत्र करना है। तदुपरांत अपनी सामग्री का विश्लेषण करते समय फिर से आमतौर पर सामाजिक यथार्थ संबंधीसैद्धांतिक और अवधारणात्मक समझ के सहारे आपको अपने शोध परिणामों को स्पष्ट करने में और उसे प्रस्तुत करने के लिए शोध सामग्री को वर्गीकृत करने में और विन्यास विशेष को पहचानने में दिशा निर्देशन मिलता है।''

श्रीमती पी.वी.यंग (1977) का मानना है कि,

''जब एक सामान्य वैज्ञानिक मॉडल को विविध कार्य विधियों में परिणत किया जाता है तो शोध प्रारूप की उत्पत्ति होती है। शोध प्रारूप उपलब्ध समय, कर्म शक्ति एवं धन, तथ्यों की उपलब्धता, उस सीमा तक जहाँ तक यह वांछित या संभव हो उन लोगों एवं सामाजिक संगठनों पर थोपना जो तथ्य उपलब्ध कराएंगे, के अनुरूप होना चाहिए।''

ई.ए. सचमैन (1954) के अनुसार,

''एकल या 'सही' प्रारूप जैसा कुछ नहीं है... शोध प्रारूप सामाजिक शोध में आने वाले बहुत से व्यावहारिक विचारों के कारण आदेशित समझौते का प्रतिनिधित्व करता है।... (साथ ही) अलग-अलग कार्यकर्ता अलग-अलग प्रारूप अपनी पद्धति शास्त्रीय एवं सैद्धांतिक प्रतिस्थापनाओं के पक्ष में लेकरआते है... एक शोध प्रारूप विचलन का अनुसरण किए बिना कोई उच्च विशिष्ट योजना नहीं है, अपितु सही दिशा में रखने के लिए मार्गदर्शक स्तंभों की श्रेणी है।''

अन्य शब्दों में, शोध प्रारूप एक काम चलाऊ संयंत्र के रूप में होता है। अध्ययन जैसे-जैसे प्रगति करता है, नई दशाएँ, नए पक्ष और तथ्यों में नवीन संबंधितपक्ष प्रकाश में आते हैं और यह परिस्थितियों की ज़रूरत के अनुसार आवश्यक होता है कि योजना परिवर्तित/संशोधित कर दी जाए। परियोजना का

लोचदार होना आवश्यक होता है। लोचपन का न होना पूरे अध्ययन की उपयोगिता को नष्ट कर सकता है। (उद्धृत पी. वी. यंग 1977 : 131)

3.3 शोध प्रारूप के उद्देश्य

मैनहाइम (1977 : 142) ने शोध प्रारूप के निम्नवत **पाँच** उद्देश्य बताए हैं –

1) शोध प्रारूप अपनी उपकल्पना को सत्यापित करता है और वैकल्पित उपकल्पनाओं का खंडन करने हेतु पर्याप्त साक्ष्य संकलित करता है।
2) एक पूर्ण विकसित शोध, परियोजना की भावी योजनाओं को संचालित करने के लिए एक मार्गदर्शी अध्ययन की आवश्यकता प्रस्तुत करता है।
3) एक ऐसा शोध क्रियान्वित करना जिससे शोध की विषयवस्तु और शोध की कार्यविधि की दृष्टि से दोहराया जा सके।
4) शोध प्रारूप का उद्देश्य चरों/परिवर्त्यों के मध्य सह-संबंधों को इस प्रकार से जाँचने में सक्षम होना होता है जिससे सहसंबंध ज्ञात हो सके।
5) शोध प्रारूप का उद्देश्य शोध सामग्रियों के चयन की उचित तकनीकों के चुनाव द्वारा समय और साधनों के अपव्यय को रोकने में सक्षम होना होता है।
6)

यहाँ शोध प्रारूप के उद्देश्यों को निम्नानुसार उल्लेखित किया जा सकता है –

1) शोध विषय को परिभाषित, स्पष्ट एवं व्याख्या करना।
2) अध्ययन-क्षेत्र स्पष्ट करना।
3) शोध का संपूर्णपरिदृश्य प्रदान करना।
4) तकनीकों और परिणामों को बताना।
5) शोध को सीमा एवं परिधि प्रदान करना।
6) संसाधन और समय की सुनिश्चितता।

3.4 शोध प्रारूप की अंतर्वस्तु

सैमुअल स्ट्रौफर ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक *'American Silider'* के अंतर्गत उत्कृष्ट शोध प्रतिमान तैयार किया जो कि व्यावहारिक शोध के संचालन में उपयोगी सिद्ध हो सकता है। उसमें निम्नलिखित बातें सम्मिलित थीं –

1) आवश्यक अध्ययन समस्याओं के प्रति शीघ्र ध्यान।
2) समस्याओं के अध्ययन में सम्मिलित सर्वोच्च प्रशासकों से व्यक्तिगत संबंध तथा विचार विमर्श।

3) सामान्य क्षेत्र में अध्ययन की समस्याओं तथा परिस्थितियों के संदर्भ मेंप्रारंभ तथा बाद में अवलोकन, निरीक्षण, परीक्षण तथा सर्वेक्षण करने के लिए गुप्तचर का कार्य करना।
4) चयन किए हुए समूह के नामांकित व्यक्तियों के साथ अनौपचारिक साक्षात्कार।
5) कर्मचारियों के साथ तथ्यों के बारे में प्रारंभिक परंतु काफी विचार-विमर्श के बाद प्रश्नावलियों और अनुसूचियों का प्रारूपण।
6) प्रश्नावलियों और अनुसूचियों का पूर्वपरीक्षण।
7) पूर्व-परीक्षण के परिणामों की असंगतियों, अस्पष्टताओं तथा अनिश्चितताओं को दूर करना
8) संशोधित प्रश्नावलियों तथा अनुसूचियों का प्रारूपण।
9) प्रस्तावित अध्ययन में स्पष्टता तथा संपूर्णता लाने केलिए प्रवर्तक से परामर्श करना।
10) अंतिम प्रश्नावलियों और अनुसूचियों का प्रारूपण।
11) क्षेत्रीय साक्षात्कारों की रूपरेखा।
12) संकलित तथ्यों का विश्लेषण।

3.5 शोध प्रारूप का महत्व

ब्लैक और चैंपियन (1976) ने निम्नलिखित बातों को शोध के महत्व के रूप से प्रमुख माना है–

1) शोध प्रारूप से शोध की सीमा और अध्ययन-क्षेत्र परिभाषित होते हैं।
2) शोध प्रारूप से शोध कार्य को चलाने के लिए एक प्रारूप/रूपरेखा निर्मित होती है।
3) इससे शोधकर्ता को शोध की अग्रगामी प्रक्रिया में आने वाली समस्याओं का पूर्वानुमान लगाने का अवसर प्राप्त होता है।

3.6 शोध प्रारूप बनाम तथ्य संकलन की पद्धति

यहाँ यह उल्लेख करना अत्यंत आवश्यक है कि शोध प्रारूप, आँकड़े या तथ्य इकट्ठे किए जाने वाली पद्धति से पृथक होता है।

''यह देखना असामान्य नहीं है कि शोध प्रारूप को तथ्यसंकलन के तरीके के रूप में देखा जाता है बजाए इसके कि जाँच की तार्किक संरचना के।'' (एन. वाई. यू. 2010:1.9)

शोध प्रारूप और विशिष्ट तथ्य संकलन की पद्धतियों के मध्य संबंध

प्रारूप का प्रकार	प्रयोगात्मक	केस-स्टडी	अनुलंबप्रारूप	क्रास-सेक्शनल प्रारूप
तथ्य संकलन की पद्धति	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) अवलोकन दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ	प्रश्नावली साक्षात्कार (संरचित या शिथिल संरचित) दस्तावेजों का विश्लेषण अप्रत्यक्ष पद्धतियाँ

शोध प्रारूप और तथ्य संकलन की पद्धतियों में संबंध को न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी वेबसाइट (पृ.10) में *'शोध प्रारूप क्या है ?'* अध्याय के अंतर्गत इस प्रकार से प्रस्तुत किया गया–

सामान्यतः शोध प्रारूपों को अक्सर गुणात्मक और गणनात्मक शोध पद्धतियों के साथ जोड़ा जाता है। सामाजिक सर्वेक्षण और प्रयोगों को अक्सर गुणात्मक शोध के प्रमुख उदाहरणों के रूप में परिलक्षित किया जाता है और उनका मूल्यांकन गुणात्मक शोध पद्धतियों, सांख्यिकीय और विश्लेषण की क्षमता और कमजोरियों के विपरीत किया जाता है। दूसरी तरफ वैयक्तिक अध्ययन प्रविधि को अक्सर गुणात्मक शोध के प्रमुख उदाहरण के रूप में माना जाता है जोकि तथ्यों के अध्ययन हेतु विवेचनात्मक उपागम का इस्तेमाल करता है। किसी भी प्रकार के शोध प्रारूप को गुणात्मक या गुणनात्मक पद्धति से जोड़ना भ्रांतिपूर्ण अथवा गलत है। शोध प्रारूप के निर्माण के समय यह जरूरी है कि हमें आवश्यक साक्ष्यों के प्रकारों को निर्धारित कर लेना चाहिए ताकि शोध प्रश्नों का उत्तर भ्रामक न हो। शोध इस प्रकार से संरचित करना चाहिए कि उससे साक्ष्य वैकल्पिक प्रतिद्वंदी व्याख्या प्रस्तुत करें और यह निश्चित करने में सक्षम

बनाए कि कौन-सी प्रतिस्पर्धी व्याख्या आनुभाविक रूप से ज़्यादा विश्वसनीय है। इसका यह भी अभिप्राय है कि हमें तटस्थ रहते हुए साक्ष्यों को वरीयता देनी चाहिए। एन. वाई. यू. (2010:16)

3.7 शोध प्रारूप के प्रकार

विभिन्न विद्वानों ने शोध प्रारूप के भिन्न-भिन्न प्रकारों का उल्लेख किया है।

अल्फ्रेड जे.काहन ने **चार** प्रकार के शोध प्रारूप का उल्लेख किया है –

1. यादृच्छिक अवलोकन पूर्व-अनुसंधान अवस्था
2. अन्वेषणात्मक अथवा निरुपणात्मक अध्ययन
3. निदानात्मक अथवा वर्णनात्मक अध्ययन
4. प्रयोगात्मक प्रारूप

न्यूयार्क यूनिवर्सिटी की फैकल्टी क्लास वेबसाइट (2010 : 10) में *'शोध प्रारूप क्या है ?'* अध्याय के अंतर्गत **चार** प्रकार के शोध प्रारूपों को उल्लेखित किया गया है –

1. प्रयोगात्मक (Experimental)
2. वैयक्तिक अध्ययन (Case Study)
3. अनुलंबप्रारूप (Longitudinal)
4. अनुप्रस्थ काट प्रारूप (Cross-Sectional Design)

सुसन कैरोल (2010:1) द्वारा शोध प्रारूप के **आठ** प्रकारों का उल्लेख किया गया है –

1. ऐतिहासिक शोध प्रारूप (Historical Research Design)
2. वैयक्तिक और क्षेत्र शोध प्रारूप (Case and Field Research Design)
3. विवरणात्मक या सर्वेक्षण शोध प्रारूप (Descriptive or Survey Research Design)
4. सह-संबंधात्मक या प्रत्याशित शोध प्रारूप (Correlation or Prospective Research Design)
5. कारणात्मक, तुलनात्मक या एक्स पोस्ट फैक्टो शोध प्रारूप (Causal, Comparative or Ex-post Facto Research Design)
6. विकासात्मक या समय-श्रेणी शोध प्रारूप (Developmental or Time Series Research Design)
7. प्रयोगात्मक शोध प्रारूप (Experimental Research Design)
8. अर्द्ध प्रयोगात्मक शोध प्रारूप (Quasi Experimental Research Design)

सेल्टिज, जहोदा तथा उनके सहयोगियों द्वारा **तीन** प्रकार के शोध प्रारूपों का उल्लेख किया गया है -

1. अन्वेषणात्मक अथवा निरुपणात्मक अध्ययन
2. वर्णनात्मक अध्ययन
3. कारणात्मक उपकल्पनाओं के परीक्षण सेसंबंधितअध्ययन

मोटे तौर पर, शोध प्रारूपों को **चार** महत्वपूर्ण भागों में विभक्त किया जा सकता है –

1. **अन्वेषणात्मक प्रारूप**
2. **विवरणात्मक या वर्णनात्मक शोध प्रारूप**
3. **व्याख्यात्मक प्रारूप**
4. **प्रयोगात्मक प्रारूप**

किसी विशिष्ट शोध प्रारूप का चयन मुख्यत: शोध की प्रकृति पर निर्भर करता है। कौन-से तथ्यों की आवश्यकता है? कितने विश्वसनीय तथ्य चाहिए? प्रारूप की उपयुक्तता क्या है? लागत कितनी आएगी? इत्यादि कारकों पर भी शोध प्रारूप का चुनाव निर्भर करता है।

1. अन्वेषणात्मक या निरुपणात्मक शोध प्रारूप

जब सामाजिक शोध का मुख्य उद्देश्य समस्या के संबंधमें नवीन तथ्यों के बारे में प्रारंभिक जानकारी प्राप्त करना हो तो इस प्रारूप का इस्तेमाल किया जाता है। इसमें शोधकर्ता को अध्ययन समस्या से संबंधित वास्तविक कारकों एवं तथ्यों का संज्ञान नहीं होता है। वह अध्ययन द्वारा उनका पता लगाता है। चूँकि इसमें नवीन तथ्यों को तलाशा जाता है इसलिए इसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप कहा जाता है। इस प्रारूप की सहायता से सिद्धांतकी निर्मिति होती है।

सेल्टिज के अनुसार,

> *"अधिक निश्चित शोध के लिए संबद्ध उपकल्पना के निरूपण में सहायक अनुभव प्राप्त करने के लिए अन्वेषणात्मक शोध आवश्यक है।"*

यदा-कदा अन्वेषणात्मक और व्याख्यात्मक शोध प्रारूप को एक ही मान लिया जाता है और कई विद्वानों द्वारा तो व्याख्यात्मक शोध प्रारूप का जिक्र तक नहीं किया गया है। गौर से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि जिस व्याख्यात्मक शोध में कार्य-कारण संबंधोंपर विस्तृत वर्णन प्रस्तुत करने की कोशिश की जाती है, वह होता है व्याख्यात्मक शोध प्रारूप और जिसमें नवीन तथ्यों द्वारा विषय को स्पष्ट किया जाता है, उसे अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप के अंतर्गतरखते हैं। इसमें अध्ययन विषय के बारे में शोधकर्ता को जानकारी नहीं रहती है। वह द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से ही जानकारी प्राप्त करता है। अज्ञात तथ्यों की तलाश करने के कारण अथवा विषय से संबंधितअपूर्ण ज्ञान रखने के कारण इस शोध प्रारूप में

सामान्यत: उपकल्पनाएँ नहीं निर्मित की जाती हैं। उपकल्पनाओं के स्थान पर शोध प्रश्नों को स्थान दिया जाता है और उन्हीं शोध प्रश्नों के उत्तरों की तलाश द्वारा शोध कार्य पूर्ण किया जाता है।

विलियम जिकमण्ड (1988 :73) ने अन्वेषणात्मक शोध के प्रमुख रूप से **तीन** उद्देश्य बताए हैं–

- नए विचारों की खोज करना।
- परिस्थिति का निदान करना।
- विकल्पों को छाँटना।

इस प्रारूप में सामाजिक समस्या के अंतर्निहित कारणों को तलाशने के कारण लचीलापन होना आवश्यक है। अधिकांशतः इसमें तथ्योंकी गुणात्मक प्रकृति होती है। अतः अत्यधिक तथ्यों एवं सूचनाओं कोप्राप्त करने का प्रयास किया जाता है। तथ्य संकलन की प्रविधि भी इसकी प्रकृति के अनुसार ही होनी चाहिए। समय और संसाधन आदि का भी विशेष ध्यान रखना चाहिए।

2. विवरणात्मक या वर्णनात्मक शोध प्रारूप

सामाजिक विज्ञान शोध के क्षेत्र में वर्णनात्मक शोध का अधिक महत्वपूर्ण स्थान है। इसका मुख्यउद्देश्य अध्ययन की जा रही इकाई, समूह, संस्था, घटना, समस्या, समुदाय या समाज इत्यादि से संबंधितपक्षों का संपूर्ण वर्णन करना है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि शोध विषय व घटना सेसंबंधितसभी प्रकार की यथार्थ सूचनाएँ प्राप्त हो जाएँ। यथार्थ सूचनाओं के अभाव में अध्ययन विषय व समस्या के बारे में जो कुछ भी विवरण प्रस्तुत किया जाएगा वह वैज्ञानिक न होकर दार्शनिक विवरण ही होगा। यह प्रारूप दृढ़ एवं अलचीला प्रकृति का होता है इसमें विशेष सावधानी रखने की जरूरत होती है। इस बात पर विशेष ध्यान देने की आवश्यकता है कि निदर्शन पर्याप्त एवं प्रतिनिधित्वपूर्ण हो। प्राथमिक तथ्य संकलन की प्रविधि स्पष्ट हो तथा उसमें किसी भी प्रकार से पूर्वाग्रह या मिथ्या झुकाव न आ पाए। अध्ययन समस्या से संबंधितविस्तृत तथ्यों को संकलित किया जाता है, अनुपयोगी एवं अनावश्यक तथ्यों का संकलन न हो इसके लिए सतर्कता बरतनी चाहिए। अध्ययन पूर्ण व यथार्थ हो और अध्ययन समस्या का वास्तविक चित्रण हो इसके लिए विश्वसनीय तथ्यों का होना अत्यंत आवश्यक है।

इसमें शोध विषय के बारे में शोधकर्ता को अपेक्षाकृत जानकारी पर्याप्त मात्रा में रहती है इसलिए वह शोध संचालनसंबंधी निर्णयों को पहले ही निश्चित कर लेता है। वर्णनात्मक शोध प्रारूप के लिए अलग से कोई चरण नहीं होते हैं। सामान्यत: इसमें सामाजिक शोध के चरणों का पालन किया जाता है। संपूर्णएकत्रित सामग्री के आधार पर ही आवश्यकता के अनुसार सामान्यीकरण प्रस्तुत किए जाते हैं।

3. व्याख्यात्मक शोध प्रारूप

यह शोध प्रारूप, शोध समस्या की कारण सहित व्याख्या करता है। व्याख्यात्मक शोध प्रारूप की प्रकृति प्राकृतिक विज्ञानों की प्रकृति के सदृश्य ही होती है, जिसमें किसी भी वस्तु घटना/परिस्थिति का विश्लेषण ठोस कारणों के आधार पर किया जाता है। यह प्रारूप सामाजिक तथ्यों की कार्य-कारण व्याख्या प्रस्तुत करता है। इस प्रारूप में विभिन्न उपकल्पनाओं का परीक्षण किया जाता है तथा चरों/परिवर्त्यों में संबंध और सह-संबंध खोजने का प्रयत्न किया जाता है।

4. प्रयोगात्मक शोध प्रारूप

इस शोध प्रारूप में अध्ययन समस्या के विश्लेषण हेतु किसी न किसी प्रकार का 'प्रयोग' शामिल होता है। यह प्रारूप नियंत्रित स्थिति में ज़्यादा उपयुक्त होता है, जैसे कि प्रयोगशालाओं में होता है। सामाजिक अध्ययनों में सामान्यत: प्रयोगशालाएं नहीं होती है। सामाजिक शोधकर्ता की प्रयोगशाला समाज ही होता है। उनमें नियंत्रित और अनियंत्रितसमूहों के आधार पर प्रयोग किए जाते हैं। इस प्रकार के शोध प्रारूप में सामाजिक घटनाओं के विभिन्न पक्षों या चरों में से कुछ को नियंत्रित रखते हुए अन्य चरों पर नवीन परिस्थितियों के प्रभाव को जाँचते हैं।

3.8 निष्कर्ष

उक्त संपूर्णविवरण से यह स्पष्ट है कि शोध प्रारूप, सामाजिक शोध की एक वृहत् योजना, एक संरचना तथा प्रणाली है जो शोध संबंधीप्रश्नों का न केवल उत्तर प्रस्तुत करती है, अपितु प्रसरणों को भी नियंत्रित करती है। शोध प्रारूप शोध के एक महत्वपूर्ण अंश की तार्किक व सुव्यवस्थित योजना तथा निर्देशन है। यह शोध प्रक्रिया में प्रश्नों की रचना से लेकर, निदर्शन विधि, तथ्य संकलन की प्रविधियों का चुनाव तथा प्राथमिक तथ्यों के संकलन और उसके बाद विश्लेषण में शोध प्रारूप की भूमिका महत्वपूर्ण होती है।
विद्वानों द्वारा शोध प्रारूप के अनेकों प्रकारों की चर्चा की गई है। चार प्रमुख प्रकारों यथा- अन्वेषणात्मक, विवरणात्मक या वर्णनात्मक, व्याख्यात्मक और प्रयोगात्मक के संक्षिप्त विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि अन्वेषणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य किसी सामाजिक समस्या/घटना/परिस्थिति के बारे में नवीन अंतर्दृष्टि विकसित करना होता है। इसमें अध्ययन समस्या के अंजाम पक्षों को उजागर किया जाता है। इस प्रारूप का मुख्य प्रयोजन सिद्धांत निर्माण होता है । सामान्यत: इस प्रारूप में उपकल्पना के स्थान पर शोध प्रश्नों को प्राथमिकता दी जाती है। विवरणात्मक शोध प्रारूप का मुख्य उद्देश्य अध्ययन विषय का पूर्ण, विस्तृत एवं यथार्थ विवरण प्रस्तुत करना होता है। व्याख्यात्मक प्रारूप में कार्य-कारण संबंध पर विशेष ज़ोर दिया जाता है। प्रयोगात्मक शोध प्रारूप में नियंत्रित परिस्थिति में अवलोकन करते हुए मानवीय संबंधों का क्रमवार अध्ययन किया जाता है। इस प्रारूप में विषय की आवश्यकता के अनुसार आश्रित व स्वतंत्र चरों का परीक्षण भी किया जाता है। इसके लिए मानवीय

हस्तक्षेप द्वारा प्रभाव परिस्थितियों को निर्मित किया जाता है। उसके उपरांत आश्रित चरों पर इसके प्रभाव का निरीक्षण किया जाता है।

3.9 बोध प्रश्न

प्रश्न : 1- शोध अभिकल्प से आप क्या समझते हैं ? इसके विभिन्न प्रकारों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न : 2- परीक्षणात्मक शोध अभिकल्प क्या है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

प्रश्न : 3- अन्वेषणात्मक या निरुपणात्मक शोध प्रारूप क्या है ? संक्षेप में वर्णन कीजिए।

प्रश्न : 4- शोध प्रारूप की अंतर्वस्तु क्या है ? स्पष्ट कीजिए।

3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

यिन, आर. के. (1991). *केस स्टडी रिसर्च : डिजाइन एण्ड मैथड.* सेज पब्लिकेशन्स, सी.ए : न्यूवरी पार्क.

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च : सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुरः रावत पब्लिकेशन्स।

मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च : डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स.* सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली.

यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वेस एण्ड रिसर्च.* नई दिल्ली : प्रेन्टिस हाल.

डाबी, जॉन टी. (1954). *एन इन्ट्रोडक्शन टू सोशल रिसर्च* (सम्पादित). लंदन : द स्टेकवेल कम्पनी.

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी.* न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन.

कोठारी, एल.आर. (1985), *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली: विश्व प्रकाशन,.

वेबसाइट : न्यूयार्क यूनिवर्सिटी फैकल्टी क्लास वेबसाइट्स

www.nyu.edu/classes/bkg/methods/005847/chapter1 (what is social research?)/Pdf.

खंड 2

समाज कार्य में अनुसंधान विधियाँ

इकाई -1
शोध समस्या का निर्धारण

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य
1.1 प्रस्तावना
1.2 समस्या का निरूपण एवं चयन
1.3 समस्याओं के मापदंड
1.4 समस्या के चुनाव के बारे में व्यावहारिक बातें
1.5 शोध समस्याओं के स्रोत
1.6 समस्या निर्धारण के अभीष्ट चरण
1.7 समस्या निर्धारण का महत्व
1.8 शोध की समस्या के अंग
1.9 सारांश
1.10 बोध प्रश्न
1.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- शोध समस्या के निरूपण और चयन करने में सक्षम हो सकेंगे।
- समस्या चयन के महत्व, अंग और उसके अभीष्ट चरणों के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- समस्या के मापदंड और उसके बारे में व्यावहारिक बातों को रेखांकित कर सकेंगे।

1.1 प्रस्तावना

शोध समस्या का चयन तथा प्रतिपादन किसी भी शोध कार्य का प्रथम एवं महत्वपूर्ण चरण है। विद्वानों का मत है कि एक वैज्ञानिक शोध की शुरुआत एक समस्या के संज्ञान से होती है। मानव स्वभाव से ही जिज्ञासु प्रकृति का होता है। वह हर समय अपने पर्यावरण के प्रति अधिक से अधिक जानकारी इकट्ठा करने का प्रयत्न करता रहता है। इसी मौलिक प्रवृत्ति के कारण उसके मस्तिष्क में कोई न कोई समस्या आती रहती है। उन्हीं समस्याओं के निवारण हेतु शोधकर्ता द्वारा शोध किया जाता है। इस इकाई में

समस्या निर्धारण के महत्व, अभीष्ट चरण और समस्या के अंग, आवश्यकता व उससे संबंधित व्यावहारिक बातों से आप रूबरू होंगे।

1.2 समस्या का निरूपण एवं चयन

सामाजिक क्षेत्र में बिना हल की हुई अनगिनत समस्याएँ हैं तथापि शोध व सर्वेक्षण हेतु उपयुक्त समस्या का चुनाव अत्यंत दुष्कर कार्य है। अनेक बार शोध कार्य करते समय नवशोधकर्ताओं को समस्या के चयन तथा प्रतिपादन में कठिनाई अनुभव होती है। कई बार उन्हें ऐसा अनुभव होता है कि वे जिस क्षेत्र में कार्य करने जा रहे हैं उसका अन्वेषण पहले ही किया जा चुका है। नवशोधकर्ता के साथ इस प्रकार की घटना घटित होनी स्वाभाविक है क्योंकि नव-शोधकर्ता प्रायः शोध समस्याओं के प्रति अपेक्षाकृत अत्यधिक जागरूक नहीं होते हैं। जब तक उनमें वास्तविक शोध मनोवृत्ति का विकास नहीं होता, तब तक उन्हें समस्या के चयन में कठिनाइयों का सामना करना पड़ेगा। समस्याओं के प्रति जागरूकता वैज्ञानिक दृष्टिकोण का परिचायक है।

❖ **समस्या क्या है?**

शोध समस्या किसी ऐसी कठिनाई की ओर संकेत करती है जिसकी अनुभूति शोधकर्ता को उसके शोध के दौरान सैद्धांतिक अथवा व्यावहारिक परिस्थिति के संदर्भ में होती है और वह उसके समाधान प्राप्ति की ओर उन्मुख रहता है -

1. **जान सी.टाउनसेंड-** *"समस्या समाधान हेतु प्रस्तावित एक प्रश्न है।"*
2. **करलिंगर-** *"शोध समस्या एक प्रश्नवाचक वाक्य/कथन है जो यह पूछता है कि दो अथवा उससे अधिक चरों के मध्य कैसा संबंध विद्यमान है?"*

आर.एल.एकॉफ ने किसी शोध समस्या के निरूपण हेतु निम्न **पाँच तत्वों** की उपस्थिति को महत्वपूर्ण माना है –

1) **शोध उपभोक्ता तथा अन्य सहभागी-** प्रत्येक समस्या किसी न किसी व्यक्ति अथवा समूह से संबंधित होती है। सहभागी की श्रेणी में उन लोगों को सम्मिलित किया जाता है, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप से शोध से प्रभावित हो अथवा वे व्यक्ति जो शोधकर्ता के रूप में शोधकार्य का संचालन करेंगे।
2) **उद्देश्य-** शोध उपभोक्ता के कुछ उद्देश्य होते हैं जिसकी पूर्ति हेतु वह शोधकार्य करता है। उद्देश्यों के आधार पर समस्या को विशुद्ध, व्यावहारिक अथवा क्रिया शोध के रूप में समस्या को परिलक्षित किया जाता है। स्पष्ट उद्देश्यों की स्थापना से प्राथमिकताओं को स्थापित करने तथा समस्या के समाधान को तलाशने में मदद मिलती है

3) **उद्देश्य प्राप्ति हेतु विकल्प-** शोधकर्ता के पास उद्देश्यों को प्राप्त करने के लिए कुछ विकल्प अवश्य होने चाहिए। किसी भी समस्या के समाधान के लिए एक से अधिक साधनों को प्रयोग में लाया जा सकता है।

4) **उपभोक्ता में विकल्पों की उपयुक्तता के प्रति संदेश-** शोधकर्ता के मन में विकल्पों की उपयोगिता के संबंध में संशय का होना अत्यंत आवश्यक है अन्यथा समस्या का उद्भव ही नहीं होगा।

5) **समस्या से संबंधित पर्यावरण-** प्रत्येक समस्या से संबंधित एक विशिष्ट वातावरण होता है। यहाँ वातावरण से अभिप्राय उस परिस्थिति से है जिसके अंतर्गत समस्या का अध्ययन किया जाएगा।

1.3 समस्या के मापदंड

करलिंगर ने समस्याओं के लिए मूल रूप से **तीन मापदंडों** को आवश्यक माना है –

- किसी समस्या को दो अथवा दो से अधिक चरों मध्य संबंध को प्रदर्शित करना चाहिए।
- समस्या स्पष्ट प्रश्नात्मक कथन में होनी चाहिए।
- समस्या के प्रश्नात्मक कथन का आनुभविक विधियों द्वारा परीक्षण होना चाहिए।

उक्त मापदंडों के अतिरिक्त कुछ और भी मापदंड हैं जिन्हें नजरंदाज नहीं किया जा सकता है–

1) किसी शोध समस्या के प्रश्नों को नैतिक या नीतिपरक मूल्यों या निर्णयों से संबंधित नहीं होना चाहिए। प्रश्नों को दार्शनिक तथा तत्वमीमांसक नहीं होना चाहिए। इस प्रकार के प्रश्नों का आनुभविक अध्ययन कर पाना कठिन कार्य होता है।
2) वास्तविक शोध समस्या का जन्म मूल समस्या से होना चाहिए।
3) शोध समस्या को न तो अधिक सामान्य होना चाहिए जिससे कि उसके शोध की आवश्यकता अथवा प्रासंगिकता ही न हो और न तो अधिक विशिष्ट होना चाहिए ताकि वह शोध की दृष्टि से बेकार और निरर्थक साबित हो जाए।

1.4 समस्या के चुनाव के बारे में व्यावहारिक बातें-

जिकमंड (1988) के अनुसार शोध समस्या के चयन हेतु निम्नलिखितबिंदु महत्वपूर्ण हैं –

- अध्ययन का उद्देश्य क्या है?
- इस संबंध में पूर्वज्ञान कितना है?
- क्या निश्चित किया जाना है?
- क्या अतिरिक्त जानकारी जरूरी है?

- क्या मूल्यांकित किया जाना है?
- इसका मापन किस प्रकार से किया जाना है?
- क्या इष्टतम आधार पर तथ्य संकलन किया जा सकेगा?
- क्या यह वर्तमान शोध के लिए प्रासंगिक है?
- क्या उपकल्पना की निर्मिति की जा सकती है?
- क्या शोध के लिए समय,धन व संसाधन पर्याप्त मात्रा में हैं?

सामाजिक शोध एक ऐसा कार्य है जो काफी सोच-समझ कर किया जाता है। यदि समस्या के चुनाव तथा निरूपण में असावधानी हो जाए तो शोध के परिणाम भ्रामक होंगे। समस्या के चुनाव के संबंध में निम्नलिखित बातें विचार करने योग्य हैं –

1) समस्या के बारे में प्रारंभिक ज्ञान
2) समस्या के चयन में सावधानी
3) चयन से पूर्व समस्या के स्वरूप को भली-भांति समझ लेना
4) समस्या की प्रकृति के अनुरूप उपयुक्त पद्धति का चयन
5) अध्ययन क्षेत्र के निर्धारण में सावधानी
6) समय, धन व संसाधन के खर्च का लेखा-जोखा
7) सूचनाओं और उनके स्रोतों के बारे में पर्याप्त ज्ञान
8) संभावित कठिनाइयों के बारे में सजगता

1.5 शोध समस्याओं के स्रोत

सामाजिक शोध व सर्वेक्षण के क्षेत्र में समस्या के मूल स्रोत निम्नलिखित हो सकते हैं–

1) संबंधित साहित्य का अध्ययन
    - पाठ्य-पुस्तकें
    - पूर्व में किए गए शोध साहित्य का अध्ययन
    - पत्र-पत्रिकाएँ
2) अनुसंधानों से नई समस्याओं की उत्पत्ति
3) वर्तमान क्रियाओं तथा आवश्यकताओं पर विचार
4) सामाजिक घटनाओं से संबंधित समस्याएँ
5) वैज्ञानिक तथा तकनीकी प्रगति के परिणामस्वरूप उत्पन्न समस्याएँ
6) शोधकर्ता तथा परामर्शदाता संपर्क

7) शोध की पुनरावृत्ति
8) शोधकर्ता का स्वयं का अनुभव

1.6 समस्या निर्धारण के अभीष्ट चरण

शोध समस्या के निर्धारण के निम्नलिखित चरण होते हैं –

1) **समाधान की आवश्यकता होने पर समस्या का अन्वेषण-** इस चरण की अनुपस्थिति पर शोध के संपन्न होने की संभावनाएं नहीं बचती। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से केवल उन्हीं समस्याओं का अध्ययन किया जाना चाहिए जिनका समाधान होना संभव हो।
2) **संचालनीय आकार-** समस्या इस प्रकार की होनी चाहिए जो संचलनीय आकार के कार्य में सुविधापूर्वक समाहित हो सके। समस्या के क्षेत्र को सीमित करते हुए यह भी ध्यान देने की आवश्यकता है कि क्षेत्र इतना भी सीमित न हो जाए कि उस शोध की कोई उपयोगिता ही न रह जाए।
3) **उपकल्पनाओं का प्रतिपादन-** प्रथम दो चरणों के उपरांत समस्या समाधान हेतु उपकल्पनाओं की रचना की जाती है। समस्या निर्धारण के साथसाथ उपकल्पना का स्वरूप भी निश्चित होने लगता है।
4) **अध्ययन में प्रयोग की गई अवधारणाओं का स्पष्टीकरण और औपचारिक परिभाषा-** समस्या के अंतर्गत प्रयोग की जाने वाली अवधारणाओं की निश्चित व सुस्पष्टशब्दों में व्याख्या प्रस्तुत करनी चाहिए और उसकी विस्तृत व्याख्या आगे करनी चाहिए।
5) **कार्य-संचालन परिभाषाओं का निर्धारण-** अवधारणा की संक्षिप्त परिभाषा के पश्चात प्रस्तावित समस्या की अपेक्षाकृत पूर्ण परिभाषा प्रस्तुत की जाती है। जब तक समस्या के संबंध में स्पष्टता नहीं होगी तब तक अच्छे परिणाम नहीं प्राप्त हो सकते।
6) **अन्य ज्ञान की उपलब्धियों को संबंधित करना-** इस चरण के अंतर्गत पहले से किए गए कार्यों का सावधानीपूर्वक अध्ययन करना शामिल है।

1.7 समस्या निर्धारण का महत्व

सामाजिक शोध में समस्या निर्धारण का विशिष्ट महत्व होता है। **जहोदा और कुक** ने इसके महत्व को इस प्रकार से वर्णित करने का प्रयास किया है,*"वैज्ञानिक खोज एक ऐसा कार्य है जो समस्याओं के समाधान की ओर परिचालित होता है।"*

इसी प्रकार **कोहेन और नागेल** ने भी समस्या के महत्व को सामाजिक शोध के क्षेत्र में महत्वपूर्ण मानते हुए कहा है,*"यह विचार पूर्णतया स्पष्ट है कि केवल तथ्यों के अध्ययन से ही यथार्थ का पता लगाया जाना चाहिए क्योंकि जब तक व्यावहारिक अथवा सैद्धांतिक परिस्थिति के अंदर किसी परेशानी का अनुभव*

नहीं किया जा सकता तब तक कोई भी तलाश प्रारंभ नहीं हो सकती। परेशानी अथवा समस्या ही तथ्यों में किसी-न-किसी ऐसी व्यवस्था को निर्देशित करती है जिसके संदर्भ में उस कठिनाई को दूर किया जाता है।"

उक्त सभी विचारों के आधार पर यह स्पष्ट तौर पर कहा जा सकता है कि शोध का पहला चरण ही समस्या के निरूपण पर आधारित होता है। समस्या के निरूपण के बिना शोध के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं जा सकती।

1.8 शोध समस्या के अंग

आर.एल.एकॉफ ने शोध समस्या के **पाँच अंगों** का विवरण प्रस्तुत किया है–

- शोध उपभोक्ता
- अभीष्ट उद्देश्य
- निर्धारित उद्देश्यों को प्राप्त करने का साधन
- अभीष्ट साधन के चुनाव के लिए संशय
- समस्या का पर्यावरण

1.9 सारांश

शोध की समस्या को पहचानने का तात्पर्य है शोध के कुछ प्रश्नों के उत्तर के लिए विशिष्ट क्षेत्रों की पहचान करना। सामाजिक शोध तथा सर्वेक्षण के क्षेत्र में समस्याओं का विस्तार उतना ही विशाल एवं व्यापक है जितना कि सामाजिक व्यवहार का कार्य क्षेत्र विस्तृत और व्यापक है। समस्या के चयन हेतु कुछ चरण और मापदंड निर्धारित होते हैं जिनकी व्याख्या प्रस्तुत इकाई में की गई है। उनके आधार पर समस्या का निर्धारण करना होता है और यह उपयुक्त समस्या शोध अथवा सर्वेक्षण के कार्य को मजबूत आधारशिला प्रदान करती है।

1.10 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : समस्या के चुनाव के बारे में व्यावहारिक बातों पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 2 : समस्या क्या है ? इसके विभिन्न तत्वों का वर्णन करें।

प्रश्न 3 : समस्या निर्धारण के अभीष्ट चरणों का वर्णन करें।

प्रश्न 4 : टिप्पणी लिखिए :

1. शोध समस्याओं के स्रोत
2. समस्या निर्धारण का महत्व

2. समस्या के मापदंड

1.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्य, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च: सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

एकॉफ,आर.एल. (1953). द *डिजाइन ऑफ सोशल वर्क*. यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च*. लंदन : द फ्री प्रैस।

कारलिंगर, फ्रेड आर. (1964). *फाउन्डेशन ऑफ बिहेवियोरल रिसर्च*. दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशन्स।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च*. (चौथा संस्करण), न्यूयॉर्क : एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल।

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई -2

उपकल्पना (Hypothesis)

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ
2.3 उपकल्पना की विशेषताएँ
2.4 उपकल्पनाओं के निर्माण में समस्याएं
2.5 उपकल्पना के प्रकार
2.6 उपकल्पना निर्माण के स्रोत
2.7 उपकल्पना का महत्व
2.8 उपकल्पना की सीमाएँ
2.9 सारांश
2.10 बोध प्रश्न
2.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- उपकल्पना के अर्थ, विशेषताओं एवं प्रकारोंके बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- सामाजिक अनुसंधान में उपकल्पा के महत्व और इसकी सीमाओं को रेखांकित एवं विश्लेषित कर सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

2.1 प्रस्तावना

उपकल्पना को प्राक्कल्पना, परिकल्पना, पूर्व कल्पना आदि नामों से भी जाना जाता है। शब्द व्युत्पत्ति की दृष्टि से प्राक्कल्पना दो शब्दों प्राक्+कल्पना के योग से बना है, जिसका अभिप्राय है पूर्व चिंतन। उपकल्पना शब्द अँग्रेजी के शब्द 'hypothesis' का हिंदी रूपांतरण है जो ग्रीक भाषा के शब्द '*hypotithentai*' से व्युत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है'अनुमान लगाना'। इस आधार पर यह कहा जा सकता है कि उपकल्पना एक अनुमानित परिणाम होता है जिसके परीक्षण हेतु शोध प्रस्तावित किया जाता है। यह वैज्ञानिक शोध या सर्वेक्षण प्रक्रिया का आधारभूत चरणहै।

गुडे एवं हॉट ने इस संबंध में अपने विचार व्यक्त किए हैं *''उपकल्पना अभिव्यक्त करती है कि हम क्या खोज रहे हैं... उपकल्पना अग्रवर्ती देखती है। यह एक प्रस्ताव है जिसकी वैधता निर्धारित करने के लिए परीक्षण हेतु इसे प्रस्तुत किया जा सकता है। यह सामान्य ज्ञान के प्रतिकूल अथवा अनुरूप प्रतीत हो सकती है। किसी घटना में, यह सही अथवा गलत प्रमाणित हो सकती है। तथापि यह एक अनुभावात्मक परीक्षण का मार्गदर्शन कर सकती है।''*

2.2 उपकल्पना का अर्थ एवं परिभाषाएँ

उपकल्पना द्वारा एक वैज्ञानिक अथवा प्रयोगसिद्ध अध्ययन किया जाता है। यह एक ऐसा पूर्वानुमान है जो किसी भी सामाजिक घटना/समस्या के विषय में तलाश करने हेतु प्रोत्साहित करता है। उपकल्पना की अनुपस्थिति में अनुसंधान की न तो दिशा निर्धारित होती है और न ही विषयक्षेत्र का ज्ञान शोधकर्ता को होता है। इसलिए शोधकर्ता के लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि वह तथ्यों के संकलन, अवलोकन के लिए अपनी कल्पना, अनुभव या अन्य किसी स्रोत के आधार पर एक कार्यकारी तर्क-वाक्य की निर्मिति करे और बाद में, शोध के दौरान इस तर्क-वाक्य का परीक्षण करे। सामान्यत: यही तर्क-वाक्य उपकल्पना कहा जाता है।

1. **श्रीमती पी. वी. यंग-** *''एक कार्यवाहक उपकल्पना एक कार्यवाहक केंद्रीय विचार है जो उपयोगी अध्ययन का आधार बन जाता है।''*
2. **जॉर्ज लुण्डबर्ग-** *''उपकल्पना एक सामाजिक तथा काम चलाऊ सामान्यीकरण अथवा निष्कर्ष है, जिसकी सत्यता की परीक्षा करना शेष है। अपने बिल्कुल प्रारंभिक चरणों में उपकल्पना कोई मनगढ़ना अनुमान, कल्पनापूर्ण विचार अथवा सहज ज्ञान इत्यादि कुछ भी हो सकता है, जो क्रिया अथवा अनुसंधान का आधार बन जाता है।''*
3. **बोगार्डस-** *''उपकल्पना परीक्षित होने वाला प्रस्ताव है।''*
4. **एफ. एन. कर्लिंगर-** *''एक उपकल्पना दो या दो से अधिक चरों/परिवर्त्यों के बीच संबंध प्रदर्शित करने वाला एक अनुमानात्मक कथन है।''*

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक में यह कहा जा सकता है कि उपकल्पना एक ऐसी कल्पनात्मक धारणा या पूर्वानुमान है जिसे शोधकर्ता शोध की प्रकृति के आधार पर पूर्व से निर्मित कर लेता है एवं शोध के दौरान उसकी वैधता का परीक्षण करता है। शोध के दौरान यह उपकल्पना सत्य एवं असत्य दोनों हो सकती है। यदि शोध में संकलित एवं विश्लेषित किए गए तथ्यों के आधार पर उपकल्पना प्रमाणित हो जाती है और इसी प्रकार की उपकल्पनाएँ कई बार, कई स्थानों पर अर्थात समय व काल से परे प्रमाणित होती जाती हैं तो वे शनैः शनैः एक सिद्धांत के रूप में स्थापित हो जाती हैं।

2.3 उपकल्पना की विशेषताएँ

कार्यकारी व उपयोगी उपकल्पना की विशेषताएँ निम्नलिखित हैं –

1) उपकल्पना अवधारणात्मक रूप में स्पष्ट होनी चाहिए। **गुडे तथा हॉट** के अनुसार,अच्छी उपकल्पना में स्पष्टता हेतु दो बातें सम्मिलित हैं–
   - उपकल्पना में निहित अवधारणाओं को स्पष्ट रूप से परिभाषित किया जाए।
   - परिभाषाएँ ऐसी स्पष्ट भाषा में लिखी हों कि अन्य लोग भी सामान्यत: उसका सही अर्थ समझ सकें।
2) उपकल्पना में अनुभवात्मक प्रामाणिकता होनी चाहिए। **गुडे तथा हॉट** के अनुसार *"वैज्ञानिक अवधारणाओं में अंतिम अनुभवात्मक प्रामाणिकता होना अत्यंत आवश्यक है।* उनमें नैतिक निर्णय का प्रश्न नहीं होना चाहिए वरन उनका संबंध ऐसे विचारों या धारणाओं से होना चाहिए जिनकी वैधता व सत्यता की परीक्षा अनुभवात्मक प्रामाणिकता के आधार पर की जा सके।
3) उपकल्पना विशिष्ट होनी चाहिए। यदि उपकल्पना में विशिष्टता का गुण नहीं है तो उसकी सत्यता का परीक्षण करना भी कठिन हो जाता है और जो उपकल्पना परीक्षण से परे है वह शोध-वैज्ञानिक के लिए निरर्थक है।
4) उपकल्पनाएँ उपलब्ध प्रविधियों से संबंधितहोनी चाहिए। इसका आशय यह है कि उपकल्पना इस प्रकार की हो कि वह शोध का एक सामयिक आधार भी बन सकती है या नहीं, इसकी परीक्षा उपलब्ध प्रविधियों द्वारा की जा सके।
5) उपकल्पना को सिद्धांत समूह से संबंधित होना चाहिए।उपकल्पना अध्ययन विषय से संबंधित किसी पूर्वस्थापित सिद्धांत के क्रम में हो क्योंकि असंबंधितउपकल्पनाओं की परीक्षा विस्तृत सिद्धातों के संदर्भ में ही की जा सकती है।
6) उपकल्पना में दो या दो से अधिक चरों/परिवर्त्यों के मध्य संभावित संबंध अवश्य प्रदर्शित होना चाहिए।

2.4 उपकल्पनाओं के निर्माणमें समस्याएँ

शोधकर्ता को उपकल्पना के निर्माण में कई समस्याओं का सामना करना पड़ता है।**गुडे एवं हॉट**ने इस संबंध में मूल रूप से**तीन समस्याओं** को प्रस्तुत किया है–

- यदि शोध विषय का पर्याप्त सैद्धांतिक ज्ञान नहीं है तो शोधकर्ता उचित उपकल्पना के निर्माण में सफल नहीं हो सकता।

- यदि शोधकर्ता में शोध विषय से संबंधित तार्किकसैद्धांतिक स्वरूप को इस्तेमाल करने की योग्यता का अभाव है तो भी उपकल्पना का निर्माण संभव नहीं और यदि उपकल्पना निर्मित भी हो जाए तो वह अवश्य ही गलत ढंग से बनेगी।
- वास्तव में यदि शोधकर्ता को उपकल्पनाओं की सत्यता और प्रामाणिकता के परीक्षण हेतु उपलब्ध शोध प्रविधियों के बारे में स्पष्ट जानकारी नहीं है तो भी उपकल्पना के निर्माण में कठिनाईयों का सामना करना पड़ सकता है।

2.5 उपकल्पनाओं के प्रकार

शोधकर्ता को इस बात की जानकारी होनी चाहिए कि सामाजिक शोध में किन-किन प्रकारों की उपकल्पनाओं का इस्तेमाल किया जाता है। भिन्नभिन्न विद्वानों ने भिन्न-भिन्न प्रकार से उपकल्पनाओं का वर्गीकरण प्रस्तुत किया है।

गुडे एव हॉट ने उपकल्पनाओं को उनकी अमूर्तता के आधार पर तीन भागों में वर्गीकृत किया है-

1) **अनुभवात्मक समानताओं के अस्तित्वको बताने वाली उपकल्पनाएँ-**

ये उपकल्पनाएँ प्रायः सामान्य ज्ञान के प्रस्ताव या तर्क का वैज्ञानिक परीक्षण प्रस्तुत करती हैं। समाज और संस्कृति में अनेक कहावतें, लोकोक्तियाँ प्रचलित होती हैं, जिनको उससे संबंधित सभी लोग जानते और मानते हैं। सामाजिक शोधकर्ता उन्हीं को उपकल्पना बनाकर अवलोकनों, आनुभविक तथ्यों तथा आँकड़ों को संकलित करके उनका परीक्षण करते हैं और निष्कर्ष प्रस्तुत करते हैं।

2) **जटिल आदर्श से संबंधितउपकल्पनाएँ-**

इसके अंतर्गत प्रायः एक सामान्य प्रस्ताव पर तर्क या निष्कर्ष को पूर्वाधिकार मानकर अन्यतथ्यों की तर्कपूर्ण रूप से परीक्षा की जाती है। इन उपकल्पाओं का उद्देश्यतथा कार्य उपकरणों तथा समस्याओं की निर्मिति है। इसमें आगे जटिल क्षेत्रों में शोध मदद मिलती है। आदर्श प्रारूप से संबंधित उपकल्पनाओं की परीक्षा तथ्यसंकलित करके जाती है और उसके बाद निष्कर्ष प्रतिपादित किए जाते हैं।

3) **विश्लेषणात्मक चरों के संबंध से संबंधित उपकल्पनाएँ**

ये उपकल्पनाएँ आदर्श प्रकार की सूक्ष्मता से आगे बढ़कर तर्कपूर्ण अंतरसंबंध स्थापित करने का प्रयास करती हैं जबकि अनुभवात्मक समरूपताओं से संबंधित उपकल्पनाएँ सामान्य अंतरों के अवलोकन का मार्ग प्रशस्त करती हैं तथा वे जो आदर्श प्रारूपों से संबंधित हैं विशिष्ट समानताओं के अवलोकनों के मार्ग को प्रशस्त करती हैं विश्लेषणात्मक चरों के अध्ययन के लिए एक गुण में बदलावों के मध्य संबंधोंके सूत्रीकरण की आवश्यकता होती है। यह उपकल्पना

चरों के तार्किक विश्लेषण के अलावा विभिन्न चरों में परस्पर क्या गुण संबंध हैं, उसका भी विशिष्ट रूप से विश्लेषण प्रस्तुत करती है। विभिन्न चर एक-दूसरेपर प्रभाव डालते हैं। इन प्रभावों का तार्किक आधार तलाशना इन उपकल्पनाओं का उद्देश्य है। अक्सर प्रयोगात्मक शोध में इसका अनुशीलन किया जाता है तथा किसी इकाई के अथवा अनेक चरों में स्थित संबंधों को ज्ञात किया जाता है। विश्लेषणात्मक चरों से संबंधितउपकल्पनाएँ अमूर्त प्रकृति की होती हैं।

हेज ने **दो प्रकार** की उपकल्पनाओं को वर्णित किया है–

1) **सरल उपकल्पना**– सरल उपकल्पना में किन्हीं दो चरों के मध्य सहसंबंधज्ञात किया जाता है।

2) **जटिल उपकल्पना-** जटिल उपकल्पना में चर एक से अधिक होते हैं तथा उनमें सहसंबंध ज्ञात करने के लिए उच्च सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया जाता है।

मैक गुइगन ने निम्न प्रकार की उपकल्पनाएँ प्रस्तुत की हैं –

1) **सार्वभौमिक उपकल्पनाएँ-** इसके अंतर्गत वे उपकल्पनाएँ आती है जिनका अध्ययन किया जाने वाला संबंधसभी चरों से सभी समय तथा सभी स्थानों पर रहता है।

2) **अस्तित्वात्मक उपकल्पनाएँ-** वे उपकल्पना जो कम से कम एक मामले में चरों के अस्तित्व को सही विश्लेषित कर सके।

इसके अतिरिक्त विभिन्न आधारों पर उपकल्पनाओं के भिन्नभिन्न प्रकार हैं –

- **प्रकृति के आधार पर**

1) **शोध उपकल्पना-** इसमें यह मानकर चला जाता है कि शोध के प्रतिरूपण और अन्वेषण हेतु यह मूल आधार के रूप में स्थापित है। उदाहरणस्वरूप, संस्था अध्ययन-समूह के शैक्षिक स्तर और उससे संबंधित कानून के प्रतिजागरुकता के स्तर के बीच में है। यह उपकल्पना यह मानकर चल रही है कि शैक्षणिक पृष्ठभूमि औरजागरुकता का स्तर संस्थागत है।

2) **शून्य उपकल्पना-**इसका प्रतिपादन **रोनाल्ड फिशर** ने किया है। इसमें यह मानकर चलते हैं कि दो चर जिनमें संबंध ज्ञात किया जा रहा है उनमें कोई अंतर नहीं है। नल (Null) शब्द पुरातन फ्रेंच भाषा के 'Nul' व 'Nulle" तथा लैटिन भाषा के 'Nullum" शब्द के योग से बना है जिसका शाब्दिक अभिप्राय 'शून्य' व 'प्रभावरहित' होता है। अतएव इस उपकल्पना को शून्य उपकल्पना भी कहते हैं। शून्य उपकल्पना को नकारात्मक उपकल्पना इस अर्थ में मानते हैं कि इनमें यह मानकर चलते हैं कि दो चरोंके मध्य कोई संबंधनहीं है। उदाहरण के रूप में यदि उक्त उदाहरण को संशोधित करके प्रस्तुत किया जाए, यथा शिक्षा और जागरुकता

के स्तर के बीच कोई संस्था नहीं है। इस उपकल्पना के तहत यह साफ तौर पर कहा जा सकता है कि दोनों चरों के मध्य किसी प्रकार का कोई सहसंबंध नहीं है।

- **दिशा निर्दिष्ट भविष्यवाणी के आधार पर**

1) **एक-पुच्छ उपकल्पना-** इस प्रकार की उपकल्पना शोध हेतु दिशा निर्देश प्रस्तुत करती है। सामान्य तौर पर इस प्रकार की उपकल्पना में दूसरे संभावित परिणामों की उपेक्षा की जाती है और यह माना जाता है कि अनुमानित दिशा में ही परिणाम प्राप्त होंगे। उदाहरणस्वरूप, शिक्षा से निर्धनता को कम किया जा सकता है। इस उपकल्पना के अनुसार निर्धनता को कम करने के लिए शिक्षा को आवश्यक कारक के रूप में माना गया है परंतु दूसरे कारकरोज़गार उपेक्षा की गई है जो कि निर्धनता को दूर करने में महत्वपूर्ण भूमिका वहन करता है।

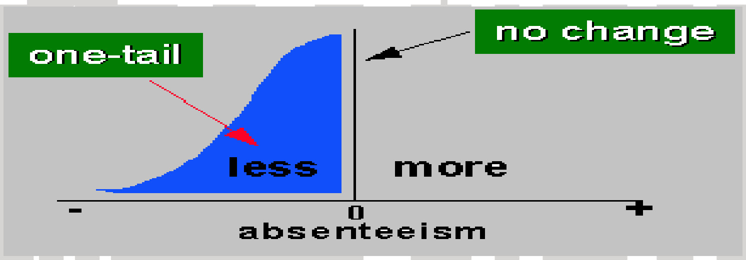

2) **द्वि-पुच्छ उपकल्पना-** वह उपकल्पना जो किसी प्रकार के दिशा निर्देश को प्रस्तावित नहीं करती है द्वि-पुच्छ उपकल्पना कहलाती है। इस उपकल्पना में दूसरे संभावित परिणामोंकी उपेक्षा नहीं की जाती है। इसमें लगाए गए अनुमान परिवर्तनशील होते हैं। उदाहरणस्वरूप, निर्धनता को कम करने हेतु शिक्षा के साथसाथ रोज़गार को भी आवश्यक महत्व दिया जाएगा। इस प्रकार की उपकल्पना में सभी प्रकार के प्राप्त परिणामों पर विचार किया जाता है।

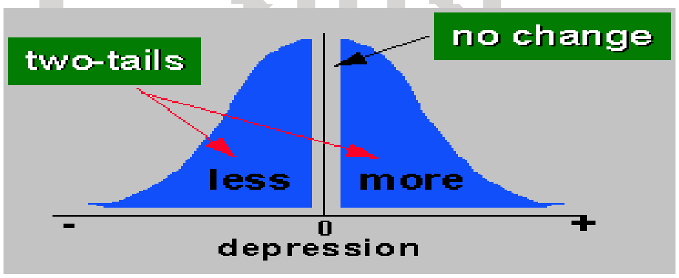

- **सामग्री के आधार पर**

1) **एक-चर उपकल्पना-** इस प्रकार की उपकल्पना अध्ययन के एक पक्ष से संबंधित होती है और इसमें लगाया गया पूर्वानुमान किसी प्रकार के प्रभाव को संदर्भित नहीं करता है। उदाहरणस्वरूप, कक्षा एक के छात्रों में IQ का स्तर न्यून है। इस उपकल्पना में केवल एक पक्ष है कक्षा एक के छात्र का IQ स्तर। यहाँ छात्रों के IQ स्तर से संबंधित किसी प्रकार के प्रभाव की चर्चा नहीं की गई है। कक्षा एक के छात्रों के IQ स्तर का अध्ययन करके उपकल्पना का परीक्षण किया जा सकता है।
2) **द्वि-चर उपकल्पना-** यह उपकल्पना किसी चर से प्रभावित होने और उसे प्रभावित करने के पक्षों को भी संदर्भित करती है। सामान्यतः इस प्रकार की उपकल्पना में **दो प्रकार** के चर पाए जाते हैं, जिसमें एक **स्वतंत्र चर** और दूसरा **आश्रित चर** होता है। स्वतंत्र चर वह जो आश्रित चर को प्रभावित करता है। उदाहरणस्वरूप, अधिक उम्र में IQ का स्तर भी अपेक्षाकृत संवर्धित होता है। इस उपकल्पना में अधिक उम्र स्वतंत्र चर है जो आश्रित चरअर्थात IQ के स्तर को प्रभावित करती है।
3) **त्रय-चर उपकल्पना-** जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है कि इस उपकल्पना में तीन चर समाहित होते हैं। सामान्य तौर पर इसके उदाहरण तुलनात्मक अध्ययन में मिल जाते हैं। उदाहरणस्वरूप, अधिक उम्र के लड़कों में हम उम्र लड़कियों की अपेक्षा IQ स्तर अधिक होता है। यहाँ इस उपकल्पना में तीन प्रकार के चर हैं लिंग, उम्र और स्तर। इस उपकल्पना में हम उम्र में लिंग भेद IQ स्तर को प्रभावित कर रहा है।
4) **बहु-चर उपकल्पना-** जब उपकल्पना में तीन से अधिक चरों का समावेश होता है तो वह बहु-चर उपकल्पना के नाम से जानी जाती है। उदाहरणस्वरूप, आयु, लिंग, आर्थिक स्तर और स्वस्थ पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर IQ स्तर का अध्ययन करना। इस उपकल्पना में कई प्रकार के स्वतंत्र चर हैं और आश्रित चर केवल एक। इसी प्रकार इस उपकल्पना में कई स्वतंत्र चर और एक आश्रित चर की संकल्पना भी मौज़ूद होती है उदाहरणार्थ, IQ स्तर, चिंता का स्तर और भावनात्मक स्तर के आधार पर उम्र का अध्ययन करना।

2.6 उपकल्पना निर्माण के स्रोत

उपकल्पनाओं के सामान्यतः दो प्रमुख स्रोत होते हैं –

1) **वैयक्तिक अथवा निजी स्रोत -** इसके अंतर्गत शोधकर्ता की स्वयं की वैचारिकी, अभिवृत्ति, सूझ-बूझ, विचार, दृष्टिकोण, अनुभव उपकल्पनाओं के निर्माण में अत्यंत महत्वपूर्ण स्रोत हैं। शोधकर्ता अपनी प्रतिभा तथा अनुभवों के आधार पर उपकल्पना को निर्मित कर सकता है।
2) **बाह्य स्रोत-**इसके अंतर्गत शोधकर्ता के अतिरिक्त बाह्य स्रोत यथा- काव्य साहित्य, कल्पना, कविता, नाटक, कहानी, उपन्यास आदि कुछ भी हो सकता है।

गुडे एव हॉट ने उपकल्पना के **चार स्रोतों** का उल्लेख किया है –

1) **सामान्य संस्कृति-** किसी समूह की सामाजिक संरचना में सांस्कृतिक और स्थानीयपरंपराओं का समावेश होता है। अर्थात व्यक्तियों की गतिविधियों को समझने का सबसे अच्छा एवं सरल तरीका है उनकी संस्कृति को समझना। व्यक्तियों का व्यवहार एवं उनका सामान्य चिंतन, एक सीमा तक उनकी अपनी संस्कृति के अनुरूप ही होता है। **गुडे एवं हॉट** का ऐसा मानना है कि *"वृहत सांस्कृतिक मूल्य न केवल शोध अभिरुचियों का पाठ प्रदर्शन करने में ही सहायता प्रदान करते हैं प्रत्युत लोक-प्रज्ञा उपकल्पना की एक-दूसरे के रूप में मदद करती है।"*

इसलिए अधिकांशतः उपकल्पनाओं का मूल स्रोत वह सामान्य संस्कृति होती है, जिसमें विशिष्ट विज्ञान का संवर्धन होता है। सामान्य तौर पर, संस्कृति को **तीन** प्रमुख भागों में विभाजित कर समझा जा सकता है–

- **सांस्कृतिक पृष्ठभूमि** का तात्पर्य सांस्कृतिक पृष्ठभूमि की उन विशेषताओं सेहै जहाँ हम रहते हैं। वे विशेषताएँ उपकल्पना का स्रोत बन सकती है।
- **सांस्कृतिक चिह्न** के अंतर्गत लोक कथाएँ, लोक विश्वास उपकल्पना का स्रोत बन सकती है।
- **सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तनों** के कारण बदले सामाजिक-सांस्कृतिक मूल्य भी उपकल्पना के स्रोत बन सकते हैं।

2) **वैज्ञानिक सिद्धांत-**उपकल्पनाओं का जन्म स्वयं ही विज्ञान में होता है। वैज्ञानिक सिद्धांत जो समय-समय पर विद्वानों द्वारा प्रतिपादित किए जाते हैं, भी उपकल्पना के स्रोत बन सकते हैं। प्रत्येक विज्ञान में कई सिद्धांत होते हैं। इन सिद्धांतों से हमें एक विषय के बारे में कईपहलुओं के संबंधमें ज्ञान प्राप्त होता है।

3) **अनुरूपताएँ/सादृश्यताएँ-**जूलियन हक्सले ने इस बात की ओर संकेत किया है कि *"प्रकृति अथवा दूसरे विज्ञान के स्वरूप में कारणात्मक अवलोकन उपकल्पनाओं के उर्वरक स्रोत हो सकते हैं।"* जब कभी दो क्षेत्रों में कुछ समानताएँ या अनुरूपताएँ परिलक्षित होती हैं तो सामान्यतया, इस आधार पर भी उपकल्पनाओं को निर्मित कर लिया जाता है। अर्थात कभी-कभी दो तथ्यों के मध्य समरूपता/समानता के कारण नई उपकल्पना का सृजन होता है और इनकी प्रेरणा का कारण सादृश्ताएँ होती है।

4) **व्यक्तिगत अनुभव-**व्यक्तिगत अनुभव भी उपकल्पना के निर्माण हेतु महत्वपूर्ण स्रोत होते हैं। उदाहरणस्वरूप, न्यूटन, डार्विन, लैम्ब्रोसो आदि ने अपने व्यक्तिगत अनुभवों पर ही उपकल्पनाओं का निर्माणकिया था।

2.7 उपकल्पना का महत्व-

गुडे एवं हॉट के अनुसार, *"अच्छे शोध में उपकल्पना का प्रतिपादन एक केंद्रीय प्रतिपादन है।"*
मैक्स वेबर का मानना है कि *"प्रत्येक वैज्ञानिक संपादन में नूतन प्रश्नों का निर्माण किया जाता है।"*
सेल्टिज, जहोदा तथा उनके सहयोगियों के शब्दों में, *"उपकल्पनाओं का निर्माण तथा सत्यापन वैज्ञानिक अध्ययन का उद्देश्य है।"*

उपकल्पना के महत्व को इस प्रकार से प्रस्तुत किया जा सकता है–

1) **अध्ययन के उद्देश्य का निर्धारण-** उपकल्पना यह बताती है कि किस चीज का अन्वेषण किया जाए। यह शोध के उद्देश्य का निर्धारण करती है। उपकल्पनाएँ यह बताती है कि किन तथ्यों का संकलन करना है और किन तथ्यों का संकलन नहीं करना है, कौन-से तथ्य हमारे उद्देश्य के अनुरूप और सार्थक है तथा कौन-से निरर्थक।

2) **अध्ययन क्षेत्र को सीमित करना-** उपकल्पना शोध कार्य की सीमा का निर्धारण करके शोधकर्ता का ध्यान विषय के एक विशिष्ट पहलू पर केंद्रित करने का काम करती है। तथ्यों का विश्व बहुत बड़ा है और किसी भी शोधकर्ता के लिए यह असंभव है कि वह एक विषय से संबद्ध सभी पहलुओं का अध्ययन एक ही समय पर करे। ऐसी स्थिति में उपकल्पना अध्ययन क्षेत्र को सीमित कर अध्ययन विषय के एक विशिष्ट पहलू पर शोधकर्ता का ध्यान आकृष्ट करती है।

3) **अध्ययन को उचित दिशा प्रदान करना-** जैसा कि ऊपर भी कहा जा चुका है कि उपकल्पनाएँ शोधकर्ता का ध्यान विषय के एक विशिष्ट पहलू पर केंद्रित कर देती है। इससे शोधकर्ता को एक निश्चित दिशा प्राप्त होती है। उपकल्पना के आधार पर शोधकर्ता यह जानता है कि उसे क्या करना है और क्या नहीं? वास्तव में एक अच्छी उपकल्पना के निर्माण से न केवल अध्ययन क्षेत्र का ही अपितु लक्ष्य का भी स्पष्टीकरण हो जाता है। **श्रीमती पी.वी.यंग** के अनुसार, *"इस प्रकार उपकल्पना का प्रयोग दृष्टिहीन खोज तथा अंधाधुंध तथ्य संकलन से रक्षा करता है, जो बाद में शोध समस्या को अनुपयोगी सिद्ध कर सकते हैं।"*

4) **शोध में निश्चितता लाना-** उपकल्पना की सहायता से एक निश्चित निष्कर्ष प्राप्त किया जा सकता है तथा यह शोध को विशिष्ट व विषयानुकूल बना देगी।

5) **उपयुक्त तथ्यों के संकलन में सहायक-** उपकल्पना शोधकर्ता को समस्या से संबंधित उपयुक्त तथ्यों को संकलित करने हेतु प्रोत्साहित करती है। शोध की शुरुआत में यह भी हो सकता है कि वैचारिक अस्पष्टता के कारण सभी तथ्यों का संकलन कर लिया जाए परंतु बाद में उनमें से कुछ विशिष्ट तथ्यों को ही चुनना पड़ता है तथा इसमें उपकल्पना सहायक होती है।

6) **पुनरावृत्ति को संभव बनाना-** पुनरावृत्ति और पुनर्परीक्षण द्वारा शोध के परिणामों की विश्वसनीयता और सत्यता को उपकल्पना की सहायता से मूल्यांकित किया जाता है।

7) **निष्कर्ष निकालने में सहायक-** उपकल्पना के निर्माण के बाद उससे संबंधित तथ्यों को संकलित किया जाता है तथा उन्हीं तथ्यों के आधार पर यह जाँचने का प्रयास किया जाता है कि वह उपकल्पना सही है अथवा गलत। उपकल्पना में जिन तथ्यों का परस्पर गुण संबंध दिया जाता है उन्हीं की सत्यता की पड़ताल करके शोधकर्ता निष्कर्ष तक पहुँचता है।

8) **सिद्धांत के निर्माण में सहायक-**उपकल्पना के आधार पर ही शोधकर्ता नवीन सिद्धांतों को निर्मित करने की स्थिति तक पहुँचता है। उपकल्पना तथ्यों व सिद्धांतों के बीच की कड़ी होती है, जब उपकल्पना सत्य सिद्ध तथा स्थापित हो जाती है तब वह एक सिद्धांत के रूप में प्रामाणिक हो जाती है।

2.8 उपकल्पना की सीमाएँ

उपकल्पनाएँ सामाजिक शोध में मार्गदर्शन हेतु महत्वपूर्ण होती है। यदि इसका इस्तेमाल सजगता से नहीं हुआ तो यह शोध के लिए खतरा भी बन सकती है। इसकी सीमाएँ निम्नलिखित हैं–

1) **उपकल्पनाओं में अटूट विश्वास-** बहुधा शोधकर्ता कार्यकारी उपकल्पनाओं को ही मार्गदर्शन का अंतिम स्वरूप मानकर तथ्य संकलन करने लगते हैं जो वैज्ञानिकता के विपरीत है। इस संबंध में**श्रीमती पी.वी.यंग** का कहना है कि *"एक शोधकर्ता को अपनी उपकल्पना की शुद्धता को प्रमाणित करने के उद्देश्य से शोधकार्य आरंभ नहीं करना चाहिए।"*

2) **अनुसंधान की असावधानियाँ-** कई बार शोधकर्ता उपकल्पना के निर्माण के दौरान स्वयं की भावनाओं, पूर्वाग्रहों तथा इच्छाओं को नियंत्रित नहीं कर पाता, इस असावधानी के कारण उपकल्पना में पक्षपात आ जाता है, जिसके परिणामस्वरूप दोषपूर्ण निष्कर्ष मिलते हैं।

3) **उपकल्पना पर आधारित तथ्य संकलन-** प्रायः शोधकर्ता उपकल्पना का निर्माण शोधकार्य आरंभ होने के पूर्व ही कर लेता है और उसी आधार पर तथ्यों का संकलन भी आरंभ कर लेता है। परंतु यहाँ यह उल्लेख करना अति आवश्यक है कि अनुभवहीनता के कारण किए गए ये तथ्य संकलन अंत में शोध की गुणवत्ता के लिए हानिप्रद एवं निरर्थक सिद्ध हो सकते हैं।

4) **विशिष्ट अभिरुचि तथा संवेगों का प्रभाव-** यदि अनुसंधानकर्ता अपनी किसी विशिष्ट रूचि और संवेग के कारण एक विशेष अध्ययन-विषय का चुनाव करता है तो निःसन्देह उसकी अभिरुचियों और संवेगों का प्रभाव उपकल्पनाओं पर पड़ेगा, जिससे शोध के परिणाम पक्षपातपूर्ण हो जाएंगे। ऐसी स्थिति में किया गया शोध अवैज्ञानिक हो जाता है।

5) **उपकल्पना आधारित तथ्य-** शोध के प्रारंभ में अध्ययनकर्ता उपकल्पना के आधार पर ही तथ्यों का संकलन करता है। उसे वास्तविक तथ्यों के आधार पर अपनी उपकल्पना में संशोधन

एवं परिवर्तन कर लेना चाहिए उसके उपरांत तथ्य संकलन के कार्य को वास्तविक रूप प्रदान करना चाहिए। ऐसा न करने पर संकलित तथ्य असंगत एवं व्यर्थ सिद्ध हो जाते हैं।

6) **शोधकर्ता का प्रतिष्ठा बिंदु-** बहुधा शोधकर्ता कार्यकारी उपकल्पना को सकारात्मक रूप से प्रमाणित करने में अपनी प्रतिष्ठा जोड़ लेते हैं। ऐसी स्थिति में वे उसे प्रमाणित करने में लगे रहते हैं, जिससे शोध की विश्वसनीयता खतरे में आ जाती है। **श्रीमती पी.वी.यंग** के अनुसार, *"यदि एक वैज्ञानिक किसी परिस्थिति में तथ्यों को सीखना चाहता है तो उसकी उपकल्पना स्वार्थ, अभिरुचि से संबंधित नहीं होगी तथा उसकीख्याति प्रतिष्ठा और संकट में पड़ने के बजाय बढ़ सकती है।"*

2.9 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : उपकल्पना क्या है ? इसकी प्रमुख विशेषताएं बताएं ।

प्रश्न 2 : उपकल्पना के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 3 : उपकल्पना निर्माण के विभिन्न चरणों का वर्णन करें।

प्रश्न 4 : टिप्पणी लिखिए :

1. **शून्य उपकल्पना** 2. **द्वि-चर उपकल्पना** **3. द्वि-पुच्छ उपकल्पना**

2.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च: सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

एकॉफ,आर.एल. (1953). द *डिजाइन ऑफ सोशल वर्क.* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन : द फ्री प्रैस।

कारलिंगर, फ्रेड आर. (1964). *फाउन्डेशन ऑफ बिहेवियोरल रिसर्च.* दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशन्स।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च.* (चौथा संस्करण), न्यूयॉर्क : एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल।

इकाई 3
आँकड़ा स्रोत: प्राथमिक एवं द्वितीयक

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 सूचनाओं के स्रोत
3.3 प्राथमिक सामग्री
3.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता
3.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ
3.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत
3.7 द्वितीयक सामग्री
3.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता
3.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ
3.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत
3.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अंतर
3.12 सारांश
3.13 बोध प्रश्न
3.14 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप –

- तथ्य संकलन की प्राथमिक व द्वितीयक सामग्री को समझा सकेंगे।
- प्राथमिक व द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता, सीमाएँ एवं स्रोत के बारे में जानकारी प्राप्त करेंगे।
- प्राथमिक व द्वितीयक सामग्री में निहित अंतरों से अवगत होंगे।

3.1 प्रस्तावना

सामाजिक शोध का आशय सामाजिक घटना/समस्या/तथ्य के बारे में नवीन जानकारी प्राप्त करना, संचित ज्ञान में संवर्धन करना और निर्मित सिद्धांतों व नियमों में संशोधन अथवा उन्हें पुनःस्थापित करना होता है। इन सभी के लिए तथ्य संकलन प्राथमिक रूप से आवश्यक होता है जो कि शोध को एक आधारशिला प्रदान करता है। अतः सामग्री संकलन में जितनी अधिक सावधानी बरती जाए उतने ही अधिक विश्वसनीय निष्कर्ष प्राप्त होंगे। सामाजिक शोध में विभिन्न प्रकार की प्रविधियों के माध्यम से तथ्य संकलन किया जाता है। इस इकाई में उन्हीं प्रविधियों और उनसे संबंधित पक्षों के बारे में विवरण सम्मिलित किया गया है।

3.2 सूचनाओं के स्रोत

सामाजिक शोध व सर्वेक्षण की विस्तृत योजना बनाने के पश्चात उपयुक्त विधि की सहायता से तथ्य संकलन का कार्य आरंभ किया जाता है। तथ्य संकलन की प्रक्रिया सामाजिक शोध का मूलभूत चरण है। वास्तव में संकलन क्रिया की परिशुद्धता तथा व्यापकता पर ही तथ्यों का विश्लेषण, निर्वचन और प्रस्तुतीकरण आदि प्रक्रियाएँ आश्रित होती हैं। यदि संकलित तथ्य अशुद्ध और अपर्याप्त हो तो उनसे प्राप्त किए गए निष्कर्ष भी विश्वसनीय नहीं होंगे। अतः इस प्रकार से यह कहा जा सकता है कि शोध में तथ्यों के संकलन हेतु विशेष सजगता बरतने की आवश्यकताहै।

सामान्यतः तथ्यों या सामग्री या आँकड़ों को मूल रूप से **दो भागों** में विभाजित किया जाता है –

1. प्राथमिक सामग्री
2. द्वितीयक सामग्री

3.3 प्राथमिक सामग्री

प्राथमिक सामग्री अथवा आँकड़ा उसे कहा जाता है जिसके अंतर्गत शोधकर्ता स्वयं घटनाक्षेत्र पर जाकर या संबंधित व्यक्तियों से साक्षात्कार, अवलोकन, अनुसूची, प्रश्नावली द्वारा आँकड़ों का संकलन करता है। इसे प्राथमिक इसलिए कहा गया है क्योंकि इन्हें शोधकर्ता पहली बार मूल स्रोतों से प्राप्त करता है। इस सामग्री को क्षेत्रीय सामग्री की संज्ञा दी जाती है क्योंकि शोधकर्ता स्वयं इसका संकलन क्षेत्र में जाकर करता है। इसका संकलन शोधकर्ता द्वारा पहली बार पूर्णतया नए सिरे से किया जाता है-

1. **श्रीमती पी.वी.यंग-** *"प्राथमिक सामग्री सबसे पहले स्तर पर एकत्र की जाती है एवं इसके संकलन तथा प्रकाशन का उत्तरदायित्व उस अधिकार पर रहता है, जिसने मौलिक रूप से उन्हें एकत्र किया है।"*

2. **पीटर एच.मन-** *"प्राथमिक स्रोत हमें प्रथम स्तर पर संकलित सामग्री प्रदान करते हैं अर्थात जिन लोगों ने उसे एकत्रित किया है ये उनके द्वारा ही प्रस्तुत की गई सामग्री के मौलिक स्वरूप हैं।"*

3.4 प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता

सामाजिक शोध में प्राथमिक सामग्री की विश्वसनीयता अपेक्षाकृत अधिक होती है अतः उनके संकलन में यथासंभव सावधानी रखने की जरूरत है। प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता को निम्नलिखित गुणों के आधार पर अभिव्यक्त किया जा सकता है –

1) **मौलिक सामग्री का संकलन-** चूँकि शोधकर्ता सामग्री का संकलन उत्तरदाताओं के प्रत्यक्ष संपर्क से करता है अतः उनमें मौलिकता का चरित्र होता है।
2) **स्वाभाविकता-** इसके अंतर्गत शोधकर्ता उत्तरदाताओं से घनिष्ठ संबंध स्थापित कर सकता है अतः जो जानकारी लोगों से उसे व्यक्तिगत संपर्क से प्राप्त होगी उसमें कृत्रिमता का समावेश नहीं होगा।
3) **विश्वसनीय ज्ञान-** प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत चूँकि सामग्री का संकलन उत्तरदाताओं के निकट संबंध स्थापित करके प्राप्त किया जाता है अतः इसमें विश्वसनीयता का गुण अपेक्षाकृत अधिक होता है। इसमें यदि कोई कमी है तो वह है शोधकर्ता द्वारा पक्षपातपूर्ण रवैया अपनाना।
4) **वास्तविक चित्रण-** प्राथमिक सामग्री वास्तविक एवं यथार्थ होती हैं क्योंकि शोधकर्ता संबंधित इकाइयों से संपर्क के आधार पर इनका संकलन करता है।
5) **वस्तुनिष्ठता-** प्राथमिक सामग्री अधिक वास्तविक और वैषयिक होती है। इसके अंतर्गत सूचना प्राप्त करने की जो पद्धतियाँ अपनाई जाती हैं वे वस्तुनिष्ठता लाने में सहायक भूमिका का निर्वहन करती हैं। उदाहरण के लिए अनुसूची के इस्तेमाल से उत्तरदाता से लिखित प्रश्नों के उत्तर का पता लगाना।
6) **व्यावहारिक उपयोगिता-** प्राथमिक सामग्री अधिक व्यावहारिक होती है क्योंकि इसका संकलन स्वयं शोधकर्ता द्वारा शोध के उद्देश्यों की पूर्ति के लिए पूछागया होता है।
7) **लचीलापन-** शोधकर्ता को प्राथमिक सामग्री को संकलित करने में सरलता होती है क्योंकि शोध में शोधकर्ता की व्यक्तिगत उपस्थिति के कारण इसके संकलन में लचीलेपन का गुण पाया जाता है।
8) **विस्तृत जानकारी-** प्राथमिक सामग्री के संकलन से विस्तृत जानकारी का संचार होता है क्योंकि शोधकर्ता घटना अध्ययन पर स्वयं उपस्थित होकर अवलोकन से विभिन्न प्रविधियों के माध्यम से प्राप्त आँकड़ों की जाँच-पड़ताल भी करता रहता है और साथ ही साथ कुछ अन्य जानकारियों को भी इकट्ठा करता रहता है।

9) **नवीनता-** चूँकि शोधकर्ता स्वयं प्राथमिक सामग्री को एकत्र करता है अतः इसमें नवीनता का गुण होता है।

10) **कम व्यय-** प्राथमिक सामग्री की प्राप्ति में कम व्यय करना पड़ता है। यदि अध्ययन क्षेत्र बड़ा है तो प्रतिदर्श के माध्यम से उसे सीमित करते हुए प्राथमिक सामग्री का संकलन आसानी से कम खर्च में किया जा सकता है।

3.5 प्राथमिक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि प्राथमिक सामग्री शोध की आधारशिला है परंतु प्राथमिक सामग्री की अपनी कुछसीमाएँ हैं –

1) **अभिनत और पक्षपातपूर्ण तथ्य संकलन-**प्राथमिक स्रोतों द्वारा संकलित सामग्री पक्षपातपूर्ण अथवा अभिनत हो सकती है। एक ओर शोधकर्ता स्वयं के पक्षपातपूर्ण रवैये से शोध को क्षति पहुँचा सकता है वहीं दूसरी ओर उत्तरदाता भी मिथ्यापूर्ण सूचनाएँप्रदान कर प्राथमिक सामग्री को विकृत कर सकता है।
2) **लचीलापन का अभाव-** इसमें प्रायः लचीलेपन का अभाव पाया जाता है। अपर्याप्त सूचना मिलने पर अनुसूची अथवा प्रश्नावली में आवश्यक संशोधन करके पूरक प्रश्नों को सम्मिलित नहीं किया जा सकता है।
3) **लचीलापन का दुरुपयोग-** एक ओर जहाँ इसमें लचीलेपन का अभाव होता है वहीं दूसरी ओर प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अवलोकन में अपेक्षाकृत अधिक लचीलापन पाया जाता है जिसके कारण शोधकर्ता प्राथमिक सामग्री में अपनी मनमानी करने लगता है।
4) **अधिक धन, समय व संसाधन की आवश्यकता-** प्राथमिक सामग्री के संकलन में अधिक साधन और समय की आवश्यकता होती है क्योंकि इसके संकलन हेतु शोधकर्ता को स्वयं क्षेत्र में जाना पड़ता है। इसके अलावा शोध का क्षेत्र बड़ा होने पर इसमें अधिक शोधकर्ता की आवश्यकता पड़ेगी, जिससे पारिश्रमिक के तौर पर अधिक धन की आवश्यकता पड़ती है।
5) **सीमित अध्ययन क्षेत्र-** प्राथमिक सामग्री के संकलन के लिए प्रायः अध्ययन क्षेत्र सीमित होना चाहिए।
6) **केवल समकालीन घटनाओं तक ही सीमित-** प्राथमिक सामग्री का उपयोग केवल समकालीन घटनाओं के संदर्भ में ही किया जा सकता है। भूतकालीन घटनाओं के संबंध में प्राथमिक सामग्री को संकलित करना अत्यंत दुष्कर कार्य है।
7) **विशेषीकृत कौशल की आवश्यकता-** इसके लिए विशेषीकृत कौशल की आवश्यकता होती है क्योंकि प्राथमिक सामग्री का संकलन वही कर सकता है जो तथ्य संकलन से संबंधित विभिन्न प्रविधियों यथा- अवलोकन, साक्षात्कार, अनुसूची, प्रश्नावली आदि से पर्याप्त रूप से परिचित हो।

3.6 प्राथमिक सामग्री के स्रोत

प्राथमिक सामग्री के संकलन में प्रमुख रूप से **दो स्रोत** हो सकते हैं –

क) प्रत्यक्ष स्रोत

ख) परोक्ष स्रोत

क) प्रत्यक्ष स्रोत

इसके अंतर्गत शोधकर्ता स्वयं अध्ययन क्षेत्र पर जाकर समस्या से संबंधित घटनाओं/समस्याओं तथा आँकड़ों का प्रत्यक्ष निरीक्षण करता है। वह अध्ययन क्षेत्र से संबंधित लोगों से मिल-जुलकर सूचनाएँ एकत्रित करने का प्रयास करता है। प्रत्यक्ष प्राथमिक स्रोत के अंतर्गत तथ्य संकलन निम्नलिखित प्रविधियों व उपकरणों के माध्यम से किया जाता है –

1) **प्रत्यक्ष व्यक्तिगत अवलोकन-** इस प्रविधि के अंतर्गत शोधकर्ता स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर सूचनादाताओं से प्रत्यक्ष तौर पर संपर्क स्थापित करता है तथा अवलोकन के माध्यम से प्राथमिक सामग्री संकलित करता है। प्राथमिक तथ्य उसी दशा में ज़्यादा उपयोगी सिद्ध होते हैं जब शोध का क्षेत्र अपेक्षाकृत सीमित हो। पक्षपात से अप्रभावित रहते हुए सामग्री का संकलन करने हेतु यह प्रविधि सबसे अधिक उपयुक्त है। इस प्रविधि में सामग्री का संकलन अवलोकन के निम्नलिखित प्रकारों द्वारा किया जाता है –

   i. **नियंत्रित अवलोकन द्वारा तथ्य संकलन-** इसमें वांछित परिस्थितियों का निर्माण करके तथा उसमें विषय को रखकर उसके व्यवहार को अवलोकित किया जाता है। इस प्रकार के अवलोकन में पूर्ण रूप से यह निश्चित होता है कि कौन-सी परिस्थितियाँ कौन-से व्यवहार को उत्तेजित कर रही/सकती हैं और किन व्यवहारों का अवलोकन किया जाना है?

   ii. **अनियंत्रित अवलोकन द्वारा तथ्य संकलन-** इसके अंतर्गत चाहे जिस परिस्थिति में व्यवहार घटित होता है शोधकर्ता को उसी परिस्थिति में उसके व्यवहार का अध्ययन करना होता है। इसमें अवलोकनकर्ता तीन प्रकार से अवलोकन कर सकता है –

      a. **सहभागी अवलोकन-** इसमें शोधकर्ता स्वयं उस घटना में शामिल होकर पूर्णतया भाग लेता है तथा उस स्थिति में अन्य भागीदारों की ही भाँति व्यवहार करता है।

      b. **असहभागी अवलोकन-** इसमें अवलोकनकर्ता समूह से बाहर रहकर मूक दर्शक के रूप में व्यवहारों का अवलोकन करता है और उन्हीं के आधार पर सामग्री संग्रहीत करता है।

c. **अर्द्धसहभागी अवलोकन-** इसमें शोधकर्ता पूर्णतया भागीदार न बनकर आवश्यकतानुसार कुछ सीमा तक स्वयं भी सम्मिलित हो जाता है तथा कुछ दशाओं में वह स्वयं को समूह से पृथक रखता है।

2) **व्यक्तिगत साक्षात्कार-** इसमें दो या उससे अधिक व्यक्ति किसी विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति हेतु परस्पर उत्तर-प्रत्युत्तर करते हैं। इसके अंतर्गत शोधकर्ता स्वयं स्थानीय लोगों से संपर्क स्थापित करके बातचीत द्वारा संबंधित तथ्यों को प्राप्त करता है। इसके द्वारा उत्तरदाता के आंतरिक पक्षों से भी वास्तविक सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं।

3) **अनुसूची-** अनुसूची में प्रश्न या खाली सारणियाँ दी होती हैं। शोधकर्ता स्वयं उत्तरदाता के पास जाकर उनसे प्रश्न पूछ कर उत्तर अनुसूचियों में अंकित कर देता है। इस प्रविधि का सबसे बड़ा लाभ यह है कि इसमें अशिक्षित व्यक्तियों से भी सूचनाएँ इकट्ठा की जा सकती हैं।

4) **सम्मेलन-** इसके अंतर्गत शोधकर्ता स्वयं महत्वपूर्ण सम्मेलनों में भाग लेकर आवश्यक तथ्यों का संकलन करता है।

ख) परोक्ष स्रोत

इसमें शोधकर्ता अध्ययन क्षेत्र में गए व उत्तरदाता से संबंध स्थापित किए बगैर ही परोक्ष रूप से कुछ प्रविधियों व उपकरणों की सहायता से प्राथमिक सामग्री को संकलित करने का प्रयास करता है। संकलन की परोक्ष प्रविधियाँ निम्न हैं-

1) **प्रश्नावली-** सामान्यतः प्रश्नावली उन प्रश्नों का सुव्यवस्थित समुच्चय है जिनको जनसंख्या के उस प्रतिदर्श के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है जिससे सामग्री संकलित करनी है। सामान्यतः प्रश्नावली डाक द्वारा प्रेषित की जाती है परंतु यह लोगों को हाथ से भी वितरित की जाती है। प्रत्येक स्थिति में इसमें सूचनाओं का अंकन उत्तरदाता द्वारा ही किया जाता है। इसका प्रयोग तब किया जाता है जब शोध क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत हो।

2) **परोक्ष मौखिक अन्वेषण द्वारा-** परोक्ष मौखिक अन्वेषण प्रविधि का प्रयोग उस दिशा में किया जाता है जब उत्तरदाता आवश्यक जानकारी देने से विमुख हो जाते हैं अथवा तथ्य जटिल प्रकृति के हों। इनका इस्तेमाल अधिकांशतः आयोगों और समितियों द्वारा किया जाता है।

3) **स्थानीय स्रोतों और संवाददाताओं से तथ्य संकलन** इस प्रविधि में शोधकर्ता द्वारा विभिन्न स्थानों पर स्थानीय व्यक्ति अथवा संवाददाता नियुक्त किए जाते हैं जो समय-समय पर अपने अनुभव के आधार पर सूचनाएँ प्रेषित करते रहते हैं। इसका प्रयोग अधिकांशतः समाचार-पत्र, पत्रिकाओं इत्यादि में किया जाता है।

4) अन्य द्वारा-उक्त प्रविधियों के अतिरिक्त **मिल्डेड पार्टेन** ने निम्नलिखित तीन उपकरणों का उल्लेख किया है –

i. **रेडियो अपील-** विस्तृत क्षेत्र में पाए जाने वाले भिन्न-भिन्न उत्तरदाताओं से सूचनाओं के संकलन में इस प्रविधि का प्रयोग किया जाता है। इसमें सूचनाएँ शीघ्रता से कम व्यय पर ही उपलब्ध हो जाती हैं।

ii. **दूरभाष साक्षात्कार-** इस उपकरण की सहायता से व्यक्तिगत साक्षात्कार से कम लागत और समय में सूचनाओं को संकलित कर लिया जाता है।

iii. **पेनल प्रविधि-** इसके अंतर्गत कुछ लोगों का एक समूह/दल बना लिया जाता है जो शोधकर्ता को जनता की वैचारिकी, अभिरुचि और दृष्टिकोण के बारे में सूचनाएँ प्रदान करता है। कभी-कभी दलीय मन-मुटाव होने के कारण उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

3.7 द्वितीयक सामग्री

सामान्यतः शोध में शोधकर्ता अपने चयनित अध्ययन क्षेत्र से प्राथमिक सामग्री का संकलन करता है, तथापि अपने शोध को अधिक विश्वसनीय और वैध बनाने हेतु द्वितीयक सामग्री का भी संकलन करता है। द्वितीयक सामग्री शोधकर्ता के वर्तमान समाज की वैचारिकी को अस्तित्व प्रदान करती है और समाज वैज्ञानिकों को सामान्यीकरण हेतु प्रारंभिक सामग्री प्रदान करती हैं। प्राथमिक सामग्री के विपरीत द्वितीयक सामग्री होती है। एक द्वितीयक सामग्री सदैव अपनी सत्ता किसी अन्य अथवा प्राथमिक सामग्री से प्राप्त करती है। इसमें प्रायः लिखित प्रलेखों को शामिल किया जाता है, जिसके कारण कई बार इसे ऐतिहासिक स्रोत अथवा प्रलेखीय स्रोत की संज्ञा भी दी जाती है -

1. **जी.ए.लुण्डबर्ग-** *"सामान्यतः शोधकर्ता प्राथमिक स्रोतों के आधार पर अपनी शोध सामग्री के लिए निर्भर नहीं रहते बल्कि द्वितीयक स्रोत भी उन्हें मूल्यवान, महत्वपूर्ण एवं अनिवार्य सामग्री प्रदान करने तथा उनके शोध कार्य को पूरा करने में सहायक होते हैं।"*
2. **करलिंगर-**"*द्वितीयक स्रोत किसी एक ऐतिहासिक घटना अथवा स्थिति से अपने मूल स्रोतों से एक या अधिक चरण दूर हटे हुए होते हैं।"*
3. **श्रीमती पी.वी.यंग-**"*द्वितीयक स्रोत वे होते हैं जो मौलिक स्रोतों से अभिलेखित अथवा संकलित की गई सामग्री प्रदान करते हैं तथा जिनके प्रख्यापन के लिए अधिकार रखने वाला व्यक्ति प्रथम बार सामग्री के संकलन को नियमित करने वाले व्यक्ति से भिन्न होता है।"*
4. **पीटर एच.मन-** *"प्राथमिक स्रोतों को द्वितीयक स्रोत, जिनके द्वारा द्वितीयक स्तर पर सामग्री एकत्रित की जाती है अर्थात सामग्री का संकलन प्रथम स्तर पर न होकर अन्य लोगों की मूल सामग्री से किया जाता है, से भिन्न माना जाता है।"*

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि द्वितीयक सामग्री का संकलन लिखित स्रोतों यथा- समाचार-पत्र, पत्रिकाओं, प्रकाशित व अप्रकाशित लेख, सांख्यिकीय विवेचन, रिपोर्ट, डायरी आदि की सहायता से किया जाता है। लिखित सामग्री का प्रयोग करके शोधकर्ता अपने संकुचित विशिष्ट दायरे से बाहर निकलकर स्वयं समाज विज्ञान की अति सूक्ष्म प्रवृत्ति से परिचय स्थापित कर सकता है।

3.8 द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता

यद्यपि सैद्धांतिक रूप से प्राथमिक सामग्री का उपयोग द्वितीयक सामग्री की तुलना में सदैव बेहतर माना जाता है परंतु अक्सर व्यावहारिक रूप में इससिद्धांत में संशोधन करना पड़ता है। सार रूप में यह कहा जा सकता है कि द्वितीयक स्रोत वैज्ञानिक सामान्यीकरण के लिए प्रारंभिक सामग्री प्रदान करते है। शोध में इसकी उपयोगिता को निम्नलिखित बिंदु ओके आधार पर स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है –

1) **सामाजिक इतिहास का परिचय-** द्वितीयक सामग्री के संकलन स्रोतों से किसी समूह या समुदाय के सामाजिक इतिहास के बारे में स्पष्ट समझ विकसित की जा सकती है।
2) **पक्षपात से बचाव-** द्वितीयक सामग्री के प्रयोग में शोधकर्ता के पास पक्षपात की संभावना तथा अपने अनुरूप सामग्री के मूल को तोड़ने-मरोड़ने की संभावना अपेक्षाकृत कम होती है।
3) **गोपनीय तथ्यों का ज्ञान-** इस सामग्री से कई बार उन तथ्यों के बारे में जानकारी प्राप्त होती है जिनसे सामान्यतः लोग अनभिज्ञ होते हैं। द्वितीयक स्रोतों खासकर आत्मकथा, डायरियों आदि से प्राप्त तथ्य से कई अनछुए और गोपनीय तथ्य प्रकाश में आते हैं।
4) **भूतकालीन घटनाओं का अध्ययन-** द्वितीयक सामग्री ही भूतकालीन घटनाओं के बारे में जानकारी प्राप्त करने में सहायक है, क्योंकि इनका क्षेत्र अध्ययन कर पाना संभव नहीं होता है।
5) **असंभव सूचनाओं की प्राप्ति-** वास्तव में कुछ ऐसी घटनाएँ होती हैं जिनका संकलन करना किसी भी एक व्यक्ति विशेष के लिए असंभव होता है यथा- पुलिस व कचहरी के दस्तावेज़, सरकारी रिपोर्ट आदि। परंतु द्वितीयक सामग्री के आधार पर इन असंभव सूचनाओं का संकलन सरलता से हो जाता है।
6) **प्रस्तावित अध्ययन से बचाव-** द्वितीयक सामग्री द्वारा शोधकर्ता न केवल प्रस्तावित अध्ययन के संबंध में अनेक प्रकार की सूचनाओं का संकलन करता है अपितु इनके द्वारा प्राप्त सूचनाओं के आधार पर ही प्रस्तावित अध्ययन के संदर्भ में वह उपकल्पनाओं का निरूपण करने में सफल हो पाता है।
7) **संक्षिप्तता-** शोधकर्ता को एक अकेले द्वितीयक सामग्री में कई प्राथमिक सामग्री का सारांश प्राप्त हो जाता है।

8) **समय व धन की बचत-** सामान्यतः इसके अंतर्गत सूचनाओं के संकलन में अपेक्षाकृत धन व समय की बचत होती है।
9) **आलोचनात्मक स्वरूप-** प्राप्त सामग्री व सूचनाओं से किसी सामाजिक घटना/समस्या विशेष का आलोचनात्मक स्वरूप प्राप्त होता है।

3.9 द्वितीयक सामग्री की सीमाएँ

यद्यपि द्वितीयक सामग्री में कई लाभ निहित हैं तथापि इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं –

1) **विश्वसनीयता का अभाव-** द्वितीयक सामग्री के संकलित स्रोत अविश्वासनीय हो सकते है क्योंकि प्रलेखों की निष्पक्षता और शुद्धता के बारे में स्पष्ट तौर पर कुछ नहीं कहा जा सकता।
2) **पुनर्परीक्षण कठिन-** द्वितीयक सामग्री की पुनर्परीक्षा करना असंभव होता है क्योंकि तथ्य शोधकर्ता की इच्छानुसार घटित नहीं होते हैं और न ही भूतकालीन तथ्यों की पुनर्परीक्षा कर पाना संभव है।
3) **कल्पना का आधार-** इनके अंतर्गत तथ्यों का विवरण उपकल्पनाओं के आधार पर भी प्रस्तुत किया जा सकता है।
4) **लेखक की अभिमति-** द्वितीयक सामग्री का संकलन लिखित स्रोत के आधार पर किया जाता है और यदि लेखक किसी व्यक्तिगत दृष्टिकोण से प्रभावित हो तो प्रलेखों की त्रुटियों से शोध भी प्रामाणिक नहीं रह जाएगा।
5) **सरकारी सामग्री में सदैव विश्वसनीयता का न होना-** कभी-कभी सरकारी सामग्री में भी त्रुटिपूर्ण विवरण होते हैं।
6) **अपर्याप्त सूचना-** सामान्यतः द्वितीयक सामग्री अपर्याप्त होती है, क्योंकि इसका संकलन न ही शोध के उद्देश्य से किया जाता है और न ही इसका संकलन शोधकर्ता द्वारा किया जाता है। बहुत सी सामग्री काल्पनिक स्रोत से भी रचित हो सकती है।
7) **गोपनीय अभिलेख अनुपलब्ध-** इसके अंतर्गत गोपनीय अभिलेख उपलब्ध नहीं हो पाते इसलिए अभीष्ट सूचना की प्राप्ति कठिन हो जाती है।

3.10 द्वितीयक सामग्री के स्रोत

द्वितीयक सामग्री के मूल रूप से **दो स्रोत** होते हैं –

क) वैयक्तिक प्रलेख

ख) सार्वजनिक प्रलेख

ज्ञान शांति मैत्री

क) वैयक्तिक प्रलेख

वैयक्तिक प्रलेखों के अंतर्गत वह संपूर्ण लिखित सामग्री शामिल हैं जो किसी व्यक्ति द्वारा अपने विषय में उसके दृष्टिकोण को व्यक्त करती हो। इसमें लेखक का कोई विशिष्ट शोधात्मक दृष्टिकोण नहीं होता है। व्यक्तिगत प्रलेखों में सामान्यतः लेखक अपने दृष्टिकोण को अभिव्यक्त करता है -

1. **सी.ए.मोजर-** *"व्यक्तिगत प्रलेख अपने बिना मांगे रूप में बहुत मूल्यवान होते हैं। किसी विशिष्ट सामाजिक सर्वेक्षण में भी वे शोधकर्ता को प्रारंभिक खोज व उपकल्पना निर्माण के साधन के रूप में अपना मार्गदर्शन कर सकते हैं।"*
2. **जॉन मेज-** *"अपने संकुचित अर्थ में वैयक्तिक प्रलेख किसी व्यक्ति द्वारा अपने निजी कार्यों, अनुभवों तथा विश्वासों का एक स्वतः लिखित प्रथम पुरुष वर्णन है।"*

सेल्टिज, जहोदा और उनके सहयोगियों के अनुसार वैयक्तिक प्रलखों के अंतर्गत निम्नलिखित तीन तत्व सम्मिलित हैं –

- लिखित प्रलेख
- वे प्रलेख जो व्यक्ति के स्वयं के नेतृत्व में लिखे गए हों
- वे प्रलेख जो व्यक्ति के स्वयं के व्यक्तिगत अनुभव पर प्रकाशडालते हों

वैयक्तिक प्रलेख क्यों और किसलिए रखे जाते हैं, इससे संबंधित कारणों को आलपोर्ट ने उल्लेखित किया है –

1. अपने किसी कार्य के औचित्य को सिद्ध करना
2. स्वीकारोक्ति के लिए
3. क्रमबद्ध वर्णन की इच्छा
4. साहित्यिकता का आनंद जिसमें व्यक्तिगत अनुभव को सुंदर और रोचक तीके से अभिव्यक्त किया जाता है।
5. व्यक्तिगत प्रलेखों में शोध के लिए
6. मानसिक तनाव से छुटकारा पाने के लिए
7. धन-संपत्ति प्राप्ति के लिए
8. किसी सौंपे हुए कार्य को पूरा करने के लिए, कभी-कभी इस प्रकार के प्रलेख दूसरों की आज्ञा के अनुसार लिखे जाते हैं
9. चिकित्सा संबंधी क्विरण के लिए
10. अपराधों की स्वीकृति के लिए जिससे मन का बोझ हल्का हो सके
11. वैज्ञानिक अभिरुचि

12. जनसेवा तथा अपने अनुभवों से सार्वजनिक कल्याण कराने के लिए

शोध उद्देश्य की पूर्ति हेतु वैयक्तिक प्रलेखों के अंतर्गत निम्नलिखित को सम्मिलित किया जा सकता है –

1) **आत्मकथा अथवा जीवन इतिहास-** जीवन इतिहास वस्तुतः विस्तार से लिखी गई लेखक की आत्मकथा होती है। किसी घटना विशेष से संबंधित प्रसिद्ध लोगों की आत्मकथा का उपयोग अध्ययन के लिए किया जा सकता है। उदाहरण के रूप में, महात्मा गांधी द्वारा लिखित पुस्तक 'My Experience with Truth' एक महत्वपूर्ण आत्मकथा है।

   जॉन मेज- *"जीवन इतिहास का सच्चे अर्थ में तात्पर्य विस्तृत आत्मकथा है। सामान्य अर्थ में इसका प्रयोग ढीले-ढाले तौर पर होता है तथा किसी भी जीवन संबंधी सामग्री के लिए इसका प्रयोग किया जा सकता है।"*

   जीवन इतिहास सामान्यतः **तीन प्रकार** के होते हैं –

   i. **स्वतः प्रवर्तित आत्मकथा-** व्यक्ति अपनी इच्छा से भूतकाल की बातों का स्मरण कर जीवन की घटनाओं का क्रमवार ढंग से विवरण प्रस्तुत करता है।
   ii. **स्वैच्छिक आत्म-अभिलेख-** इसकी रचना किसी दूसरे यथा- प्रकाशक, मित्रों, शोधकर्ता या सरकार आदि से प्रेरणा मिलने या उसके कहने पर स्वैच्छिक तौर पर की जाती है।
   iii. **संकलित जीवन इतिहास-** ये वे जीवन इतिहास हैं जिन्हें व्यक्ति स्वयं नहीं लिखता है। उसके द्वारा दिए गए भाषण, प्रकाशित लेख, साक्षात्कार आदि के संकलन आधार पर अन्य व्यक्तियों द्वारा उसके जीवन इतिहास को लेखबद्ध किया जाता है।

जीवन इतिहास का प्रयोग सभी परिस्थितियों में किया जाना संभव नहीं है, इसका प्रयोग मूल रूप से निम्नांकित विशिष्ट परिस्थितियों में किया जाता है–

- गुणात्मक तथ्यों के संकलन में
- गहन और सूक्ष्म अध्ययनों में
- परिवर्तन एवं विकास के अध्ययन में
- आंतरिक जीवन के अध्ययन में

- व्यक्तित्वों के अध्ययन में

2) **डायरियाँ-** व्यक्तिगत प्रलेखों के अंतर्गत लिखी गई डायरियों का विशेष महत्व होता है। अनेक लोग प्रतिदिन डायरियाँ लिखा करते हैं। डायरियों में सामान्यतः घटनाओं के प्रति अपनी भावनाओं का समावेश होता है। जीवन के सामान्य एवं कटु अनुभव विशिष्ट परिस्थितियों में स्वयं की मनःस्थिति, सुख-दुख, रोष-आक्रोश, क्रियाएँ-प्रतिक्रियाएँ, भाव-मनोभाव आदि का विवरण डायरियों में उल्लेखित किया जाता है।
जॉन मेज के अनुसार, *"डायरियाँ सबसे अधिक रहस्योद्घाटन-करिणी होती हैं, खासकर तब जब वे अंतरतम पत्रिकाओं के रूप में प्रयोग कीजाती है तथा दूसरे वे सर्वाधिक स्पष्टता से उन अनुभवों और क्रियाओं का वर्णन प्रस्तुत करती हैं जो घटित होने के समय अधिक महत्वपूर्ण मालूम होते हैं।"*
3) **पत्र-** द्वितीयक स्रोत का एक महत्वपूर्ण साधन व्यक्तिगत पत्र होते हैं। चूँकि पत्र व्यक्तिगत होते हैं अतः इसकी सहायता से लेखक के वास्तविक विचारों, दृष्टिकोण और विचारों का पता सरलता से लगाया जा सकता है।
4) **संस्मरण-** संस्मरण में वे विवरण होते हैं, जो यात्राओं, जीवन घटनाओं अथवा किसी महत्वपूर्ण परिस्थितियों में लिखे गए हैं। प्राचीन काल के यात्रा वर्णन व संस्मरण ने ऐतिहासिक महत्व की सामग्री प्रदान की है। उदाहरणस्वरूप, मेगस्थनीज, ह्वेनसांग,इब्नबतूता, फाह्यान के वर्णन भारतीय सभ्यता व संस्कृति के बारे में महत्वपूर्ण स्तर की जानकारी उपलब्ध कराते हैं।

व्यक्तिगत प्रलेखों के प्रमुख अवगुण यासीमाएँ निम्नलिखित हैं –

- वैयक्तिक प्रलेखों की उपलब्धता की समस्या
- अस्पष्ट और अवैज्ञानिक प्रकृति
- अक्रमबद्ध रूप में घटनाओं का प्रस्तुतीकरण
- दोषपूर्ण सामान्यीकरण
- सीमित अध्ययन में सहायक
- स्मृति भ्रम की समस्या
- पक्षपात और अभिनति की संभावना

- अपेक्षाकृत आत्मविश्वास अधिक
- सांख्यिकीय विश्लेषण के लिए अनुपयुक्त वअप्रामाणिक सूचनाएँ

ख) सार्वजनिक प्रलेख

सार्वजनिक प्रलेख भी व्यक्तिगत प्रलेखों की ही भांति प्रकाशित-अप्रकाशित दोनों ही रूपों में प्राप्त होते हैं। सार्वजनिक प्रलेख में उस प्रकार के प्रलेख आते हैं, जो दस्तावेज़ समाज, जाति, समूह आदि के बारे में उनके कार्यकलाप के रिकार्ड हों या कंपनियों, सरकारी दफ्तरों के दस्तावेज़ आदि होते हैं। कुछ प्रलेखों को तो प्रकाशित कर दिया जाता है परंतु कुछ को गोपनीय रखने के उद्देश्य से अप्रकाशित ही रखा जाता है। उनको संकलित कर पाना एक दुष्कर कार्य होता है। इन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है –

1) प्रकाशित प्रलेख
2) अप्रकाशित प्रलेख

1) प्रकाशित प्रलेख

केवल उन्हीं प्रलेखों को प्रकाशित किया जाता है जो सामान्य जनता द्वारा प्रयोग किए जा सकते हैं। ये सार्वजनिक स्थानों यथा- पुस्तकालयों, वाचनालयों, विद्यालय-महाविद्यालय आदि में सरलता से उपलब्ध हो सकते हैं। ये निम्नलिखित प्रकार के हो सकते हैं –

i. सरकारी प्रकाशन
ii. अर्द्ध-सरकारी प्रकाशन
iii. समितियों तथा आयोगों के प्रतिवेदन
iv. पत्र-पत्रिकाएँ
v. व्यावसायिक संस्थाओं तथा परिषदों के प्रकाशन
vi. विश्वविद्यालयों तथा शोध संस्थानों के प्रकाशन
vii. अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के प्रकाशन
viii. व्यक्तिगत शोधकर्ताओं के प्रकाशन
ix. अन्य संगठनों के प्रतिवेदन
x. अन्य साहित्य

ज्ञान शांति मैत्री

2) अप्रकाशित प्रलेख

ये ऐसे प्रलेख होते हैं जो सार्वजनिक होते हुए भी किसी न किसी विवशता या गोपनीयता के कारण प्रकाशित नहीं हो पाते। इसमें आने वाले प्रलेखों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

i. **रिकार्ड प्रलेख-** किसी लेन-देन संबंधी निर्देशों के संचार अथवा किसी समस्या सेसंबद्ध व्यक्तियों को विभिन्न पक्षों की याद दिलाने में सहायक के रूप में ये प्रलेख प्रयोग किए जाते है। न्यायालयों के रिकार्ड, सैनिक दफ्तरों के रिकार्ड जो प्रतिरक्षा संबंधी महत्व के हैं, बोर्ड-विश्वविद्यालयों के परीक्षा परिणाम रिकार्ड, विभिन्न कंपनियों तथा बैंकों के रिकार्ड जो गोपनीयता संबंधी हैं उन्हें प्रकाशित नहीं किया जाता है।

ii. **दुर्लभ हस्तलेख-** ये वे प्रलेख होते हैं जो विद्वानों, उच्च कोटि के धार्मिक-राजनीतिक व्यक्तियों द्वारा लिखे गए होते हैं, परंतु किसी न किसी कारणवश अप्रकाशित होते हैं। इन हस्तलेखों से बहुत महत्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हो सकती है।

iii. **शोध प्रतिवेदन-** इसके अंतर्गत विभिन्न विश्वविद्यालयों, महाविद्यालयों तथा शोध संस्थानों में एम.ए., एम.फिल., पी-एच.डी. स्तर के शोध रिपोर्ट आते हैं जिनका लेखन शोधार्थियों द्वारा किया गया होता है।

iv. **अन्य अप्रकाशित साहित्य-** इसके अंतर्गत अनेक अप्रकाशित लेखों, कहानियों, लोकगीतों, कविताओं, कहावतों,श्लोकों, सूक्तियों,पहेलियों व अन्य साहित्य को सम्मिलित किया जाता है।

प्राथमिक सामग्री की तरह ही द्वितीयक सामग्री में भी कुछ सीमाएँ अथवा दोष पाए जाते हैं, जो निम्नवत हैं –

1) विश्वसनीयता का अभाव
2) पुनर्परीक्षा असंभव
3) कल्पना का आधार
4) मात्र सामान्य वर्णन
5) गोपनीय अभिलेख की अनुपलब्धता
6) सरकारी सामग्री में सदैव विश्वसनीयता का न होना

3.11 प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अंतर

प्राथमिक और द्वितीयक सामग्री में मुख्य अंतर निम्न हैं–

1) प्राथमिक सामग्री मौलिक होती है जो सामाजिक शोध के लिए कच्चे माल की भांति होती हैं जबकि द्वितीयक सामग्री सामाजिक शोध में प्रायः उपयोग में लाई जा चुकी होती हैं और वह निर्मित माल की भांति होती हैं।
2) प्राथमिक सामग्री का संकलन शोधकर्ता द्वारा स्वयं विभिन्न व्यक्तियों के संपर्क के आधार पर किया जाता है जबकि द्वितीयक सामग्री का संकलन अन्य व्यक्तियों अथवा संस्थाओं द्वारा संकलित तथ्यों को एकत्र करके किया जाता है।
3) प्राथमिक सामग्री के संकलन में अधिक समय, संसाधन और धन की आवश्यकता पड़ती है जबकि द्वितीयक सामग्री के संकलन हेतु पत्रपत्रिकाएँ, सरकारी, अर्द्ध-सरकारी अथवा गैर-सरकारी प्रकाशन आदि सरलता से उपलब्ध हो जाते हैं।
4) प्राथमिक सामग्री हमेशा शोध के उद्देश्यों के अनुरूप होती हैं और उनमें प्रायः संशोधन की आवश्यकता नहीं पड़ती है। इसके विपरीत, द्वितीयक सामग्री के प्रयोग से पूर्व उसकी आलोचनात्मक जाँच की आवश्यकता पड़ती है तथा साथ-ही-साथ उनमें कुछ संशोधन करने पड़ते हैं।
5) प्राथमिक सामग्री में अपेक्षाकृत सत्यापन का गुण अधिक पाया जाता है क्योंकि उसमें अध्ययन क्षेत्र में जाकर तथ्यों का संकलन दोबारा भी किया जा सकता है, परंतु द्वितीयक सामग्री के साथ ऐसा नहीं है।
6) प्राथमिक और द्वितीयक सामग्री में मूल अंतर उनके देशकाल और वातावरण पर निर्भरता से संबंधित है। किसी समय विशेष में जो सामग्री प्राथमिक होती है वह ही कुछ समय के पश्चात किसी दूसरे के लिए द्वितीयक सामग्री होगी।

3.12 सारांश

सामग्री वस्तुतः सामाजिक यथार्थ के किसी विषय में तथ्यों के नवीन अभिलेख तैयार करते समय अथवा पूर्व में उपलब्ध अभिलेखों के आधार पर सूचनाएँ प्राप्त करनेके लिए संकलित किए गए आँकड़ों को कहा जाता है। सामाजिक शोध में सामग्री मूल रूप से दो प्रकार की होती है - प्राथमिक और द्वितीयक। प्राथमिक सामग्री वह है जिनका संकलन शोधकर्ता द्वारा स्वयं अध्ययन क्षेत्र में जाकर व्यक्तिगत संपर्क के माध्यम से किया जाता है और द्वितीयक सामग्री वह होती है जिसे शोधकर्ता वैयक्तिक और सार्वजनिक प्रलेखों के आधार पर संकलित करता है जो प्रकाशित भी हो सकते हैं और अप्रकाशित भी।

3.13 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : प्राथमिक सामग्री के विभिन्न स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 2 : प्राथमिक सामग्री की उपयोगिता एवं सीमा पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3 : द्वितीयक सामग्री के विभिन्न स्त्रोतों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 5 : द्वितीयक सामग्री की उपयोगिता एवं सीमा पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 6 : प्राथमिक एवं द्वितीयक सामग्री में अंतर स्पष्ट कीजिए।

3.14 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च : सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

एकॉफ,आर.एल. (1953). *द डिजाइन ऑफ सोशल वर्क.* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन : द फ्री प्रैस।

कारलिंगर, फ्रेड आर. (1964). *फाउन्डेशन ऑफ बिहेवियोरल रिसर्च.* दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशन्स।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च.* (चौथा संस्करण), न्यूयॉर्क : एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल।

इकाई 4
अनुसंधान विधियाँ I: परीक्षात्मक शोध

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 परीक्षणात्मक शोध
4.3 कारक परिणाम के तर्क
4.4 कारक परिणाम की वैधता
4.5 परीक्षणात्मक शोध की विशेषताएँ
4.6 परीक्षणात्मक शोध के चरण
4.7 परीक्षणात्मक शोध की रूपरेखा
4.8 सारांश
4.9 बोध प्रश्न
4.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के उपरांत आप–

- परीक्षणात्मक शोध के अर्थ और विशेषता से परिचित हो सकेंगे।
- परीक्षणात्मक शोध के चरण एवं रूपरेखा को रेखांकित कर सकेंगे।

4.1 प्रस्तावना

किसी समस्या के अध्ययन के लिए शोध कार्य किया जाता है। शोध समस्या की विशेषताएँ और जाँच का क्षेत्र भी शोध विधि को निश्चित करता है। इस इकाई में शोध की परीक्षणात्मक विधि के बारे में व्यापक विवरण प्रस्तुत किया जाएगा।

4.2 परीक्षणात्मक शोध

परीक्षणात्मक शोध अध्ययनों का सृजन कारक संबंधोंकी स्थापना के लिए किया गया है। यह विधि दो अथवा उससे अधिक परिवर्तियों के मध्य संबंधसे संबंधितहोती है और शोधकर्ता संभावित संबंधके चरित्र को विश्लेषित करने के लिए एक अथवा अधिक उपकल्पनाओं का नियोजन करता है। परीक्षण

एक नियोजित घटना होती है और इसका प्रयोग शोधकर्ता द्वारा उपकल्पना के लिए प्रासंगिक प्रमाण के संकलन में किया जाता है। सामान्यत: परीक्षण की मुख्य रूप से **तीन विशेषताएँ** होती हैं:

- पहली, एक स्वतंत्र परिवर्ती में बदलाव किया जाता है।
- दूसरी, स्वतंत्र परिवर्ती के अलावा दूसरेसभी परिवर्ती स्थिर रखे जाते हैं।
- तीसरी, स्वतंत्र परिवर्ती के बदलाव पर आश्रित परिवर्ती पर प्रभाव को परिलक्षित किया जाता है।

परीक्षण में स्वतंत्र परिवर्ती और आश्रित परिवर्ती आवश्यक होते हैं। स्वतंत्र परिवर्ती में परीक्षणकर्ता द्वारा बदलाव अथवा परिवर्तन लाया जाता है। आश्रित परिवर्ती पर परिवर्तनों के प्रभाव को परिलक्षित किया जाता है और उसका निरीक्षण परीक्षणकर्ता द्वारा किया जाता है लेकिन उसमें कोई बदलाव नहीं लाया जाता है।

परीक्षणात्मक शोध को कारक संबंधोंके परीक्षण हेतु नियोजित किया जाता है। कारक संबंधोंसे आशय दो परिवर्तियों के मध्य संबंधसे है जहाँ एक परिवर्ती (विशेषता) X, दूसरे परिवर्ती (विशेषता) Y को निर्धारित करता है। उदाहरणस्वरूप, यदि शोधकर्ता महिलाओं के एक ऐसे समूह की, जिन्हें उपेक्षित (X) किया गया था, की उससे तुलना करके जिन्हें उपेक्षित नहीं किया गया था, इस कारक संबंधका परीक्षण करना चाहता है कि उपेक्षित नज़रिए (X) से आत्मसम्मान में गिरावट (Y) आती है, तो उसके द्वारा दोनों समूहों को X के लिए संवर्धन के समय में अथवा उसके उपरांत Y के संदर्भ में मापा जाना चाहिए। कारक संबंधके परीक्षण के लिए प्रयोग किए जाने वाले अनेक परीक्षणात्मक अध्ययनों के बारे में बात करने से पूर्व "कारकता" की संकल्पना को जान लेना महत्वपूर्ण होता है।

जे. एस. मिल (1930) के अनुसार, *"कारण किसी चीज के अंतिम कारण के संदर्भ के बिना स्वयं एक परिघटना होता है।"* वे आगे कहते हैं, *"कारकता मात्र एकसमान पूर्ववर्ती है। यद्यपि "कारण' और 'कारकता' का यह विवरण सामाजिक विज्ञान सहित अनेक विज्ञानों में न्यूनाधिक स्वीकृत है परंतु फिर भी अवधारणाओं के बारे मेंसंशय है, खासकर तब जब आप 'पहले कारण', उसके 'बाद के कारण' और 'अंतिम कारण' के बारे में सोचते हैं। इसके परिणामस्वरूप वैज्ञानिक व्याख्या में भी शब्द 'कारण' का अनेक मापनों में अक्सर संदेहहो जाता है।"*

मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि पूर्ववर्ती घटना (कारण) और पूर्ववर्ती घटना द्वारा होने वाली उत्तरोत्तर घटनाएँ (प्रभाव) कारक संबंध रचती है। वैज्ञानिक शोध मुख्य रूप से किसी प्रभाव के लिए जरूरी और पर्याप्त स्थितियों की तलाश करता है, जबकि सहजबोध से यह अनुमान लगाया जा सकता है कि एक कारण उस प्रभाव के लिए पूर्ण विवरण प्रस्तुत कर सकता है जिसके बारे में शोधकर्ता मुश्किल से ही ये विचार करता है कि एक कारण अथवा स्थिति किसी प्रभाव को उत्पन्न करने के लिए जरूरी और

पर्याप्त दोनों हो सकती है, अपितु उसकी दिलचस्पी 'प्रभावों' अथवा 'घटनाओं' की बहुरूपता को संज्ञान में लाने में होती है।

4.3 कारक परिणाम के तर्क

उक्त वर्णन के स्पष्टीकरण हेतु कारक परिणाम के तर्क को समझना अत्यंत आवश्यक है। कारक परिणाम प्राप्ति हेतु तीन स्थितियों की पूर्ति महत्वपूर्ण है–

क्या -

- कारण, प्रभाव से पूर्व समय से होता है ?
- संबंधदो प्रारंभ में परिलक्षित किए गए परिवर्ती में से प्रत्येक के लिए किसी तीसरे परिवर्ती के प्रभाव के फलस्वरूप नहीं होता है ?
- उनके मध्य कोई प्रयोगसिद्ध सहसंबंधहै ?

प्रारूपिक परीक्षणात्मक अध्ययन में दो समूहों का चुनाव इस प्रकार किया जाता है कि वे संयोग के अलावा एक-दूसरे से ज़्यादा अलग नहीं होते हैं। एक समूह स्वतंत्र परिवर्ती (जो परीक्षणात्मक समूह कहा जाता है) के लिए उद्भासित होता है। दोनों समूहों की पुनः प्रभाव जाँच हेतु तुलना की जाती है। वह शोध रूपरेखा जिसमें विषय (परीक्षण के लिए इस्तेमाल होने वाले व्यक्ति) के दो अथवा उससे अधिक ऐसे समूह शामिल होते हैं जो परीक्षण के लिए उद्भासित होते हैं, तो ये माना जाता है कि परीक्षण प्रारंभ करने से पूर्व तुलना किए जाने वाले समूह एक सदृश्य थे। इसे सुनिश्चित करने के लिए तकनीकों के रूप में 'ऐच्छिकता' अथवा 'मिलान' का इस्तेमाल किया जाता है।

4.4 कारक परिणाम की वैधता

कारक परिणाम प्राप्त करते समय दो प्रकार की वैधता पर ध्यान देना चाहिए -

1. आंतरिक वैधता
2. वाह्य वैधता

आंतरिक वैधता से तात्पर्य उस विश्वास से है जो अध्ययन के कारण परिणाम यथार्थ रूप से समझते हैं कि क्या एक परिवर्ती दूसरे का कारण है। यदि कारकता की तीन स्थितियाँ पूर्ण कर ली जाती है तो ये माना जाता है कि कारक परिणाम की आंतरिक वैधता है। बाह्य वैधता का आशय उस मात्रा से है जहाँ तक अध्ययन के कारक परिणाम को सामान्यीकृत किया जा सकता है।

कैम्पबेल और स्टेनली(1963) तथा **कुक और कैम्पबेल** (1971) द्वारा आंतरिक वैधता के लिए कई खतरों का उल्लेख किया गया है –

1) **इतिहास-** इतिहास के खतरे का तात्पर्य उन घटनाओं से है जो परीक्षण के क्रम में होती हैं। यह कहा जाता है कि ये घटनाएँ उस परीक्षण के लिए खतरा है जो लंबे समय तक चलता रहता है और जो घटनाओं केआश्रित परिवर्ती को प्रभावित करने की स्वीकृति प्रदान करता है।
2) **परिपक्वता-** समय गुजरने के साथ परीक्षण के विषय/व्यक्तियों में कई बदलाव परिलक्षित होते हैं। परीक्षण के विषय में ये बदलाव परिपक्वता के बदलाव कहे जाते हैं। यदि इनमें से कोई भी बदलाव आश्रित परिवर्ती में होते हैं तो ये स्वतंत्र परिवर्ती के प्रभाव को भ्रमित कर सकते हैं।
3) **परीक्षण-** पुनरावर्ती परीक्षण कई बार परीक्षण किए जाने वाले परिवर्ती में बिना किसी संगत सुधार के प्रदर्शन को संवर्धित कर देता है। प्रदर्शन में बदलाव से आश्रित परिवर्ती में बदलाव हो सकता है जो बदलाव वास्तव में पुनरावर्ती मापन के कारण है किसी स्वांत्र परिवर्ती के प्रभाव के कारण नहीं।
4) **सांख्यिकीय अवनति-** यदि विषय के अंक बहुत ज़्यादा अथवा बहुत कम हो तो किसी भी समय सांख्यिकीय अवनति का खतरा पैदा हो सकता है। जब इन चरम मसलों को फिर से मापा जाता है तो इसमें अंक अत्यधिक कम होगा। मोटे तौर पर, उनमें औसत अंक की ओर अवनति की प्रवृत्ति निहित होती है।

4.5 परीक्षणात्मक शोध की विशेषताएँ

परीक्षण करने के लिए **तीन** अनिवार्य अंतर्वस्तुएँ हैं –

1) **नियंत्रण-** स्वतंत्र परिवर्ती के प्रभावों को असंदिग्ध रूप से मूल्यांकित करना असंभव है। मूलरूप से परीक्षणात्मक विधि परिवर्तियों के संदर्भ में दो पूर्वानुमानों परनिर्भर करती है–

❖ यदि दो स्थितियाँ हैं और किसी एक स्थिति में जोड़े अथवा घटाए जाने वाले परिवर्ती के अलावा दूसरे सभी संदर्भों में बराबर है तो दोनों स्थितियों में परिलक्षित होने वाले किसी भी अंतर का कारण परिवर्ती होगा। यह **एकल परिवर्ती का नियम** कहा जाता है।

❖ यदि दो स्थितियाँ एक जैसी नहीं है और यह प्रदर्शित करती है कि कोई भी परिवर्ती अन्वेषण की जाने वाली परिघटना का निर्माण करने में प्रभावपूर्ण नहीं है अथवा यदि महत्वपूर्ण परिवर्ती एक समान हो तो किसी एक में नए परिवर्ती के समावेशन के उपरांत दोनों स्थितियों के मध्य होने वाले किसी भी अंतर का कारण नया परिवर्ती हो सकता है। यह **एकमात्र महत्वपूर्ण प्रभावी परिवर्ती का नियम** कहा जाता है।

2) **बदलाव-**परिवर्ती में बदलाव करना परीक्षणात्मक शोध का एक और विभेदी गुण है। इसका तात्पर्य शोधकर्ता द्वारा सचेतन किए जाने वाले प्रचालन से है। विवरणात्मक शोध के विपरीत शोधकर्ता केवल उन स्थितियों को उस रूप में देखता है जिसमें वे प्राकृतिक रूप से होती हैं। परीक्षणात्मक शोध में शोधकर्ता वास्तव में उन कारकों के घटित होने के लिए स्थिति का निर्माण

करता है, जिनके प्रदर्शन का अध्ययन उन स्थितियों में किया जाता है, जिसमें सभी दूसरे सभी कारकों को नियंत्रित अथवा दूर कर दिया जाता है। सामाजिकशोध और अन्य व्यवहारगत विज्ञानों में परिवर्ती में बदलाव एक विशिष्ट रूप में होता है जिसमें परीक्षणकर्ता विषय/व्यक्ति पर विभिन्न परिस्थितियों के पहले निर्धारित सेट को नियोजित करता है। विभिन्न स्थितियों का ये सेट स्वतंत्र परिवर्ती परीक्षणात्मक परिवर्ती अथवा उपचार परिवर्ती कहा जाता है। फिर आश्रित परिवर्ती के दो अथवा उससे अधिक मूल्यों को प्रदर्शित करने के लिए विभिन्न स्थितियों का निर्माण किया जाता हैं। ये मात्रा अथवा प्रकार में अलग हो सकते हैं अर्थात स्वतंत्र परिवर्ती के दो अथवा उससे ज़्यादा मूल्य हो सकते हैं और मूल्यों में मात्रात्मक अथवा गुणात्मक प्रकृति का अंतर हो सकता है। व्यक्तित्व के गुण, शिक्षण की विधियाँ, सोच, प्रेरणा के प्रकार,सामाजिक-आर्थिक स्तर आदि सामाजिक शोध में स्वतंत्र परिवर्ती के कुछ उदाहरण है।

3) **प्रेक्षण-** परीक्षण में हमारी रुचि आश्रित परिवर्ती पर स्वतंत्र परिवर्ती की बदलाव के प्रभाव में हो सकती है। प्रेक्षणों को शोध में प्रयुक्त विषय के व्यवहार के कुछ गुणों के रूप में समझा जाता है। ये प्रेक्षण मात्रात्मक प्रकृति के होते हैं और आश्रित परिवर्ती बनाते है। इसके लिए कुछ स्पष्टीकरण की जरूरत पड़ती है।

4.6 परीक्षणात्मक शोध में सम्मिलित चरण

परीक्षणात्मक शोध में विभिन्न चरण होते हैं। यहाँ 'वास्तविक परीक्षण' की अवस्था तक पहुँचने के लिए **चार** चरणों के बारे में बताया जाएगा –

1) समस्या से संबंधितसर्वेक्षण करना व साहित्य का संकलन करना।
2) समस्या को पहचानना और उसे परिभाषित करना।
3) परीक्षणात्मक शोध का मुख्य चरण उपकल्पनाओं का निरूपण है। ये सुझाते हैं कि कोई पूर्ववर्ती स्थिति अथवा घटना (स्वतंत्र परिवर्ती) दूसरी स्थिति/ घटना अथवा प्रभाव (आश्रित परिवर्ती) के घटित होने से जुड़ी होती हैं। उपकल्पना का परीक्षण करने के लिए, परीक्षणकर्ता द्वारा उस स्वतंत्र परिवर्ती के अलावा दूसरीसभी स्थितियों को नियंत्रित करने का प्रयत्न किया जाता है, जिसमें वे बदलाव चाहते है और फिर आश्रित परिवर्ती पर उसके प्रभाव को देखते है ऐसा संभवत: स्वतंत्र परिवर्ती के लिए उद्भासन के कारण होता है।
4) परीक्षणात्मक शोध का अगला चरण परीक्षण की योजना नियोजित करना है। इसका तात्पर्य उस अवधारणात्मक रूपरेखा से है जिसमें परीक्षण संपन्न किया जाता है। इसमें निम्नलिखित बिंदु शामिल हैं–

- शोध रूपरेखा को चुनना।

- दी गई जनसंख्या को प्रदर्शित करने के लिए विषयों (परीक्षण के व्यक्ति) के प्रतिदर्श को चुनना, विषयों को समूहों में विभाजित करना और समूहों के लिए परीक्षण उपचारों का निर्धारण करना (विषय का तात्पर्य उस व्यक्ति अथवा सजीव प्राणी से है जिसका अध्ययन करना है)।
- परीक्षण के परिणामों के मापन के लिए उपकरणों का चुनाव अथवा सृजन करना और उनकी वैधता को निश्चित करना।
- आँकड़े संकलित करने के लिए प्रक्रियाओं को बताना और संभवत उपकरणों, रूपरेखा को ठीक करने के लिए पायलट अथवा 'ट्रायल इन' परीक्षण करना।
- सांख्यिकीय अथवा शून्य उपकल्पना को बताना।

4.7 परीक्षणात्मक शोध की रूपरेखाएँ

शोध की रूपरेखा शोधकर्ता के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण होती है। एक सुविकसित रूपरेखा अन्वेषणों को नियंत्रित करने के लिए रूपरेखा और नीति प्रस्तुत करती है और समस्या अथवा उपकल्पना द्वारा किए प्रश्नों के विश्वसनीय उत्तर प्रस्तुत करती है। रूपरेखा की उपयुक्तता का निर्धारण समस्या की प्रकृति के द्वारा ही किया जाता है।

परीक्षणात्मक रूपरेखाओं के विश्लेषण से पूर्व इसमें उपयोग किए जाने वाले प्रतीकों और शब्दों को जान लेना अत्यंत आवश्यक है –

- X स्वतंत्र परिवर्ती को प्रदर्शित करता है, जिसमें शोधकर्ता द्वारा बदलाव किया जाता है इसे परीक्षणात्मक परिवर्ती अथवा उपचार परिवर्ती भी कहा जाता हैं।
- Y आश्रित परिवर्ती के मापन को प्रदर्शित करता है। Y_1 आश्रित परिवर्ती को स्वतंत्र परिवर्ती X के बदलाव से पूर्व प्रदर्शित करता है। सामान्य तौर पर,यह परीक्षणात्मक उपचार से पूर्व दिया जानेवाला एक प्रकार का पूर्व परीक्षण है। Y_2 स्वतंत्र परिवर्ती X की बदलाव के उपरांत आश्रित परिवर्ती को प्रदर्शित करता है। यह सामान्यत: परीक्षण बाद का उपचार है जिसे विषयों (परीक्षण किए जाने वाले व्यक्ति) को परीक्षणात्मक उपचार के उपरांत दिया जाता है।
- R परीक्षण समूहों के लिए विषयों के ऐच्छिक निर्धारण और समूहों के लिए उपचारों के ऐच्छिक निर्धारण को प्रदर्शित करता हैं।
- E समूह परीक्षण समूह को प्रदर्शित करता है अर्थात वह समूह जिसे स्वतंत्र परिवर्ती उपचार दिया जाता है।

- C समूह नियंत्रण समूहको प्रदर्शित करता है अर्थात वह समूह जिसे परीक्षण उपचार नहीं दिया जाता है।
- S परीक्षण में इस्तेमाल किए जाने वाले विषय अथवा प्रतिभागी को प्रदर्शित करता है।

अनेक लेखकों ने परीक्षणात्मक रूपरेखा को कुछ श्रेणियों में विभाजित किया है –

- परीक्षण-पूर्व रूपरेखा
- वास्तविक परीक्षण रूपरेखा
- अर्द्ध-परीक्षण रूपरेखा

डोनाल्ड एरी एवं अन्य (1985) ने इसमें कुछ अन्य श्रेणियाँ सम्मिलित की हैं–

- तथ्यगत/कारक रूपरेखा
- समय श्रृंखला रूपरेखा

उक्त श्रेणियों की विभिन्न रूपरेखाओं में से प्रमुख रूपरेखाओंको निम्नानुसार प्रस्तुत किया जा रहा है–

परीक्षण-पूर्व रूपरेखा

परीक्षण-पूर्व रूपरेखाओं के रूप मेंविभाजित दो रूपरेखाएँ बाह्य परिवर्तियों के लिए न्यूनतम नियंत्रण प्रस्तुत करती हैं। ये रूपरेखाएँ ज्यादा दृढ़ता से नियंत्रित रूपरेखाओं के लाभों को समझाने मेंमदद करती है, जिनका उल्लेख बाद में किया गया है –

पहली रूपरेखा- एक समूह परीक्षण-पूर्व परीक्षण-पश्चात रूपरेखा

जब इस रूपरेखा का इस्तेमाल किया जाता है तो आश्रित परिवर्ती का मापन स्वतंत्र परिवर्ती अथवा उपचार के इस्तेमाल से पूर्व अथवा उसके अंत के उपरांत किया जाता है और उसके पश्चात पुन: किया जाता है। सामान्यतया एक समूह रूपरेखा में तीन चरण होते है। पहला,आश्रित परिवर्ती के मापन के लिए परीक्षण-पूर्व उपचार, दूसरा, विषय को परीक्षण उपचार X देना और तीसरा,परीक्षण-पश्चात उपचार देना और पुन:निर्भर परिवर्ती का मापन करना।

परीक्षण उपचार के इस्तेमाल के अंतरों का निर्धारण फिर परीक्षण-पूर्व और परीक्षण-पश्चात अंकों की तुलना से किया जाता है।

परीक्षण-पूर्व	स्वतंत्र परिवर्ती	परीक्षण-पश्चात
Y_1	X	Y_2

पहली रूपरेखा- एक समूह परीक्षण-पूर्व परीक्षण-पश्चात रूपरेखा

इस रूपरेखा के इस्तेमाल को प्रदर्शित करने के लिए मान लेते हैं कि विद्यार्थियों के लिए सामाजिक कार्य में किसी विशेष स्व-निर्देशी सामग्री की प्रभाविता का मूल्यांकन किया जा रहा हैं। इस कार्य को करने के लिए यह तरीका अपनाया जाएगा।

शैक्षिक सत्र के प्रारंभ में, विद्यार्थियों को एक मानकीकृत परीक्षण दिया जाता है जो पाठ्यक्रम के उद्देश्यों का अच्छे तरीके से मापन करता है जिसके उपरांत दूरस्थ शिक्षण स्व-निर्देशी सामग्री देता है। वर्ष के अंत में, विद्यार्थियों को दोबारा मानकीकृत परीक्षण दिया जाता है। दोनों परीक्षणों के अंकों की तुलनासे पता चलता है कि स्व-निर्देशी सामग्री से किस प्रकार का अंतर आया है।

संक्षेप में पहली रूपरेखा की संस्तुति कम ही की जाती है। बिना नियंत्रण समूह के तुलनाकरना संभव नहीं होता है। एक समूह रूपरेखा में प्राप्त परिणाम मूल रूप से समीक्षा करने योग्य नहीं होते हैं। परीक्षण के परिणाम विश्वसनीय हो सकते हैं यदि एक तुलना समूहअर्थात नियंत्रण समूह हो जिसे स्वनिर्देश साम्रगी नहीं दी गई हो।

दूसरी रूपरेखा- स्थैतिक समूह तुलना

दूसरी रूपरेखा दो अथवा अंतिम समूहों काइस्तेमाल करती है, जिनमें से सिर्फ एक को परीक्षण उपचार दिया जाता है। समूहों को सभी संबंधितपहलुओं मेंबराबर माना जाता है। वे सिर्फ X के लिए उद्भासन में अलग होते हैं। इस रूपरेखा का इस्तेमाल कई बार सामाजिक शोध में किया जाता है। उदाहरण के लिए, नई विधि से पढ़ाए गए प्रौढ़ शिक्षार्थियों की उपलब्धियों की तुलना पारंपरिक विधि द्वारा पढ़ाए गए समान कक्षा के विद्यार्थियों से की जाती है।

दूसरीरूपरेखा में नियंत्रण समूह होते हैं, जो तुलना को संभव बनाते हैं जिसकी वैज्ञानिकविश्वास के लिए जरूरत होती है। यदि परीक्षण समूह Y_2 मापन के लिए उपयुक्त हो तो शोधकर्ता को अपने परिणाम पर अधिक विश्वास होता है कि अंतरपरीक्षण उपचार के कारण है।

दूसरी रूपरेखा- स्थैतिक समूह तुलना

वास्तविक परीक्षण रूपरेखा

'वास्तविक परीक्षण' रूपरेखा की तीन रूपरेखाएँ हैं क्योंकि वे नियंत्रण करती हैं

- ❖ पहली, विषयों का समूहों में ऐच्छिक निर्धारण,
- ❖ दूसरी, समूहों के लिए उपचार का ऐच्छिक निर्धारण और
- ❖ तीसरी, परीक्षण-पश्चात सभी समूह।

तीसरी रूपरेखा- ऐच्छिककृत विषय-केवल परीक्षण-पश्चात नियंत्रण समूह रूपरेखा

इस विशेष की रूपरेखा के लिए दो समूहों की ज़रूरत होती है, जिनमें विषय का ऐच्छिक रूप से निर्धारण किया जाता है और प्रत्येक समूह को अलग स्थिति में रखा जाता है। किसी पूर्व परीक्षण काइस्तेमाल नहीं किया जाता है। सभी संभावित बाह्य परिवर्तियों को नियंत्रित करने का काम ऐच्छिकीकरण करता है। इसका यह अभिप्राय नहीं है कि ऐच्छिकीकरण प्रक्रियाएँ (जैसे- सिक्का उछालना) बाह्य परिवर्तियों जैसे IQ अथवा आयु को निकाल देती है जो आश्रित परिवर्ती को प्रभावित कर सकते हैं अथवा उनकी उपस्थिति को नियंत्रित कर सकते हैं। ये बाह्य परिवर्ती अब भी जाँच को प्रभावित करते हैं लेकिन अब,E के व्यक्तिगत गुणों की अपेक्षा संयोग के नियमकार्य करते हैं। वास्तव में, जितनी अधिक संख्या में विषय का इस्तेमाल किया जाता है समूहोंके उतने ही समान होने की संभावनाबनी रहती है।

विषयों को समूहों में विभाजित करने के उपरांत सिर्फ परीक्षण समूह को परीक्षणात्मक उपचार दिया जाता है। अन्यथा दूसरे सभी संदर्भों में दोनों समूहसमतुल्य रहते हैं। दोनों समूहों के सदस्यों का फिर आश्रित परिवर्ती Y_2 के लिए मापन किया जाता है। X के प्रभाव को निर्धारित करने के लिए फिर अंकों की तुलना की जाती है।

तीसरी रूपरेखा- ऐच्छिककृत विषय-केवल परीक्षण-पश्चात नियंत्रण समूह रूपरेखा

तीसरी रूपरेखा का मुख्य लाभ ऐच्छिकीकरण है, जो स्वतंत्र परिवर्ती के समावेशन से पहले समूहों की सांख्यिकीय समानता को सुनिश्चित करता है।तीसरी रूपरेखा परिपक्वता, इतिहास और पूर्व-परीक्षण के प्रमुख प्रभावों के लिए नियंत्रण करती है क्योंकि किसी पूर्व परीक्षण का इस्तेमाल नहीं किया जाता है इसलिए परीक्षण-पूर्व और X (उपचार) के मध्य कोई परस्पर संबंधनहीं हो सकता है।

चौथी रूपरेखा- ऐच्छिककृत मिलान हुए विषय- सिर्फ परीक्षण-पश्चात नियंत्रण समूह रूपरेखा

सामान्यतः यह तीसरी रूपरेखा के समान होती है लेकिन इसमें समतुल्य समूह पाने के लिए ऐच्छिक निर्धारण की जगह पर मिलान तकनीक का इस्तेमाल किया जाता है। विषय का मिलान एक अथवा उससे ज़्यादा परिवर्ती के लिए किया जाता है जिनका मापन सुविधाजनक रूपसे किया जा सकता है, जैसे IQ अथवा पढ़ने के अंक। सामान्यत: इस्तेमाल किए जाने वाले मिलान परिवर्ती वे होते हैं जिनका आश्रित परिवर्तियों के साथ आवश्यक सहसंबंधहोता है। इन परिवर्तियों के आधार पर विषय के जोड़े बनाए जाते हैं जिससे विपरीत सदस्य/ अंक जितना हो सके निकट आ जाए और फिर प्रत्येक जोड़े के एक सदस्य को ऐच्छिक रूप से एक उपचार और दूसरेको दूसराउपचार प्रस्तुत किया जाता है।

चौथी रूपरेखा- ऐच्छिककृत मिलान हुए विषय- सिर्फ परीक्षण-पश्चात नियंत्रण समूह रूपरेखा

मिलान/मैचिंग करना उन अध्ययनों के लिए सबसे आवश्यक होता है जहाँ छोटे प्रतिदर्श का इस्तेमाल किया जाता है और जहाँ तीसरी रूपरेखा उपयुक्त नहीं होती है। साथ ही, मिलान किए गए विषय की रूपरेखा समूहों के मध्य प्रारंभिक अंतर द्वारा परीक्षण में विचार किए जाने के लिए अंतरों की मात्रा को कम कर देते हैं। यद्यपि, मिलान को वास्तव में नियंत्रण का साधन बनने के लिए, सभी संभावित विषयों का मिलान पूरा होना चाहिए और प्रत्येक जोड़े के सदस्यों का समूहों के लिए निर्धारण ऐच्छिक रूप से होना चाहिए। यदि एक अथवा उससे अधिक विषयों को निकाल दिया जाता है तो उपयुक्त मैच/मिलान नहीं हो पाता, तो इससे प्रतिदर्श भेदभावपूर्ण हो जाएगा। चौथी रूपरेखा का इस्तेमाल करते समय प्रत्येक विषय का ऐच्छिक निर्धारण के प्रभावित होने से पहले मिलान करना जरूरी है, ये औसत रूप से भले ही हो।

अर्द्ध-परीक्षण रूपरेखा

एक अर्द्ध-परीक्षण रूपरेखा अ-ऐच्छिकीकृत नियंत्रण समूह परीक्षण-पूर्व परीक्षण-पश्चात रूपरेखा है। अर्द्ध-परीक्षण रूपरेखा में एकमात्र अंतर यह है कि समूह ऐच्छिकीकृत नहीं होते हैं।इसलिए इनकी तुलना करने की संभावना नहीं होती है। सच में, इसी आधार पर रूपरेखा वास्तविक परीक्षणात्मक न होकर अर्द्ध-परीक्षणात्मक हो जाती है। चूँकि रूपरेखा से संबंधित शेष विशेषताएँ वास्तविक परीक्षण श्रेणी की ऐच्छिकीकृत नियंत्रण समूह परीक्षण-पूर्व परीक्षण-पश्चात रूपरेखा के समतुल्य रहती हैं।

तथ्यगत/कारक रूपरेखाएँ

तथ्यगत/कारक रूपरेखा में दो अथवा उससे अधिक परिवर्तियों में एकसाथ बदलाव लाया जाता है, जिससे प्रत्येक परिवर्ती के आश्रित परिवर्ती पर स्वंतत्र प्रभाव और अनेक परिवर्तियों के मध्य परस्पर क्रिया के कारण प्रभावों का अध्ययन किया जा सके। तथ्यगत/कारक रूपरेखाएँ दो प्रकार की होती हैं। पहली प्रकार में,यदि एक स्वतंत्र परिवर्ती में परीक्षणात्मक रूप से बदलाव लाया जा सकता है। शोधकर्ता प्राथमिक रूप से एकल स्वतंत्र परिवर्ती के प्रभाव में रुचि रखता है लेकिन उसे दूसरे परिवर्तियों पर भी विचार करना चाहिए जो आश्रित परिवर्तियों को प्रभावित कर सकते हैं। दूसरे प्रकार की रूपरेखा में सभी स्वतंत्र परिवर्तियों में परीक्षणात्मक रूप से बदलाव लाए जा सकते हैं। तथ्यगत/कारक रूपरेखा को जटिलता के विभिन्न चरणों पर विकसित किया गया है, सबसे सरल कारक रूपरेखा 2 गुणा 2 (2*2) रूपरेखा है। दो मूल्य में दोनों स्वतंत्र परिवर्ती होते हैं।

स्तर 1 के विषयों को उपचार A और अन्य को उपचार B प्रदान किया जाता है। कुछ स्तर 2 के विषय उपचार A और अन्य उपचार B प्राप्त करते हैं। कारक रूपरेखा की विशेषता यह है कि इसमें एक परीक्षण

में ही वह प्राप्त किया जा सकता है जिसके लिए अन्यथा दो अथवा उससे अधिक पृथक अध्ययनों की जरूरत होती है।

समय श्रृंखला रूपरेखा

ये परीक्षणात्मक उपचार के पूर्व और पश्चात में आश्रित परिवर्ती पर एक बार में आँकड़े पैदा करते हैं। कुछ ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनमें किसी विशेष घटना/प्रक्रिया अथवा उत्पाद की प्रवृत्ति में परिवर्तनों की तुलना करना जरूरी हो जाता है। उदाहरणस्वरूप मान लेते हैं कि विद्यार्थी का समय के साथ सोच, उपलब्धि आदि के लिए व्यवहार बदल जाता है। यदि किसी संस्थान में सोच अथवा उपलब्धि में बदलाव के अध्ययन के लिए कोई विशिष्ट उपचार प्रदान किया जाता है, तो उपचार किए जाने से पूर्व कुछ निश्चित अंतरालों पर मापन द्वारा प्रवृत्ति का अध्ययन आवश्यक होता है। एक बार के पूर्व उपचार की जगह पर, उपचार दिए जाने से पूर्व परीक्षण को तीन अथवा चार बार दोहराया जाता है। इससे व्यवहार की प्रवृत्ति पर आँकड़ों का निर्माण होता हैं। इसी प्रकार उपचार दिए जाने के उपरांत एक बार के पश्चात परीक्षण की बजाय परीक्षण-पश्चात् को अनेक बार अंतरालों पर किया जाता है। इससे व्यवहार में बदलाव की प्रवृत्ति का पता लगाने के आँकड़ों की प्राप्ति होती हैं। चूँकि समय श्रृंखला रूपरेखा में परीक्षणपूर्व और परीक्षण-पश्चात् परीक्षणों दोनों का इस्तेमाल किया जाता है, इसलिए आश्रित परिवर्ती पर उपचार के प्रभाव का परीक्षण प्रवृत्तियों की तुलनासे किया जाता है। इसे निम्नरूप से प्रस्तुत किया जा सकता है –

$Y_1Y_2Y_3Y_4Y_5\ \ Y_6Y_7Y_8$

यदि नियंत्रण समूहों को जोड़ दें और इसी समयश्रृंखला मापन को नियंत्रण समूहोंके उपचार के बिना दोहराएँ तो ये नियंत्रण समूह समय श्रृंखला रूपरेखाके रूप में बन जाते हैं जिसे निम्नलिखित प्रकार से प्रदर्शित किया जाता है –

समूह

E $\quad Y_1Y_2Y_3Y_4Y_5\ \ Y_6Y_7Y_8$

C $\quad Y_1Y_2Y_3Y_4Y_5\ \ Y_6Y_7Y_8$

4.9 सारांश

प्रस्तुत इकाई में परीक्षणात्मक विधि के विषय में विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। परीक्षणात्मक अनुसंधान यह बताता है कि जब कुछ परिवर्तियों को सावधानी से नियंत्रित किया जाता है अथवा उनमें बदलाव किया जाता है तो क्या होता है ? इसकी व्याख्या इस इकाई में की गई है।

4.10 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : परीक्षणात्मक शोध को परिभाषित करते हुए इसकी विशेषताओं को उल्लेखित कीजिए।

प्रश्न 2 : परीक्षणात्मक शोध के विभिन्न चरणों पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3 : परीक्षणात्मक शोध के विभिन्न रूपरेखाओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4 : टिप्पणी लिखें –

कारक परिणाम के तर्क 2 वास्तविक परीक्षण रूपरेखा

अर्ध परीक्षण रूपरेखा समय श्रृंखला रूपरेखा

4.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च : सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

एकॉफ,आर.एल. (1953). द *डिजाइन ऑफ सोशल वर्क.* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन : द फ्री प्रैस। कारलिंगर, फ्रेड आर. (1964). *फाउन्डेशन ऑफ बिहेवियोरल रिसर्च.* दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशन्स। यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च.* (चौथा संस्करण), न्यूयॉर्क : एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल।

इकाई 5
अनुसंधान विधियाँ II: गुणात्मक शोध

इकाई की रूपरेखा

5.0 उद्देश्य

5.1 प्रस्तावना

5.2 गुणात्मक शोध के आयाम

5.3 गुणात्मक शोध की प्रक्रियात्मक विशिष्टता

5.4 गुणात्मक शोध विधि के मुख्य चरण

5.5 गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता और वस्तुनिष्टता से संबंधित मुद्दे

5.6 केस अध्ययन विधि

5.7 सहभागी अनुसंधान

5.8 सारांश

5.9 बोध प्रश्न

5.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

5.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप –

- गुणात्मक शोध के अर्थ से अवगत होंगे।
- इस प्रकार के शोध में आवश्यक चरणों के बारे में जानकरी सकेंगे।
- गुणात्मक अध्ययनों में विश्वसनीयता और वस्तुनिष्ठता के मुद्दों के बारे में समझ विकसित कर सकेंगे।
- शोध की 'केस अध्ययन' विधि की विशेषताओं और उसके चरणों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- सहभागी शोध की विधियों को रेखांकित कर सकेंगे।

5.1 प्रस्तावना

इस इकाई में गुणात्मक विधि, केस अध्ययन विधि और सहभागी अनुसंधान विधियों के बारे में विश्लेषण प्रस्तुत किया जाएगा। इसका सामाजिक विज्ञानों में शोध करने में विशेष स्थान है और इसने सामाजिक शोधकर्ताओं का ध्यान हाल ही में अपनी ओर आकृष्ट किया है। यदि शोधकर्ता की रुचि ग्रामीण समुदाय के विकास से संबंधित समस्याओं के अध्ययन से है तो वह इन विधियों का इस्तेमाल समस्याओं के

उनकी प्राकृतिक व्यवस्था में अध्ययन के लिए कर सकता/सकती है जिससे उन वास्तविक समस्याओं का पता चल सके जिनका सामना उन्हें करना पड़ता है।

5.2 गुणात्मक शोध के आयाम

गुणात्मक अनुसंधान में शोधकर्तासमस्या पर पूर्णता से विचार करता है और उसका वर्णन उसी रूप में करता है जैसी वह होती है। कुछ स्थितियों में घटना को ऐसे अनेक घटकों अथवा परिवर्तियों में विश्लेषित करना दुष्करहोता है, जिनका मापन मात्रात्मक रूप से किया जा सकता है। ऐसे मसलों में शोधकर्ता घटना पर गहन विचार करता है और यह मानता है कि घटना में उसकी संपूर्णता में कुछविशिष्टता है। जब शोधकर्ता घटना के गुणों का सत्यापन करते समय उसकी महत्वपूर्ण पूर्णता को बनाए रखने का प्रयत्न करता है, तो वह गुणात्मक शोध विधियों का अनुसरण करता है। **शोध की यह विधि व्यक्तियों के अनुभवों को गहराई से बताती है और शोधकर्ता द्वारा व्यक्तियों को उनकी निजी अनुभूतियों में गहन और सूक्ष्म अध्ययन करने को संभव बनाती है।** गुणात्मक शोध मानव व्यवहार की प्रकृति व अनुभव और सामाजिक स्थितियों का परीक्षण करने में मदद करता है।

गुणात्मक शोध एक पूर्णतः पृथक अवधारणात्मक रूपरेखा को अपनाता है, जिसके निम्नलिखित आयाम हैं –

1) **अर्थ और व्याख्याएँ (Meaning and Interpretation)-** गुणात्मक शोध इस बात पर जोर देता है कि किसी अवधारणा के कई अर्थ हो सकते हैं तथा उसकी कई व्याख्याएँ हो सकती हैं। मानव व्यवहार अथवा किसी सामाजिक घटना को समझने में यह समझना भी शामिल है कि मनुष्य यह किस प्रकार देखते हैं कि वे क्या कर रहे हैं अथवा किस क्रियाकलाप में हिस्सेदारी कर रहे हैं ?
2) **बहु वास्तविकताएँ (Multiple Realities)-** गुणात्मक अनुसंधान इस बात पर भी जोर देता है कि सामाजिक स्थितियों में विभिन्न वास्तविकताएँ उपलब्ध होती हैं जिन्हें देखा और उन पर शोध कार्य किया जा सकता है। इनकी अनुभूति व्यक्तियों द्वारा अलग रूपों में होती है ।अन्य शब्दों में, वास्तविकताएँ वे होती हैं जिनकी व्यक्तियों द्वारा किसी समय विशेष पर अनुभूति की जाती है। चूँकि सामाजिक स्थितियाँ समय के साथ परिवर्तित होती रहती हैं, वास्तविकताएँ भी परिवर्तित होती रहती हैं। यही नहीं, चूँकि वास्तविकताएँ संदर्भ-विशिष्ट होती हैं इसलिए इन्हें सामान्यीकृत रूप में साकार नहीं किया जा सकता है।
3) **सामान्यीकरण (Generalization)-** गुणात्मक अनुसंधान में सामान्यीकरण एक महत्त्वपूर्ण आयाम है। सामान्यत: सामान्यीकरण की प्रक्रिया में व्यक्तिगत इकाइयों में पाई जाने वाली काफी अर्थपूर्ण जानकारी अनिर्धारित रह जाती है, इसलिए सामान्यीकृत जानकारी वास्तविक अथवा पूर्ण जानकारी को इंगित नहीं कर पाती है। अत: जरूरी है कि जानकारी निर्मित करने की प्रक्रिया को

विशिष्ट स्थितियों में पाए जाने वाले अन्तरों अथवा वास्तविक प्रमाणों पर अवश्य विचार करना चाहिए।

4) **ज्ञान- निर्माण (Knowledge Generation) -** गुणात्मक जाँच शोधकर्ता और उत्तरदाताओं के मध्य परस्पर वार्तालाप से प्राप्त होने वाली जानकारी पर ज़ोर देता है। उत्तरदाता शोधकर्ता द्वारा किए प्रश्नों के उत्तर को अपनी अनुभूति अथवा उन अर्थों के संदर्भ में देते हैं जिन्हेंवे अपने कार्यों से संबद्ध करते हैं। यही नहीं, शोधकर्ता और उसके उत्तरदाताओं केमध्य परस्पर वार्तालाप से प्रतिक्रियात्मकता और जाँच की जाने वाली समस्या से संबंधितअंतर्दृष्टि प्राप्तकी जाती है।
5) **मूल्य प्रणालियाँ (Value Systems)-** गुणात्मक अनुसंधानमूल्य मुक्त जाँच में विश्वास नहीं करते हैं। वे यह मानते हैं कि समस्याओं की पहचान, प्रतिदर्श के चयन, आँकड़े संकलित करने के लिए साधनों के इस्तेमाल, उन स्थितियों जिनमें आँकड़ों को संकलित किया गया है और शोधकर्ता और साक्षात्कारदाता के मध्य होने वाले संभावित वार्तालाप में मूल्य प्रणालियों का प्रभाव होता है। अतः गुणात्मक अनुसंधानइस बात पर बल देता है कि शोधकर्ता के झुकाव को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए और इसके बारे में शोध रिपोर्ट में विवरण दिया जाना चाहिए।
6) **मानव संबंध (Human Relations)-** मानव संबंधोंके मामले में विभिन्न आंतरिक कारक, घटनाएँ और प्रक्रियाएँ एक-दूसरे कोलगातार प्रभावित करती रहती हैं। अतः गुणात्मक अध्ययनों के इस मसले में व्यक्ति से व्यक्ति कारक और प्रभाव संबंधोंकी पहचान करना संभव नहीं होता है। प्राकृतिक विज्ञानियों के लिए, सामाजिक विज्ञानों में कारकता को उस 'कठोर'अभिप्राय में इंगित नहीं किया जा सकता है, जिस प्रकार से भौतिक विज्ञानों में किया जाता है। बल्कि सामाजिक और व्यवहारगत अध्ययनों से मात्र संभावित प्रभावों के पैटर्नकी जानकारी मिलती है।

5.3 गुणात्मक शोध की प्रक्रियात्मक विशिष्टता

प्रक्रिया की दृष्टि से गुणात्मक शोध में निम्नलिखित बातों का विवरण दिया जाना चाहिए –

i. **अंतर्दृष्टियुक्त जाँच-** समाज विज्ञानी अंतर्दृष्टिपूर्ण जाँच पर बल देते हैं, जहाँ मनुष्यों को आँकड़े संकलित करने के एकमात्र साधन की तरह इस्तेमाल किया जाता है। गुणात्मक विधियाँ जैसे भागीदारी के प्रेक्षण, अनौपचारिक साक्षात्कार और परिचर्चाएँ, उपयुक्त साहित्य को पढ़ना और दैनिक प्रेक्षण के नोट्स और डायरी लेखन का इस्तेमाल अक्सर क्षेत्र कार्य के लिए किया जाता है। यद्यपि, मात्रात्मक तकनीकों, जैसे परीक्षण प्रशासन और सर्वेक्षण के इस्तेमाल, को इस अभिगम में आँकड़े संकलित करने की प्रक्रिया में पूरी तरह से नजरंदाज नहीं किया जा सकता है।

ii. **पूर्णतावादी अभिगम-** अध्ययन के तहत स्थिति के सभी प्रभावी आयामों से संबंधितहर संभव जानकारी को संकलित करना चाहिए जिससे स्थिति को संपूर्णता में वर्णित किया जा सके।

ज्ञान शांति मैत्री

iii. **गुणात्मक व्यवस्था/सेटिंग-** समाज विज्ञानी के अनुसार वास्तविकता का खंडित और नियंत्रित स्थितियों में अध्ययन संभव नहीं है। वे यह जानना चाहते हैं कि वास्तविक स्थितियों में क्या होता है न कि ये जानना चाहते हैं कि नियंत्रित स्थितियों में क्या हो सकता है।

iv. **कोई पूर्व विशिष्ट सिद्धांत-** शोधकर्ता क्षेत्र में आँकड़े संकलित करने के लिए मस्तिष्क में किसी पूर्व विशिष्ट सिद्धांत के बिना जाता है। समाज विज्ञानी द्वारा यह माना जाता हैं कि कोई पूर्व विशिष्ट पूर्वानुमान जाँच को उन तत्वों तक सीमित कर देती है जो स्थिति के लिए समझ विकसित करने से पहले महत्वपूर्ण हो सकता है। ये पूर्णजाँच की प्रक्रिया को अवरोधित कर देता है। समाज विज्ञानी सिद्धांतों को क्षेत्र में वार्तालाप करने के पश्चात ही विकसित करता है।

v. **अध्ययन की कोई पूर्व विशिष्ट रूपरेखा नहीं-**क्षेत्र कार्य से पूर्व, समाज विज्ञानी उपकल्पनाओं और उन स्थितियों पर कोई स्पष्ट वक्तव्य नहीं देते हैं जिनमें आँकड़ों को संकलित, विश्लेषित और समीक्षित किया जाता है। शोधकर्ता पहले अध्ययन की केवल विस्तृत रूपरेखा ही बनाते हैं। जब जाँच आगे बढ़ती हैं तो उस क्षेत्र में उपयुक्त रूपरेखा विकसित होती है। उपकल्पनाएँ, वहाँ ज़्यादातर प्रश्न रूप में विकसित होती हैं, प्रतिदर्श प्रतिक्रिया करने वालों/स्थितियों के बारे में अंतिम निर्णय क्षेत्र-कार्य के समय ही लिए जाते हैं- व्यक्तिगत अंतर्दृष्टि व्यक्तिगत छवियाँ, सहजबोध और अवबोध के द्वारा संकलित अनुभवों को विश्लेषणों के लिए उपयुक्त प्रक्रियाओं में बदल लिया जाता है।

5.4 गुणात्मक शोध विधि के मुख्य चरण

एरिकसन (1986) के अनुसार, *'पूर्वधारणाओं और निर्देशीप्रश्नों को पहले से तैयार किया जा सकता है। लेकिन अनुसंधानकर्ता को आरंभ में ही यह नहीं मान लेना चाहिए कि विशेष रूप से कहाँ तक आरंभिक प्रश्न आगे के चरण का निर्धारण करेंगे।''*

गुणात्मक शोध विधि के प्रमुख चरणों को निम्नक्रम में व्यवस्थित किया जा सकता है –

i. **पूछताछ के व्यापक प्रश्नों की पहचान करना-** पहले शोधकर्ता से यह आशा की जाती है कि वे सामाजिक व्यवस्थाओं से संबद्ध उनमामलों अथवा प्रश्नों को बताए जिसका निराकरण अथवा उत्तर अध्ययन क्षेत्र के द्वारा दिया जा सकता है। शोधकर्ता का मुख्य ध्यान किसी सामाजिक घटना की सामान्य विशेषता की बजाय घटनाओं की विशिष्टसंरचना पर आकृष्ट होना चाहिए। प्रश्न न केवल घटनाओं अथवा तथ्यों के अध्ययन के लिए बल्कि किसी विशेष घटना अथवा प्रक्रिया में शामिल व्यक्तियों के दृष्टिकोण की पहचान करने के लिए भी पूछे जा सकते हैं।

ii. **प्रारंभिक स्तर के आँकड़ों को संकलित करना-** एक बार जब जाँच के विस्तृत प्रश्नों की पहचान कर ली जाती हैं तो अध्ययन के तहत समस्याओं से संबंधित सामाजिक और

संगठनात्मक व्यवस्थाओं में समस्तभिन्नताओं की पहचान केलिए प्रयत्न किया जा सकता हैं। सामाजिक व्यवस्था जैसे ग्रामीण/जनजातीय समुदाय में घटनाओं के विशिष्टरूप से घटित होने की जाँच करने से पूर्व स्थिति के विस्तृत संदर्भ में जाँच शुरू की जा सकती हैं।

iii. **आँकड़ों को संकलित करने के लिए प्रक्रियाएँ-** आँकड़े संकलित करने का कार्य विभिन्न प्रावस्थाओं में भागीदारों के प्रेक्षण द्वारा संपन्न किया जा सकता है। शोधकर्ता का परिचय अध्ययन की जाने वाली सामाजिक व्यवस्था के एक आंतरिक सदस्य/भागीदार के रूप में कराया जा सकता है। ये संभव है कि प्रणाली के वास्तविक भागीदार जैसे व्यक्ति, समुदाय के नेता और मुखिया अथवा सामाजिक संस्थान के अध्यक्ष अध्ययन के लिए अवलोकनकर्ता जैसे कार्य करें। सभी प्रासंगिक और उपलब्ध स्रोतों और साधनों से आँकड़े संकलित किए जा सकते हैं यथा- उपलब्ध साहित्य, डायरियों, रिकॉर्ड्स और दस्तावेजों, चित्रों, फोटोग्राफ आदि का अध्ययन एवं कार्यक्रम से संबंधित व्यक्तियों से परस्पर वार्तालाप और कार्यक्रमों/स्थितियों के संबंधमें प्रत्यक्ष शोधकर्ता के अवलोकन/ प्रेक्षण और अनुभव। एक क्षेत्र कार्यकर्ता के रूप में उन महत्वपूर्ण स्थितियों अथवा व्यवहारों के सोद्देश्यपूर्ण प्रतिदर्श का इस्तेमाल किया जा सकता हैं, जिनका अध्ययन किया जाना हैं और साथ ही उन व्यक्तियों का भी जिनसे बातचीत की जानी चाहिए।

iv. **आँकड़े संकलित करने की युक्तियाँ-** आँकड़े संकलित करने के लिए विभिन्न युक्तियों का इस्तेमाल किया जा सकता हैं, यथा- अवलोकित गई स्थिति पर नोट्स लेना, इलेक्ट्रॉनिक यंत्रों जैसे वीडियो कैमरा और टेपरिकॉर्डर का इस्तेमाल करना, फोटो लेना और समस्या पर उपयुक्त दस्तावेज और साहित्य संकलित करना। प्रतिक्रिया करने वालों के विभिन्न समूहों से नियोजित अनौपचारिक साक्षात्कार/वार्तालाप किया जा सकता है और उनके मत और अनुभूतियों को साक्षात्कार के समय अथवा साक्षात्कार के तत्काल पश्चात रिकॉर्ड किया जा सकता है। क्षेत्र कार्य के अनुभवों के बारे में दैनिक डायरी में लिखने की भीज़रूरत होती है।

v. अध्ययन के तहत मामले अथवा कार्यक्रम के संदर्भ में अपनी अनुभूतियों केअलग रिकार्ड बनाने पड़ते हैं। यथा–

- उस स्थिति में शोधकर्ता द्वारा क्या अवलोकित किया गया ?
- समस्या/घटना के बारे में प्रतिक्रिया करने वाले की अनुभूति।
- व्यक्तियों और मुद्दे या कार्यक्रम में उनकी भागीदारी के बारे में।

vi. **आँकड़ों का विश्लेषण-** आँकड़ों का विश्लेषण, गुणात्मक अध्ययनों में विवरणात्मक रूप से किया जाता है। अधिक विशिष्ट रूप से, आवृत्ति के आँकड़ें दो अथवा तीन-मुखी संगत सारणियों में व्यवहार के पैटर्न को बताते हुए वर्णित किए जाते हैं। यदा-कदा सांख्यिकीय

तकनीकों यथा- काई-वर्ग परीक्षण, मेन-व्हिटनी के दो सिरीय परीक्षणों अथवा श्रेणी-क्रम सहसंबंध तकनीकों का इस्तेमाल अध्ययन के तहत विशिष्ट स्थिति के संदर्भ में संबंधों के कुछ पैटर्नों की पहचान करने के लिए किया जाता है।

5.5 गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता और वस्तुनिष्ठता/वास्तविकता से संबंधित मुद्दे

परिणामों की विश्वसनीयता- समाज विज्ञानियों पर उनकी जाँच की प्रक्रिया में विश्वसनीयता के मुद्दे पर प्रहार होते रहे हैं। यह कहा जाता है कि गुणात्मक अभिगम जाँच में वस्तुनिष्ठता/वास्तविकता नहीं ला सकते हैं और शोधकर्ता के पूर्वाग्रह से संभव है कि अन्य के लिए विश्वसनीय जानकारी प्रस्तुत नहीं की जा सके। गुणात्मक शोध की विश्वसनीयता की जाँच के लिए कुछ निश्चित मानक निम्न प्रकार से रेखांकित किए जा सकते हैं –

- विश्वसनीयता का संबंध शोधकर्ता के आँकड़ों और व्याख्याओं के मध्य सहमति के स्तर और उत्तरदाताओं के मस्तिष्क में पाई जाने वाली बहु-वास्तविकताओं से है।
- निर्भरता अनिवार्य रूप से किसी विशेष मसले पर अलग स्थितियों में पाई गई जानकारी की स्थिरता और प्राप्त की गई व्याख्या है।
- स्थानांतरणीयता वह गुण है जो किसी विशेष संदर्भ में प्रासंगिक व्याख्या पर जानकारी के यथार्थ अभिप्राय को प्राप्त करना संभव बनाता है।
- सत्यापनता का अभिप्राय भिन्न शोधकर्ताओं द्वारा संकलित की गई वस्तुनिष्ठ अथवा क्रमिक जानकारी का अध्ययन करने और समान निष्कर्षों पर पहुँचने की संभावना से है।

अवलोकन की समस्याएँ- गुणात्मक जाँच की शक्ति आँकड़े संकलित करने के साधनों, तकनीकों और रूपरेखाओं की अपेक्षा क्षेत्र कार्यकर्ता की क्षमता पर ज़्यादा आश्रित करती है। क्षेत्र कार्यकर्ता के अनुभव और विशेषज्ञता के संबंध में कुछ मुद्दे यथा- अध्ययन किए जाने वाले समूह में उसके संबंध, सघन आँकड़ें संकलित करने की प्रक्रियाओं में शामिल नियम, कानून इत्यादि हैं। यहाँ इनमें से कुछ मुद्दों पर वर्णन किया गया है –

- सर्वप्रथम यह जरूरी है कि केवल समस्या की स्पष्ट समझ वाले शोधकर्ता को गुणात्मक अध्ययन करने का कार्य करना चाहिए। चूँकि किए गए अध्ययन की अर्थपूर्णता पूरी तरह से मानव कारक पर आश्रित करती है, इसलिए यह देखना अत्यंत आवश्यक है कि अध्ययन कौन कर रहा है और वह अध्ययन किस प्रकार करता है ?
- बाहरी कार्यकर्ता को भागीदारी करने वाले अवलोकनकर्ता की भाँति कार्य के दौरान कुछ समस्याएँ हो सकती हैं। ऐसी स्थितियों में यह माना जाता है कि अजनबी (अवलोकनकर्ता) को

जानबूझकर जानकारी इसलिए दी जाती है अथवा देखने के लिएआमंत्रित किया जाता है क्योंकि वह अजनबी होता है। अजनबी ऐसी घटनाओं को देख सकते हैं जिनकी उन्हें आशा नहीं की थी।

- आंतरिक अवलोकनकर्ता अर्थात अध्ययन किए जाने वाले संस्थान के व्यक्ति जो अब अवलोकनकर्ता की भाँति कार्य करते हैं, आँकड़े संकलित करने की प्रक्रिया में प्रमुख समस्याओं से रूबरू हो सकते हैं। प्रेक्षक के जैसे कार्य करने वाला समूह का सदस्य प्रेक्षक के रूप में अपनी भूमिका और समूह के सदस्य की भूमिका के मध्य भ्रमित हो सकता है। उसे अपने समूह अथवा संस्थान के बारे में समूह के साथ अपने व्यक्तिगत/भावनात्मक जुड़ाव के कारण पूर्वाग्रहीजानकारी की प्राप्ति हो सकती है।
- संक्षेप में, अन्वेषणकर्ता को गुणात्मक पड़ताल को अर्थपूर्ण बनाने के लिए अत्यधिक स्व-जागरुकता और समूह की प्रक्रियाओं की अच्छीतरह से पूरी समझ होनी चाहिए।

5.6 केस अध्ययन विधि

सामाजिक संस्थानों के केस अध्ययन में अनेक वैयक्तिक इकाइयों यथा-परिवार, सामाजिक संगठन, सांस्कृतिक संगठन, वर्ग अथवा विकासात्मक कार्यक्रम का अध्ययन शामिल हो सकता है। समुदायों के केस अध्ययनों में किसी जनजाति, गाँव, झुग्गी-झोपड़ी के क्षेत्र अथवा संस्कृति को शोध की इकाई माना जा सकता है।

एक पूर्ण केस अध्ययन के प्रक्रियात्मक पहलू कुछ विशिष्ट विशेषताओं को प्रदर्शित करते हैं-

1) **पूर्णता-** एक अच्छे केस अध्ययन के लिए इकाई के आंतरिक और बाह्य परिवेश से संबंधित विस्तृत आँकड़े संकलित करना शामिल है। आँकड़े संकलित करना, तब तक जारी रहता है जब तक आँकड़ों की पूर्णता सुनिश्चित नहीं हो जाती है और इकाई की पूरी जानकारी नहीं मिल जाती है।
2) **अन्वेषण में निरंतरता-** स्थितियों के बारे में सतत और लंबी जाँच जरूरी है जब तक निहित कारकों का पता नहीं चल जाता है तब तक उनकी परस्पर क्रिया/संबंधके संभावित पैटर्न की पहचान नहीं की जाती है।
3) **आँकड़ों की विश्वसनीयता-** केस अध्ययन की रिपोर्ट का आधार केस/ मामले के संदर्भ में विश्वसनीय,अर्थपूर्ण और वैध जानकारी होनी चाहिए। विभिन्न गुणात्मक और मात्रात्मक तकनीकें जैसे अवलोकन, साक्षात्कार, परीक्षण, प्रश्नावलियों, रिकॉर्ड सर्वेक्षण आदि का इस्तेमाल केस अध्ययनों में उपयुक्त रहता है। आँकड़े संकलित करने और आँकड़ों को परस्पर

जाँच के लिए विभिन्न तकनीकों के द्वारा बहुतकनीक अभिगम का इस्तेमाल करने में आँकड़ों की विश्वसनीयता बनी रह सकती है।

4) **गुप्त/गोपनीय रिकॉर्डिंग-**व्यक्तिगत और नैतिक मुद्दे वाले जरूरी आँकड़े, यथा- शिक्षकों और विद्यार्थियों का प्रबंधन से संबंध, अनुशासन, गोपनीय रिकॉर्ड संस्थान के दस्तावेज आदि का हस्तांतरण कौशल के साथ करना चाहिए और उनकी गोपनीयता को बनाए रखने के लिए मुमकिन सावधानी रखनी चाहिए।

5) **बौद्धिक संश्लेषण-**चूँकि केस अध्ययन में बहुविधि जाँच शामिल होती है और यह इकाई से संबंधित सभी महत्वपूर्ण स्थितियों के बारे में होती है इसलिए इकाई की विशिष्टता को प्रदर्शित करने और महत्वपूर्ण संबंधों का पता लगाने के लिए आँकड़ों का उपयुक्त संश्लेषण जरूरी है। एक कुशल शोधकर्ता सैद्धांतिक सौम्यता, अंतर्दृष्टि और लेखन कौशल से न्याय करते हुए अच्छा केस अध्ययन कर सकता है।

5.7 सहभागी शोध

सामान्यत: सहभागी शोध व्यक्तियों द्वारा उनकी वर्तमान स्थिति को प्रस्तुत करने के लिए मानचित्र और चित्र/आरेख बनाकर और उनकी स्थितियों को बदलने की योजनाओं और उन्हेंविश्लेषित करने के द्वारा किया जाता है। यह विधि उनकी समस्याओं कोप्रस्तुत करने और यह बताने का मार्ग प्रशस्त करती है कि उनकी स्थिति को सुगम करने के लिए क्या किया जा सकता है ?

अनेक शब्दावलियों के साथ विभिन्न भागीदारी के अभिगम समय के साथ अस्तित्व में आए हैं। सर्वप्रथम द्रुत ग्रामीण मूल्यांकन (Rapid Rural Appraisal-RRA) आया था। इस शब्द का इस्तेमाल फिर विश्रांत ग्रामीण मूल्यांकन (Relaxed Rural Appraisal- RRA) को इंगित करने के लिए किया जाने लगा। बाद में यह सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन (Participatory Rural Appraisal- PRA) में विकसित हो गया। इसे बाद में विकास उद्यमियों के एक वर्ग ने भागीदारी का अधिगम और कार्य (Participatory Learning and Action- PLA) कहना पसंद किया। यद्यपि, ये सभी शब्द सामान्यत: सहभागी अभिगमों के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं।

सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन शब्द का इस्तेमाल शुरू में सिर्फ ग्रामीण क्षेत्रों में उपलब्ध स्थितियों के मूल्यांकन के लिए किया जाता था। बाद में इसका इस्तेमाल शहरी क्षेत्रों और अन्य क्षेत्रों जैसे प्रौढ़ शिक्षा, नीति प्रभाव और सलाह तथा संगठन विकास के लिए भी किया जाने लगा है। इसके अलावा, इसका इस्तेमाल न सिर्फ मूल्यांकन के लिए बल्कि विभिन्न अन्य कार्यों के लिए भी किया जाता है। अतः शब्द सहभागी अभिगम और कार्य (PLA).ज्यादा विस्तृत और उपयुक्त प्रतीत होता है।

सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन की विधियाँ

आजकल बड़ी संख्या में सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन की विधियाँ इस्तेमाल की जाती हैं। इन विधियों को विस्तृत रूप से स्थान, समय और संबंधविधियों के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।

स्थान संबंधितसहभागी ग्रामीण मूल्यांकन विधियाँ

स्थान संबंधित सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन विधियाँ व्यक्तियों की वास्तविकता के स्थानीय/क्षेत्रीय विस्तारों के लिए महत्वपूर्ण है। इन विधियों में सामाजिक मानचित्रण शामिल है और इस पर फोकस किया जाता हैं कि लोग किस प्रकार भौतिक आयामों, जिसमें वे होते हैं, की अनुभूति करते हैं और उससेसंबंध स्थापित करते हैं। अन्य सामान्य स्थान/क्षेत्र से संबंधितविधियाँ संसाधन मानचित्र, गतिशीलता मानचित्र, भागीदारी की मॉडलिंग, सेवाएँ और अवसर मानचित्र और ट्रॅान्सेक्ट और गतिशीलता मानचित्र है। सामाजिक मानचित्र का इस्तेमाल आवास के पैटर्न को बताने के लिए किया जाता है जबकि संसाधन मानचित्र प्राकृतिक संसाधनों पर फोकस करते हें। भागीदारी की मॉडलिंग किसी क्षेत्र का त्रि-आयामी वर्णन होता है। गतिशीलता मानचित्र का इस्तेमाल स्थानीय जन के गतिशीलता पैटर्न के विश्लेषण के लिए किया जाता है, जबकि सेवाओं और अवसर के मानचित्र किसी स्थान पर अनेक सेवाओं और अवसरों की उपलब्धता के प्रस्तुतीकरण में मददगार होते हैं। ट्रांसेक्ट किसी क्षेत्र की अनुप्रस्थ अनुभाग को प्रस्तुत करता है और यह खासकर प्राकृतिक संसाधनों के प्रबंधन मेंमहत्वपूर्ण है।

समय से संबंधितसहभागी ग्रामीण मूल्यांकन विधियाँ

इसका इस्तेमाल व्यक्तियों की वास्तविकताओं के समयकालिक आयामों के बारे में जानकारी प्राप्त करने के लिए किया जाता है। इस विधि की विशिष्टता यह है कि ये व्यक्तियों द्वारा अपने समय की संकल्पनाओं के इस्तेमाल को संभव बनाती है। इस विधि में समय-रेखा, ऐतिहासिक ट्रांसेक्ट, प्रवृत्ति विश्लेषण, दैनिक क्रियाकलाप कार्यक्रम, मौसमी आरेख, वंशावली सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन और स्वप्न मानचित्र शामिल हैं। समय रेखा उन विभिन्न मुख्य घटनाओं को उस रूप मेंइंगित करती है जिसमें स्थानीय लोगों द्वारा उनकी अनुभूति की जाती है। प्रकृति/चलन विश्लेषण उन परिवर्तनों पर प्रकाश डालता है जो किसी निश्चित समय कालों के मध्य घटित होते हैं। ऐतिहासिक ट्रांसेक्ट 'भूत वर्तमान और भविष्य' और 'तब तथा अब' विधियाँ चलन/प्रवृत्ति विश्लेषण के विभिन्न परिवर्ती/ प्रकार मौसमी आरेख वार्षिक चक्र और सत्रों अथवा महीनों में लोगों के जीवन में बदलावों को परिलक्षित करते हैं। दैनिक क्रियाकलाप के कार्यक्रम प्रदर्शित करते हैं कि व्यक्ति किस प्रकार सुबह उठने से लेकर रात को सोने जाने तक अपना समय व्यतीत करते हैं। भागीदारी की वंशावली विभिन्न पीढ़ियों और वंशजों का पता लगाने और समय के साथ पीढ़ियों में होने वाले बदलावों को बताने में मदद करती है। स्वप्न मानचित्र व्यक्ति के भविष्य की योजना और इच्छाओं को प्रस्तुत करने के लिए नियोजित किए जाते हैं।

संबंधविधियाँ

संबंध विधियों में प्रवाह चित्र जैसे कारक प्रभाव चित्र/आरेख, प्रभाव चित्र, नेटवर्क/संजाल आरेख, प्रणाली आरेख और प्रक्रिया मानचित्र शामिल हैं। इसमें कल्याण जीविका विश्लेषण, श्रेणीकरण विधि, युग्मानुसार श्रेणीकरण, वेन आरेख, बल क्षेत्र विश्लेषण, मैट्रिक्स अंकलन/श्रेणीकरण, पाई आरेख, स्पाइडर/मकड़जाल आरेख और काया मानचित्रण भी शामिल हैं। इस विधि का प्रमुख उद्देश्य एक ही वस्तु की अनेक प्रकारों और अनेक आयामों के मध्य संबंधका अध्ययन करना है।

5.8 सारांश

इस इकाई में शोध के गुणात्मक और केस अध्ययन विधियों के बारे में विवरण प्रस्तुत किया गया है। इन विधियों के अर्थ और महत्व शिक्षण के क्षेत्र में उनके उपयोगों,गुणात्मक शोध विधि में अध्ययन करने के चरणों और उनके विषय में उठने वाली समस्याओं पर फोकस किया गया है।

5.9 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : गुणात्मक शोध किन कारकों की चर्चा करता है? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2 : गुणात्मक शोध विधि के मुख्य चरणों का उल्लेख कीजिए।

प्रश्न 3 : गुणात्मक शोध में विश्वसनीयता और वस्तुनिष्ठता से संबंधित मुद्दे पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4 : सहभागी ग्रामीण मूल्यांकन की विभिन्न विधियों को रेखांकित कीजिए।

5.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च : सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

एकॉफ,आर.एल. (1953). द *डिजाइन ऑफ सोशल वर्क.* यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो प्रेस, शिकागो।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन : द फ्री प्रैस।

कारलिंगर, फ्रेड आर. (1964). *फाउन्डेशन ऑफ बिहेवियोरल रिसर्च*. दिल्ली : सुरजीत पब्लिकेशन्स।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च*. (चौथा संस्करण), न्यूयॉर्क : एन्जेलवुड क्लिफ, प्रेन्टिस हॉल।

खंड 3

आँकड़ा संग्रहण की विधियाँ

इकाई 1 प्रतिचयन

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.3 नमूना (प्रतिचयन): अर्थ व परिभाषा

1.4 प्रतिचयन की विशेषताएँ

1.5 प्रतिचयन में विश्वसनीयता

1.6 प्रतिचयन की विधि

1.7 प्रतिचयन की पद्धति का चुनाव

1.8 नमूने के आकार का निर्धारण

1.9 सारांश

1.10 बोध प्रश्न

1.11 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप –

- प्रतिचयन के अर्थ, परिभाषा एवं विशेषताओं को अभिव्यक्त कर सकेंगे।
- प्रतिचयन की विश्वसनीयता एवं विधि का वर्णन कर सकेंगे।
- प्रतिचयन के चुनाव व नमूने के आकार का निर्धारण कर सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

1.1 प्रस्तावना

किसी भी शोध में आँकड़ों का संकलन सामान्यीकरण के लिए किया जाता है। संकलन में शोधकर्ता के पास समय और संसाधन की कमी होने के कारण पूरे ब्रह्मांड को शामिल कर पानाकठिन होता है। अतः उसके द्वारा अध्ययन हेतु एक नमूने का चयन किया जाता है। इसके इतरकुछ मामलों में संपूर्णब्रह्मांड की आवश्यकता भी होती है जैसे जनगणना से संबंधित सर्वे। इस इकाई में आपको नमूनों और जनसंख्याकी संकल्पनाओं से अवगत कराया जाएगा और साथ ही साथ अच्छे नमूनों की विशेषताओं औरप्रतिचयन की अनेक पद्धतियों पर भी प्रकाश डाला जाएगा।

1.2 नमूना (प्रतिचयन): अर्थ व परिभाषा

प्रतिचयन समग्र का एक छोटा-सा भाग होता है जो पूरे समग्र का प्रतिनिधित्व करता है। हम अपने दैनिक जीवन में भी प्रतिचयन या नमूने का प्रयोग बहुधा करते हैं। जब हम कोई वस्तु खरीदने के लिए बाजार जाते हैं तो उस वस्तु को खरीदने से पहले हम उसके नमूने को देखते हैं। उदाहरण के लिए अगर हम चावल या गेहूँ खरीदने के लिए बाज़ार जाते हैं तो चावल या गेहूँ खरीदने से पहले उसके नमूने के आधार पर हम पूरे चावल की बोरी अथवा गेहूँ की बोरी के स्वरूप का अनुमान लगा लेते हैं। यह नमूना ही वैज्ञानिक शब्दावली में प्रतिचयन या निदर्शन के नाम से जाना जाता है।

अनुसंधान या शोध मोटे तौर पर दो विधियों द्वारा किया जाता है– जनगणना विधि या निदर्शन विधि द्वारा। जनगणना विधि में जहां समस्या से संबंधित प्रत्येक इकाई का अध्ययन कर परिणाम प्राप्त किया जाता है वहीं निदर्शन पद्धति में समस्या से संबंधित क्षेत्र की संपूर्ण इकाइयों में से कुछ प्रतिनिधिपूर्ण इकाइयों का चयन कर लिया जाता है जिनमें समग्र की आधारभूत विशेषताएँ उपलब्ध हों। सरल शब्दों में हम कह सकते हैं कि प्रतिचयन विधि में समस्त समग्र का एक भाग प्रतिनिधि के रूप में लिया जाता है तथा उसके अध्ययन उपरांत प्राप्त निष्कर्ष को पूरे समूह पर लागू किया जाता है। प्रतिचयन को कई समाज वैज्ञानिकों ने परिभाषित करने का प्रयास किया है जिसमें से कुछ निम्नलिखित हैं:

1. **श्रीमती पी.वी.यंग** – *"एक सांख्यिकीय प्रतिचयन, निम्न आकार या समस्त समूह अथवा समग्र का एक भाग है, जिसे चुना गया है।"*
2. **गुडे एवं हॉट** – *"एक निदर्शन जैसा कि नाम से स्पष्ट है कि किसी विशाल समग्र का छोटा प्रतिनिधि है।"*
3. **बोगार्डस** – *"प्रतिचयन विधि पूर्व निर्धारित योजना के अनुसार इकाइयों के एक समूह में से एक निश्चित प्रतिशत का चयन करना है।"*

उक्त वर्णित परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है किप्रतिचयन, अनुसंधान की वह विधि है जिसके अंतर्गत समाज की संपूर्ण इकाइयों का चुनाव न करके विशिष्ट एवं निबंधात्मक इकाइयों को चुना जाता है। यह तरीका इसलिए अपनाया जाता है क्योंकि विशाल जनसंख्या का अध्ययन करना सरल नहीं होता। इसके अतिरिक्त प्रत्येक अनुसंधान की वित्तीय स्थिति सदैव अच्छी ही रहे यह भी आवश्यक नहीं। यही कारण है कि समकालीन परिदृश्य में प्रतिचयन का प्रचलन दिनों-दिन बढ़ता चला जा रहा है।

1.3 प्रतिचयन की विशेषताएँ

उपर्युक्त परिभाषाओं के आलोक मेंप्रतिचयन की निम्नलिखित विशेषताएँ स्पष्ट होती हैं :

- प्रतिचयन संपूर्णसामग्री का एक प्रतिनिधि भाग होता है।

- प्रतिचयन में उन इकाइयों का समावेश किया जाना चाहिए जिससे तथ्यों का संग्रहण सरलता से किया जा सके अर्थात जो अध्ययन को सुगम बना सके।
- प्रतिचयन पक्षपात तथा मिथ्या झुकाव से मुक्तअस्तित्व का होना चाहिए।
- प्रतिचयन का स्वरूप समग्र के अनुपात में न्यून होना चाहिए।
- प्रतिचयन पर्याप्त आकार का होना चाहिए ताकि उसका सांख्यिकीय विश्लेषण विश्वसनीय ढंग से किया जा सके।
- प्रतिचयन अध्ययन विषय के अनुकूल प्रकृति का होना चाहिए।
- प्रतिचयन में परिशुद्धता अधिक मात्रा में होनी चाहिए।
- प्रतिचयन ऐसा होना चाहिए जिसमें यह प्रश्न नहीं उठाया जा सके कि कौन-सी इकाई छोड़ी जाए और कौन-सी इकाई समाविष्ट की जाए।

1.4 प्रतिचयन में विश्वसनीयता

कुछ विद्वानों ने प्रतिचयन विधि की विश्वसनीयता और वैज्ञानिकता पर अत्यंत संदेहपूर्णरवैया अपनाया है। परंतु यदि गौर से देखा जाए तो प्रतिचयन पूर्ण सजगता तथा वैज्ञानिक नियमों के आलोक में चुना जाता है। प्रतिचयन में विश्वसनीयता का अर्थ यह है कि वह प्रतिचयन समग्र का प्रतिनिधित्व कर रहा है अथवा नहीं।

- प्रतिचयन का आकार उतना ही होना चाहिए जितने में वह अपने समग्र का व्यवस्थित प्रतिनिधित्व कर सके।
- समग्र इकाइयों द्वारा वर्गानुसार विभाजित इकाइयों में समानता एवं सजातीयता होने पर प्रतिचयन में विश्वसनीयता अधिक होती है।
- निदर्शन की विश्वसनीयता के लिए प्रतिचयन का सावधानीपूर्वक चयन बहुत महत्वपूर्ण है। प्रतिचयन का आकार यदि छोटा भी है, परंतु यदि उसका चुनाव वैज्ञानिक तरीके से और पूर्ण सावधानी से किया गया है तो वह अधिक विश्वसनीय होगा।

1.5 प्रतिचयन के तरीके

पिछले भाग में हमने संकेत किया कि एक नमूना लेनेके लिए अपनाई गई पद्धति विश्वसनीय परिणामों या निष्कर्षों पर पहुँचने के लिए महत्वपूर्ण है। इस तथ्यको ध्यान में रखते हुए इस भाग में अब हम विभिन्न प्रतिचयन पद्धतियों के विषय में चर्चा करेंगे।

प्रतिचयन पद्धतियों को मोटे रूप में दो श्रेणियों में वर्गीकृत किया जा सकता है -

- **i.** संभाव्य (Probability) प्रतिचयन
- **ii.** ग़ैर-संभाव्य (Non-probability) प्रतिचयन

❖ संभाव्य प्रतिचयन

संभाव्य प्रतिचयन चुनाव की वह विधि है जिसमें समग्र की सभी इकाइयों को चुने जाने का समान अवसर दिया जाता है। इसकी कुछ विशेषताएँ निम्नवत हैं:

- **i.** समान रूप से जनसंख्या की प्रत्येक इकाई को नमूने में चुने जानेकी संभावना हो।
- **ii.** प्रतिचयन की प्रतिक्रिया नमूने की इकाइयों के चुनाव में एक या अधिक चरणों तक स्वचालित हो।
- **iii.** नमूने के विश्लेषण में संभाव्यों के आधार पर आकड़ों को वांछित महत्व दिया जाए।

संभाव्य प्रतिचयन विभिन्न प्रकार से किया जा सकता है, प्रत्येक पद्धति की अपनी-अपनी विशिष्टताएँ और सीमाएँ हैं। इनका संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत है –

क) सामान्य यादृच्छिक प्रतिचयन

इस प्रतिचयन के अनुसार उस संख्या में लिए जा सकने वाले सभी संभव प्रतिदर्शों के चयन की संभावना समान रूप से होती है। इसके अंतर्गत समस्त इकाइयों को इस प्रकार से व्यवस्थित किया जाता है कि चयन प्रक्रिया में समग्र की प्रत्येक इकाई के चुने जाने की संभावना समान रूप से हो। उदाहरणस्वरूप यदि समग्र के अंतर्गत N इकाईयां हैं तथा प्रतिचयन में हम n इकाइयों को सम्मिलित करना चाहते हैं तो सरल यादृच्छिक प्रतिचयन के अनुसार सभी N इकाइयों का चुनाव n/N अवसर प्राप्त होना चाहिए।

आम तौर पर यह सबसे उत्तम परिणाम सुनिश्चित करता है। परंतु व्यवहारिक तौर पर जनसंख्या की संपूर्ण इकाइयों की सूची प्राप्त करना लगभग असंभव है। यदि ऐसा हो भी, तो इसमें लागत बहुत आती है जिसका निर्वहन करना एक शोधकर्ता या किसी संगठन के लिए अत्यंत दुष्कर होगा। अतः सामान्य यादृच्छिक प्रतिचयन का प्रयोग बहुत मुश्किल है। साथ ही साथ संपूर्ण जनसंख्या के विषमजातीय विशेषताओं वाली होने पर चुनी गई सभी इकाइयों के शोध में भाग लेने पर भी परेशानियाँ आती हैं।

ख) व्यवस्थित प्रतिचयन

इसे क्रमबद्ध व आनुक्रमिक प्रतिचयन के नाम से भी पुकारा जाता है। यह जनसंख्या सूची के लिए व्यवस्थित प्रतिचयन नमूने का ज़्यादा सम-विस्तार उपलब्ध कराता है और साथ ही साथ अधिक यथार्थता की ओर उन्मुख करता है। व्यवस्थित प्रतिचयन की प्रक्रिया में निम्नलिखित चरण होते हैं –

- **i.** सबसे पहले जनसंख्या की इकाई की सूची का निर्माण किसी व्यवस्था के आधार पर, जैसे वर्ग क्रम के आधार पर, मकान की संख्यानुसार, प्राथमिकता के अनुसार अथवा अन्य किसी आधार पर किया जाता है।

ii. इष्ट प्रतिचयन अंश का निर्धारण करना, जैसे 15000 में से 500 इकाइयों का प्रतिचयन चुनना है तो 15000/500वीं अर्थात प्रत्येक 3वीं इकाई को प्रतिचयन में लिया जाएगा।

अध्ययन हेतु कितनी इकाइयों का चयन करना है यह निर्धारण समग्र व प्रतिचयन के आधार पर ही होगा। ज्ञातव्य है कि इस चयन प्रक्रिया का इस्तेमाल सीमित व सजातीय समग्र के संदर्भ में ही किया जाता है।

ग) स्तरीकृत प्रतिचयन

स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन में समग्र को विभिन्न स्तरों में वर्गीकृत कर लिया जाता है तथा प्रत्येक स्तर से यादृच्छिक विधि से स्वतंत्र रूप से प्रतिचयन का चुनाव कर लिया जाता है। इसमें सबसे पहले संगत स्तरीकरण मानदण्ड का निर्धारण किया जाता है। तत्पश्चात स्तरीकरण मानदण्ड के आधार पर पूरी जनसंख्या को उन जनसंख्याओं में बाँटा जाता है और प्रत्येक उप-जनसंख्याओं में इकाइयों की अलग-अलग सूची बनाई जाती है। फिर एक उपयुक्त यादृच्छिक चयन तकनीक के इस्तेमाल से प्रत्येक उप जनसंख्या में से अपेक्षित संख्या में इकाइयों का चयन किया जाता है और अंततः प्रमुख नमूना तैयार करने के लिए उन नमूनों को समेकित किया जाता है।

स्तरीकृत प्रतिचयन चयन के उद्देश्य निम्नानुसार हैं –

- अधिक विश्वसनीय प्रतिचयन की प्राप्ति
- संपूर्णसमग्र के लिए प्रतिचयन के परिणामों के प्रसरण (Variance) को कम करना
- विभिन्न स्तरों से अलग-अलग प्रतिचयन का चुनाव करने हेतु यादृच्छिक की अलग-अलग प्रणालियों का प्रयोग करना
- समग्र के विभिन्न स्तरों के बारे में अलग-अलग प्रतिचयन परिणाम प्राप्त करना
- सांख्यिकी के मानक दोषों को घटाना

i) आनुपातिक स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन

इस प्रणाली में समग्र के प्रत्येक स्तर में से प्रतिचयन में इकाईयां उसी अनुपात में यादृच्छिक प्रक्रिया द्वारा चयन की जाती हैं जिस अनुपात में वे समग्र में होती हैं। यदि विभिन्न स्तरों में भिन्न-भिन्न संख्या में इकाईयां पाई जाती हैं तो प्रत्येक स्तर के लिए एक स्थिर अनुपात में चुनते हुए की जाती है। इस प्रकार का चयन शोधकर्ता को इस विषय में निश्चित होने की सामर्थ्यता प्रदान करता है कि वह प्रत्येक स्तर में उचित अनुपात में इकाइयों का चयन कर रहा है।

ii) ग़ैर-आनुपातिक स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन

इसके अंतर्गत प्रत्येक स्तर से समान संख्या मेंइकाइयों का चयन किया जाता है। इसमें इस बात का ध्यान नहीं रखा जाता है कि विभिन्न स्तरों में चुनी गई इकाइयों का समग्र में अनुपात क्या है? किंतु गैर-आनुपातिक स्तरित प्रतिचयन का चयन करते समय यह सदैव आवश्यक नहीं है कि प्रत्येक स्तर से पाई

जाने वाली इकाइयों की संख्या असमान होने के बावजूद भी समान संख्या में इकाईयां प्रतिचयन के अंतर्गत शामिल की जाएँ। आम तौर पर प्रतिचयन में इच्छित इकाइयों की संख्या का चयन विश्लेषण संबंधी उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए किया जाता है।

घ) समूह प्रतिचयन

अध्ययन-क्षेत्र के अधिक फैले होने पर साधारण या स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन के इस्तेमाल पर लागत बहुत अधिक आएगी। अत: यह अत्यंत महँगा और शोध परियोजना के प्रशासन, निरीक्षण तथा विशेष रूप से क्षेत्र में काम करने वालों के पर्यवेक्षण की दृष्टि से बहुत कठिन कार्य होगा। यहाँ समूह प्रतिचयन का चयन ही उचित होगा।

समूह प्रतिचयन का प्रयोग ज़्यादातर सर्वेक्षण अनुसंधान में किया जाता है जहां समग्र बड़ा होता है और वह काफी विस्तृत क्षेत्र में बिखरा हुआ होता है। इसके लिए निम्नलिखित चरणों को अपनाया जाता है –

- सर्वप्रथम पूरे शोध क्षेत्र को उप-क्षेत्रों में विभाजित कर दिया जाता है, सामान्य रूप से जिन्हें समूह कहते हैं।
- समूहों के चयन हेतु साधारण यादृच्छिक या स्तरीकृत पद्धति का इस्तेमाल किया जाता है।
- अन्तत: अनुसंधानकर्ता समूहों में से ही नमूनों का चयन कर अध्ययन किए जाने वाले अंतिम नमूने के आधार पर पहुँच जाता है, जिन्हें साधारण या स्तरीकृत यादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर चुना गया होता है।

❖ **ग़ैर-संभाव्य प्रतिचयन**

जब समग्र से उस संख्या की सभी संभव संयुक्तियों कोप्रतिचयन चयन में लिए जाने की संभावना एक समान नहीं होती है तब इसे गैर-संभाव्य प्रतिचयन कहा जाता है।

क) आकस्मिक या प्रासंगिक प्रतिचयन

प्रासंगिक प्रतिचयन में एक प्रतिचयन उस प्रक्रिया से चयन किया जाता है जिसे उचित रूप से स्पष्ट नहीं किया जा सकता है । उदाहरण के लिए एक शोधकर्ता जो पारिवारिक जीवन का अध्ययन करने का इच्छुक है और इस बारे में वह सूचनाएँ आसानी से प्राप्त कर सकता है अथवा वह अपनाप्रतिचयन अपने कॉलेज में अध्ययनरत छात्रों के परिवारों से प्राप्त करता है। ऐसे मामलों में मानक दोष का गणितीय रूप से अनुमान लगाना सभव नहीं है, क्योंकि स्थिति का एक संभव गणितीय अभिकल्प बनाना असंभव है।

ख) उद्देश्यात्मक प्रतिचयन

उद्देश्यात्मक प्रतिचयन वह प्रतिचयन होता है जिसके चुनाव में शोधकर्ता प्रतिचयन में उन्हीं इकाइयों को शामिल करता है जिनको लेने से उसके उद्देश्य के अनुसार प्रतिचयन प्रभावशाली प्रकार से प्रतिनिधित्वपूर्ण बन सके। इसके चरण निम्नवत हैं –

- औसत गुण की इकाइयों का चयन
- उद्देश्य के अनुसार प्रतिचयन का चयन
- आनुपातिक चयन

उदाहरणस्वरूप, यदि एक शोधकर्ता भारतीय नगर में सामाजिक संस्तरण का अध्ययन करता है जो जनसंख्या, जातिगत ढांचा, जन्म व मृत्यु दर, व्यावसायिक वर्गीकरण तथा अन्य मापने योग्य विशिष्टताओं में सभी भारतीय नगरों के औसत निकट हो। यह मान लिया जाता है कि इस प्रकार विशिष्ट नगर अपनी परिस्थिति व्यवस्था में भी विशिष्ट ही होगा।

ग) नियतांश (कोटा) प्रतिचयन

इसके अंतर्गत समग्र के विविध तत्वों तथा वे जिस अनुपात में समग्र में शामिल हैं, उसी अनुपात में विश्वास के साथ प्रतिनिधित्वपूर्ण प्रतिचयन इकाइयों के चयन के लिए कोटा प्रतिचयन का प्रयोग किया जाता है। इसके चरण निम्नवत हैं –

- सबसे पहले समग्र को वैषयिक आधार पर विभिन्न खंडों में विभाजित कर दिया जाता है।
- प्रत्येक खंड से इकाइयों के चयन हेतु कोटा तय कर लिया जाता है।
- उतनी इकाइयों का चयन प्रत्येक खंड से यादृच्छिक प्रतिचयन के आधार पर कर लिया जाता है।

घ) हिमकंदुक या स्नोबॉल प्रतिचयन

इस प्रतिचयन का इस्तेमाल कुछ विशिष्ट परिस्थितियों के दौरान किया जाता है जैसे- किसी मादक द्रव्य का उपयोग करने वाले या चोर-उचक्कों अथवा जेबकतरों का नमूना लेने में स्नोबॉल प्रतिचयन काफी प्रभावी सिद्ध होता है। जैसे-जैसे एक घूमती हुई बर्फ की गेंद नीचे आगे बढ़ते हुए अपने ऊपर और बर्फ चिपका कर बड़ी होती जाती है वैसे ही जैसे-जैसे अध्ययन के दौरान इकाईयाँ मिलती जाती है उसी के अनुरूप नमूना बढ़ताजाता है। इसे ही हिमकंदुक या स्नोबॉल प्रतिचयन कहते हैं ।

ङ) सुविधाजनक प्रतिचयन

प्रतिचयन की इस प्रविधि में शोधकर्ता को जो भी तरीका सुविधाजनक जान पड़ता है वह उसी के अनुसार प्रतिचयन के चयन करने के लिए स्वतंत्र होता है। अतः इस प्रतिचयन में अभिनत होने की संभावना अधिक रहती है।

च) मिश्रित प्रतिचयन

मिश्रित प्रतिचयन के अंतर्गत प्रतिचयन के एक से अधिक प्रकारों का इस्तेमाल किया जाता है। इस श्रेणी के अंतर्गत उन सभी प्रतिचयन प्रकारों को शामिल किया जा सकता है जिनमें दो अथवा दो से अधिक प्रकारों का उपयोग किया जाता है।

ड़) विस्तृत प्रतिचयन

इस प्रविधि में प्रतिचयन के रूप में अत्यधिक इकाइयों को शामिल किया जाता है । जिन इकाइयों के संबंध में तथ्य संकलन में परेशानी आती है उन्हें छोड़ दिया जाता है। दरअसल यह प्रविधि एक विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए एक वृहत आकार के समग्र के अध्ययन में लाभप्रद होती है।

1.6 प्रतिचयन की पद्धति का चुनाव

प्रतिचयन में पद्धति का चुनाव कार्यक्रम विशेष के उद्देश्यों के अनुरूप होता है। इसके लिए जनसंख्या की संरचना के विषय में उपलब्ध जानकारी, जनसंख्या की परिभाषा, प्राचल जिनका अनुमान लगाया जाना है, अपेक्षित सूक्ष्मता सहित विश्लेषण का उद्देश्य तथा वित्तीय व अन्य साधनों की उपलब्धता आदि मुद्दे अपनी भूमिका का निर्वहन करते हैं। अतः किसी भी अनुसंधान के लिए आवश्यकप्रतिचयन का चुनाव महत्वपूर्ण है।

1.7 नमूने के आकार का निर्धारण

यद्यपि प्रतिचयन के आकार को किसी मानक में नियोजित नहीं किया जा सकता, परंतु फिर भी व्यावहारिक प्रयोग हेतु श्रीमती यंग ने एक छोटेप्रतिचयन के लिए 30-40 इकाइयों के अध्ययन को आवश्यक माना है तथा इकाइयों की संख्या इससे अधिक होने को उन्होंने दीर्घ प्रतिचयन की संज्ञा दी है। इसी प्रकार गुडे एवं हॉट ने भी व्यक्त किया है -

> *“एक प्रतिचयन का केवल प्रतिनिधि मात्र होना पर्याप्त नहीं है, बल्कि उसमें पर्याप्तता का भी गुण होना चाहिए। एक प्रतिचयन उस समय पर्याप्त होता है जब उसका आकार उसके लक्षणों की स्थिरता में विश्वास को स्थापित करने के योग्य हो।”*

प्रतिचयन में निम्नलिखित तत्वों का समावेश होना अत्यंत आवश्यक है–

- समय की प्रकृति
- शोध की गुणात्मक अथवा गणनात्मक प्रकृति
- वर्गों की संख्या
- प्रतिचयन इकाइयों की प्रकृति
- उपलब्ध साधनों (धन, समय, कार्यकर्ता, संपर्क के साधन) की मात्रा
- परिशुद्धता की मात्रा
- अध्ययन की विधि और उपकरण

ज्ञान शांति मैत्री

1.8 सारांश

इकाइयों का सुचारू रूप से परिभाषित समूह ही जनसंख्या होता है जैसे- स्वाभाविक गुण, लक्षण, व्यक्ति, वस्तुएं, विशेषताएँ, व्यक्तियों की विशेषताएँ इत्यादि। प्रतिचयन एक प्रकार का प्रतिनिधि होना है जो पूरी जनसंख्या को इंगित करता है। एक प्रतिर्निधिक नमूने का चयन करने के लिए इकाई का निर्धारण उपयुक्त ढंग से करना होगा। यह प्रक्रिया प्रतिचयन कहलाती है। इसमें सबसे पहले जनसंख्या को परिभाषित किया जाता है। फिर जनसंख्या को सूचीबद्ध करके ऐसे नमूने को चुना जाता है जोसंपूर्णका प्रतिनिधित्व कर सके।

सामान्य तौर पर प्रतिचयन पद्धतियों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है–

1. संभाव्य प्रतिचयन और
2. ग़ैर-संभाव्य प्रतिचयन।

संभाव्य प्रतिचयन में जनसंख्या की इकाइयों का चयन इस प्रकार से किया जाता है कि जनसंख्याकी प्रत्येक इकाई को चुने जाने के समान अवसर प्राप्त हो सके।

संभाव्य प्रतिचयन प्रमुखतः निम्नलिखित प्रकार के हैं –

- साधारण या अबाधित यादृच्छिक प्रतिचयन
- व्यवस्थित प्रतिचयन
- स्तरीकृत प्रतिचयन
- समूह प्रतिचयन
- संभाव्य आकार के अनुपातीप्रतिचयन

गैर-संभाव्य में ठीक इसके विपरीत होता है। यहाँ समग्र से सभी इकाइयों को चुने जाने के अवसर समान रूप से प्राप्त नहीं होते हैं।

गैर-संभाव्य प्रतिचयन मुख्य रूप से निम्नलिखित प्रकार के होते हैं –

- प्रासंगिक प्रतिचयन
- सोद्देश्य प्रतिचयन
- कोटा प्रतिचयन
- स्नोबाल प्रतिचयन
- सुविधाजनक प्रतिचयन
- मिश्रित प्रतिचयन

1.9 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : प्रतिचयन क्या है? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 2 : प्रतिचयन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 3 : संभाव्यता प्रतिचयन को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न विधियों का वर्णन करें।

प्रश्न 4 : गैर संभाव्यता प्रतिचयन को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न विधियों का वर्णन करें।

प्रश्न 5 : टिप्पणी लिखिए :

1. कोटा प्रतिचयन
2. सुविधानुसारप्रतिचयन
2. प्रतिचयन त्रुटि
4. प्रतिचयन ढाँचा

1.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू बिग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहुजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च, सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

नेकमिआस डी. एवं नैकमिआस सी. (1981). *रिसर्च मैथड्स इन दी सोशल साइन्सेस.* न्यूयॉर्क : सेन्ट मार्टिन्स प्रेस।

मोसर, सी.ए. एवं कॉल्टन, (1975). *सर्वे मैथड्स इन सोशल इंवेस्टीशन.* लंदन : हीनमेन एजुकेशनल बुक्स।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन : द फ्री प्रैस।

गैलटंग, जॉन, (1970). *थ्योरी एण्ड मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन: जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन।

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी.* न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च.* एन्जेलवुड क्लिफ. न्यूयॉर्क : प्रेन्टिस हॉल।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

इकाई 2 प्रश्नावली एवं अनुसूची

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 प्रश्नावली: अर्थ एवं परिभाषाएँ

2.3 प्रश्नावली के प्रमुख प्रकार

2.4 प्रश्नावली की विशेषताएँ

2.5 प्रश्नावली बनाने के चरण

2.6 प्रश्नावली के गुण और सीमाएँ

2.7 अनुसूची: अर्थ एवं परिभाषाएँ

2.8 अनुसूची के प्रमुख प्रकर

2.9 अनुसूची की विशेषताएँ

2.10 अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया

2.11 अनुसूची के गुण और सीमएँ

2.12 प्रश्नावली और अनुसूची में समानता व अंतर

2.13 सारांश

2.14 बोध प्रश्न

2.15 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

ज्ञान शांति मैत्री

2.0. उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप -

- प्रश्नावली के अर्थ, परिभाषा, विशेषता एवं निर्माण का परिचय प्राप्त करेंगे।
- अनुसूची के अर्थ, परिभाषा, विशेषता एवं निर्माण का परिचय प्राप्त करेंगे।
- इन दोनों के बीच समानता एवं अंतर का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

सामाजिक अनुसंधान अथवा सर्वेक्षण के प्रारंभिकआयोजन में शोधकर्ता को यह निश्चित करना पड़ता है कि तथ्य संकलन की विभिन्न प्रविधियों में से किस प्रविधि का चयन वह अपने शोध में कर रहा है। वह इसमें अनुसूची, प्रश्नावली अथवा अन्य प्रविधि का सहारा ले सकता है। सामान्य तौर पर, समाज-वैज्ञानिक अनुसंधानों व सर्वेक्षणों में तथ्य संकलन के विविध उपकरणों में से अनुसूची और प्रश्नावली को अपेक्षाकृत अधिक महत्व दिया जा रहा है।

2.2. प्रश्नावली: अर्थ एवं परिभाषाएँ

प्रश्नावली प्रश्नों की एक तालिका होती है जिसे डाक द्वारा भेजकर विशाल क्षेत्र में फैले उत्तरदाताओं से सूचना एकत्र करने के लिए प्रयोग में लाया जाता है। साथ-साथ उनसे आग्रह किया जाता है कि वे उन प्रश्नावलियों को भरकर शीघ्र-अतिशीघ्र निश्चित अवधि में वापस लौटा दें। यदा-कदा उत्तरदाता नजदीक होने पर प्रश्नावलियों को हाथ से भी वितरित कर दिया जाता है।

प्रश्नावली की कुछ प्रमुख परिभाषाएं निम्नलिखित हैं :

1) **बोगार्डस-** *"प्रश्नावली विभिन्न व्यक्तियों को उत्तर देने हेतु दी गई प्रश्नों की एक सूची है।'*
2) **श्रीमती पी.वी.यंग-** *"प्रश्नावली प्रश्नों की वह सूची है जिसे वृहत्, भिन्न तथा विस्तृत रूप में बिखरे लोगों के समूहों से तथ्य संकलन के लिए अभिकल्पित किया जाता है। साधारणतः इसका इस्तेमाल शिक्षित व्यक्तियों से सूचनाओं के संकलन के लिए किया जाता है।*
3) **गुडे और हॉट-** *"सामान्य रूप से, प्रश्नावली शब्द प्रश्नों के उत्तर प्राप्त करने की उस विधि को बताता है जिसमें स्वयं उत्तरदाता द्वारा भरे जाने वाले प्रपत्र का प्रयोग किया जाता है।"*
4) **कार्लिंगर-** *"प्रश्नावली पद का प्रयोग प्रायः किसी भी ऐसे उपकरण से है जिसके अंतर्गत प्रश्न अथवा पद पाए जाते हैं जिनका उत्तर व्यक्ति प्रदान करते हैं।"*

उक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रश्नावली एक प्रकारसे प्रश्नों की सूची है जिसका प्रयोग सुदूर क्षेत्रोंमें फैले शिक्षित उत्तरदाताओं से सूचनाओं के एकत्रीकरण के लिए किया जाता है। उत्तरदाता स्वयं इसे भरकर डाक द्वारा पुनः प्रेषित करते हैं।

2.3 प्रश्नावली के प्रमुख प्रकार

इस संबंध में विभिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं।

जॉर्ज ए.लुंडवर्ग ने प्रश्नावली के दो प्रकारों की चर्चा की है –

1) तथ्य संबंधी प्रश्नावली
2) मत एवं मनोवृत्ति/अभिवृत्ति संबंधी प्रश्नावली

श्रीमती यंग ने भी प्रश्नावली के दो रूपों की चर्चा की है –

1) संरचित प्रश्नावली
2) असंरचित प्रश्नावली

मोटे तौर पर, प्रश्नावली को निम्न भागों में बाँटा जा सकता है –

1) संरचित या संयोजित प्रश्नावली

इसका निर्माण शोध प्रारंभ करने से पूर्व ही कर लिया जाता है। इसमें प्रश्नों का क्रम भी पूर्वनिर्धारित होता है। इस प्रकार प्रश्नावली का मूल उद्देश्य सुनिश्चित व समरूप उत्तर प्राप्त करना होता है।इसके प्रश्न निश्चित व दृढ़ होने के साथ-साथ प्रत्येक व्यक्ति के लिए समान होते हैं जिसके परिणामस्वरूप ये समान तथ्यों की संभावना को मज़बूत आधार प्रदान करते हैं। ऐसी प्रश्नावली का उपयोग उन क्षेत्रों में किया जाता है जहाँ औपचारिक अन्वेषण का संचालन करना हो अथवा पूर्ण रूप से संचित किए गए तथ्यों अथवाआँकड़ों के जाँच की आवश्यकता होती है।

2) असंरचित प्रश्नावली

असंरचित प्रश्नावली में प्रश्नों को पूर्व निर्धारित नहीं किया जाता है। इसका स्वरूप लोचपूर्ण व अनिश्चित होता है। इसमें अध्ययन से संबंधी प्रसंगों अथवाबिंदुओंको पहले से निर्दिष्ट कर लिया जाता है जिनके संबंध में उत्तरदाता से सूचनाओं का संकलन करना होता है। इस प्रकार की प्रश्नावली का प्रयोग मनोविश्लेषणात्मक साक्षात्कारों तथा अनौपचारिक एवं गहन अध्ययनों के लिए किया जाता है।

3) चित्रमय प्रश्नावली

इस प्रकार की प्रश्नावली में प्रश्नों के संभावित उत्तर चित्र द्वारा व्यक्त किए जाते हैं। इन चित्रों से प्रश्नावली रोचक और आकर्षक बन जाती है तथा उत्तरदाता अपने उत्तर का चुनाव करके उपयुक्त चित्र पर निशान लगा देते हैं। इसका प्रयोग अनिरक्षर या मंद बुद्धि लोगों से जानकारी हासिल करनेके लिए किया जाता है।

4) मिश्रित प्रश्नावली

यह प्रश्नावली एक प्रकार से भिन्न, खासकर खुले व बंद प्रकार के प्रश्नों का मिलाजुला रूप होती है। इसे अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप तैयार किया जा सकता है। इससे उत्तरदाता को अपने विचार स्वतंत्र रूप से प्रकट करने अवसर मिल जाता है।

2.4 प्रश्नावली की विशेषताएँ

प्रश्नावली की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं –

1) यह प्रश्नों की एक व्यवस्थित उद्देश्यपूर्ण सूची होती है।
2) यह निश्चित तौर पर उत्तरदाता द्वारा ही भरी जाती है।
3) प्रश्नावली उत्तरदाता से प्राथमिक सामग्री एकत्रित करने की अप्रत्यक्ष विधि है।
4) यह प्रश्नों की प्रायः छपी हुई अथवा कहीं-कहीं साइक्लोस्टाइल की गई सूची होती है।
5) केवल शिक्षित उत्तरदाता को ही इसे प्रेषित अथवा वितरित किया जाता है।

6) इसके अंतर्गत स्पष्ट व सरल भाषा में प्रश्नों को शामिल किया गया होता है।
7) उत्तरदाताओं को यह डाक द्वारा ही प्रेषित की जाती है परंतु स्थानीय स्तर पर यह व्यक्तिगत रूप से भी वितरित की जाती है।
8) सामान्य तौर पर, प्रश्नावली के साथ उत्तरदाता को सूचना भेजने की प्रार्थना के आशय से एक पत्र संलग्न किया रहता है।
9) इसे विस्तृत क्षेत्र में फैले हुए उत्तरदाताओं को एक साथ भेजा जाता है।
10) संरचित प्रश्नावली में निश्चित व पूर्व निर्धारित प्रश्नों के साथ कुछ ऐसे प्रश्न भी होते हैं जिनसे अपर्याप्त उत्तरों की जानकारी प्राप्त करने के लिए विस्तृत जानकारी लेनी पड़ती है।
11) सामान्यतः प्रश्नावली का उपयोग शिक्षित उत्तरदाताओं के लिए ही किया जाता है।

2.5 प्रश्नावली बनाने के चरण

प्रश्नावली का नियोजन विशिष्ट व व्यवस्थित ढंग से होता है। अतः यह प्रक्रिया अनेक सिलसिलेवार चरणों से गुजरती है, यथा –

1) **तैयारी-** इसमें शोधकर्ता प्रश्नावली में सम्मिलित विषय तथा उससे जुड़े अन्य शोधों, प्रश्नों पर विचार-विमर्श करता है।
2) **प्रथम प्रारूप निर्माण-** इसके अंतर्गत विभिन्न प्रकार के प्रश्नों को बनाया जाता है यथा- प्रत्यक्ष/परोक्ष, मुक्त/बंद, सीमित/असीमित, प्राथमिक/द्वितीयक/तृतीयक इत्यादि।
3) **स्व मूल्यांकन-** शोधकर्ता प्रश्नों की प्रासंगिकता, भाषा में स्पष्टता, एकरूपता आदि पर भी ध्यान देता है।
4) **बाह्य मूल्यांकन-** प्रथम प्रारूप का प्रयोग एक या दो सहयोगियों/विशेषज्ञों को जाँच एवं सुझाव के लिए किया जाता है।
5) **पुनरावलोकन-** सुझाव मिलने के उपरांत कुछ प्रश्न हटा दिए जाते हैं, तो कुछ परिवर्तित कर दिए जाते हैं और कुछ नवीन प्रश्न जोड़ दिए जाते हैं।
6) **पूर्व परीक्षण या पायलट अध्ययन-** समूची प्रश्नावली की उपयुक्तता को जाँचने के लिए पूर्व परीक्षण या पायलट अध्ययन किया जाता है।
7) **पुनरावलोकन-** यदि आवश्यक हो तो पूर्व-परीक्षण से प्राप्त अनुभव के आधार पर कुछ परिवर्तन किए जा सकते हैं।
8) **द्वितीय पूर्व परीक्षण-** पुनरावलोकित प्रश्नावली का परीक्षण दोबारा होता है और आवश्यकता के अनुसार उसमें संशोधन लाया जाता है।
9) **अंतिम प्रारूप तैयार करना-** संपादन, उत्तरों के लिए जगह, वर्तनी जाँच, पूर्व कोडिंग के बाद अंतिम प्रारूप तैयार किया जाता है।

2.6 प्रश्नावली के गुण और सीमाएँ

तथ्य संकलन की प्रविधि के रूप में प्रश्नावली अत्यंत उपयोगी प्रविधि है। यह अनुसूची का प्रमुख विकल्प है। प्रश्नावली के गुण निम्नलिखित हैं–

1) प्रश्नावली का उपयोग विस्तृत भौगोलिक क्षेत्र में बिखरी विशाल जनसंख्या के अध्ययन के लिए किया जाता है।
2) प्रश्नावली में अपेक्षाकृत कम समय और खर्च लगता है।
3) इससे प्रामाणिक व विश्वसनीय सूचनाओं की प्राप्ति होती है क्योंकि उत्तरदाता द्वारा इसे सोच समझकर तथा निःसंकोचपूर्वक भरा जाता है।
4) प्रश्नावली, उत्तरदाता व शोधकर्ता दोनों के लिए सुविधाजनक होती है।
5) संरचित प्रश्नावली में मानकीकृत प्रश्नों के मानकीकृत उत्तर भी नियोजित होते हैं जिसके कारण मानकीकृत सूचनाएँ सहजता से प्राप्त हो जाती हैं।
6) आँकड़ों के संकलन की यह एक सरल प्रणाली है।

सामाजिक शोध की दृष्टि से प्रश्नावली अंत्यन्त ही उपयोगी विधि है परंतु इसके अनेक दोष भी हैं–

1) डाक द्वारा प्रेषित की गई सभी प्रश्नावलियों में से सामान्यतः 40 से 50 प्रतिशत या उससे भी कम ही वापस आती हैं । परिणामस्वरूप इतने कम प्रत्युत्तरों से प्राप्त सूचनाएँ अधिकांशतः सीमित प्रामाणिकता वाली होती हैं।
2) प्रश्नावली का इस्तेमाल सामान्यतः शिक्षित उत्तरदाताओं से ही सूचनाओं के संकलन हेतु किया जा सकता है।
3) प्रश्नावली से प्राप्त सूचनाएँ प्रायः विश्वसनीय नहीं होती हैं क्योंकि उत्तरदाता अपनी व्यक्तिगत व सामाजिक प्रतिष्ठा को ध्यान में रख कर वास्तविकता को या तो प्रस्तुत नहीं करते अथवा उसे पथभ्रमित कर प्रस्तुत करते हैं।
4) ऐसे उत्तरदाताओं पर, जो कि प्रश्न का अनुपयुक्त अर्थलगाते हैं या अधूरे या अनिश्चित उत्तर देते हैं कोई नियंत्रण नहीं होता ।
5) प्रश्नावली में अवलोकन का अभाव होने के कारण सूचनाएँ उतनी यथार्थ नहीं प्राप्त होपाती हैं।
6) प्रश्नों का अर्थ न समझ पाने के कारण भी उत्तर नहीं प्राप्त हो पाते हैं।
7) प्रश्नावली को यदि शीघ्रता अथवा लापरवाही से भरा गया हो तो अस्पष्टता के कारण भी उत्तर अनुपयोगी हो जाते हैं।
8) भिन्न-भिन्न स्तरीय समाज वाले लोगों पर प्रश्नावली का प्रयोग संभव नहीं है।
9) कई बार उत्तरदाता व्यक्तिगत व गोपनीय प्रकार के प्रश्नों या विवादास्पद विषयों से संबंधित प्रश्नों का उत्तर लिखित रूप में नहीं देना चाहते।
10) कई बार कुछ जटिल और नाजुक समस्याओं पर वाक्यत्मक प्रश्न बनाना भी दुष्कर कार्य होता है।

11) कई बार उत्तरदाता अपने पहले दिए या मूल उत्तरों को यह देखने पर कि उनके बाद के प्रश्नों के लिए दिए उत्तर पहले उत्तरों के प्रति विरोधाभासी हैं, संशोधित कर देते हैं।

2.7 अनुसूची: अर्थ एवं परिभाषाएँ

अनुसूची प्राथमिक तथ्य संकलन की एक ऐसी प्रविधि है,जिसमें प्रश्नावली, अवलोकन व साक्षात्कार इन तीनों की विशेषताएँ व गुण एक साथ पाए जाते हैं। इसके द्वारा उन क्षेत्रों से भी आँकड़ों का संग्रहण किया जाता है जिन क्षेत्रों के उत्तरदाता पढ़े-लिखे नहीं होते हैं। प्रश्नावली के ही समान अनुसूची भी तथ्य संकलन करने की एक प्रमुख विधि है। अनुसूचीभी प्रश्नों की एक सूची होती है परंतु इसे डाक द्वारा प्रेषित नहीं किया जाता। शोधकर्ता स्वयं इसे लेकर क्षेत्र में जाता है और उत्तरदाता से प्रश्नों को पूछकर भरता है।

अनुसूची की समाज वैज्ञानिकों द्वारा दी गयी कई परिभाषाओं में से कुछ प्रमुख निम्नलिखित हैं:

बोगार्डस- *"अनुसूची तथ्यों को, जो वैषयिक स्वरूप में हैं तथा आसानी से अनुभव योग्य हैं उपलब्ध कराने के लिए एक औपचारिक पद्धति का प्रतिनिधित्व करती हैं...। अनुसूची स्वयं उत्तरदाता द्वारा भरी जाती है।"*

श्रीमती पी.वी.यंग- *"यह जनगणना की एक विधि है जिसका प्रयोग औपचारिक एवं मानवीकृत गवेषणाओं में विभिन्न प्रकार के परिमाणात्मक तथ्यों के लिए किया जाता है।"*

गुडे एवं हॉट- *"अनुसूचीप्रायः ऐसे प्रश्नों के समूह का नाम है जिसे साक्षात्कारकर्ता किसी अन्य व्यक्ति से आमने-सामने की स्थिति में पूछता और भरता है।"*

उपर्युक्त परिभाषाओं से यह स्पष्ट होता है कि**अनुसूची अनुसंधान/शोध के लिए रचे गए प्रश्नों की एक तालिका है जिसके प्रश्नों के उत्तरों को स्वयं शोधकर्ता द्वारा उत्तरदाता की उपस्थिति में भरा जाता है।**

2.8 अनुसूची के प्रमुख प्रकार

अनुसूची के प्रकार के संबंध में भी विद्वानों में मतभेद हैं।

श्रीमती यंग ने अनुसूची के **चार** प्रकारों का उल्लेख किया है –

1) अवलोकन अनुसूची
2) मूल्यांकन अनुसूची
3) प्रलेख अनुसूची
4) संस्था सर्वेक्षण अनुसूची

जॉर्ज लुंडवर्ग ने अनुसूची को **तीन** प्रकारों में विभाजित किया है-

1) वस्तुनिष्ठ तथ्यों को लिपिबद्ध करने वाली अनुसूची
2) अभिवृत्ति और मत का निर्धारण व उनका मान करने वाली अनुसूची

3) सामाजिक संगठनों तथा संस्थाओंकी स्थिति और कार्यों को जानने से संबंधितअनुसूची

यहाँ हम अनुसूची के कुछ प्रमुख प्रकारों का उल्लेख करेंगे–

1) साक्षात्कार अनुसूची

इसका प्रयोग मुख्यतःव्यक्तिगत साक्षात्कार के दौरान किया जाता है। शोधकर्ता द्वारा साक्षात्कार अनुसूची में अंकित प्रश्नों के उत्तरों को उत्तरदाता से प्राप्त करके अनुसूची में उक्त स्थान पर अंकित कर देना होता है। इससे विश्वसनीय व प्रामाणिक सूचनाएँ प्राप्त होती हैं।

2) अवलोकन अनुसूची

इस अनुसूची का प्रयोग किसी घटना के निरीक्षण के लिए किया जाता है। इसमें शोधकर्ता अध्ययन क्षेत्र में जाकर स्वयं ही घटना का विश्लेषण करता है और उसे यथास्थान अंकित कर देता है। यह अनुसूची शोधकर्ता के कार्य को प्रभावी, सुव्यवस्थित व क्रमबद्ध करती है।

3) लिखित या प्रलेख अनुसूची

इस अनुसूची का प्रयोग प्रलेखों, वैयक्तिक इतिहासों तथा अन्य स्रोतों से प्राप्त तथ्यों को अंकित करने के लिए किया जाता है। यह ऐतिहासिक, विकासात्मक अनुसंधान व सर्वेक्षण में अधिक इस्तेमालकी जाती है।

4) मूल्यांकन अनुसूची

इस अनुसूची का मूल उद्देश्य मूल्यांकन करना होता है। घटनाओं या सामाजिक समस्याओं के बारे में अभिरुचि आदि के संग्रह के लिए इसका प्रयोग किया जाता है। इसके द्वारा उत्तरदाता की पसंद-नापसंद, पक्ष-विपक्ष के विचारों को जानने का प्रयास किया जाता है।

5) जाँच अनुसूची

अधिकांशतः इस प्रकार की अनुसूचियों का इस्तेमाल सामान्य तथ्यों अथवा जनगणना संबंधी सूचनाओं को एकत्रित करने में किया जाता है।

2.9 अनुसूची की विशेषताएँ

अनुसूची की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

1) अनुसूची समस्या से संबंधित विभिन्न प्रश्नों की एक क्रमबद्ध तालिका है जिसका प्रयोग सामाजिक शोध में तथ्य संकलन की एक प्रविधि के रूप में किया जाता है।
2) इसका प्रयोग तब होता है जब उत्तरदाता बिखरे हुए क्षेत्र में फैले नहीं होते हैं बल्कि शोधकर्ता की पहुँच में होते हैं।
3) ये प्रश्न प्रायः शोधकर्ता और उत्तरदाता से आमने-सामने की स्थिति में पूछे जाते हैं।
4) अनुसूची के प्रश्नोंको पूछते समय शोधकर्ता कुछ सामान्य शोध सिद्धांतों एवं प्रविधि से उत्तरदाता का मार्गदर्शन करता रहता है।

5) अनुसूची का आकार प्रायः छोटा होताहै क्योंकि बहुत लंबी अनुसूची होने पर उत्तरदाता के लिए उबाऊ होने की संभावना बनी रहती है।
6) अनुसूची स्वयं शोधकर्ता द्वारा भरी जाती है।
7) अनुसूची के सारे प्रश्न छपे होते हैं और साथ ही यह एक पृथक उपकरण के रूप में भी काम करती है।

2.10 अनुसूची निर्माण की प्रक्रिया

अनुसूची के प्रमुख रूप से**दो** भाग होते हैं –

1. अनुसूची का भौतिक याबाह्य पक्ष
2. अनुसूची की अंतर्वस्तु

उक्त आधार पर ही अनुसूची में निर्माण किए जाने वाली –

- प्रश्नों की विषय वस्तु
- प्रश्नों की शब्द रचना या भाषा
- प्रश्नों का क्रम
- प्रत्युत्तर के विकल्प आदि

की रचना होती है ।

क) अनुसूची का भौतिक या बाह्य पक्ष

इसके अंतर्गत अनुसूची का आकार, उत्तर भरने का स्थान, कागज की गुणवत्ता तथा विषय को विभिन्न शीर्षकों में विभाजित करना आदि आता है –

- अनुसूची का आकार सामान्यत: 8 x11 से अधिक बड़ा नहीं होना चाहिए। अनुसूची में प्रयुक्त कागज चिकना, साफ, सफेद या रंगीन कुछ भी हो सकता है।
- सारिणी में सूचना भरने के लिए बॉक्सतथा लिखने के लिए खाली स्थान होना चाहिए।
- शीर्षक तथा उपशीर्षक द्वारा विषय को सुव्यवस्थित किया जाता है।

ख) अनुसूची की अंतर्वस्तु

अनुसूची कीअंतर्वस्तु के अंतर्गत जानकारियों के लिए दो भागों में सूचनाओं को संकलित कियाजाता है –

1. **उत्तरदाता के बारे में प्रारंभिक जानकारी**– इसमें उत्तरदाता का नाम, पता, आयु, लिंग, जाति, धर्म, शिक्षा, व्यवसाय, आय आदि के बारे में सूचनाएँ संकलित की जाती है।

2. **समस्या से संबंधित प्रश्न एवं सारणियाँ**– दूसरे भाग में प्रश्न एवं सारणियों के अलावा शोधकर्ता के लिए आवश्यक निर्देश भी होते हैं। इसी भाग में शोध विषय तथा शोध करने वाले संस्थान/व्यक्ति का परिचय भी होता है।

❖ अनुसूची की प्रश्नावली एवं प्रश्न

अनुसूची में प्रश्नों द्वारा सूचनाओं को संकलित किया जाता है। इसलिए इसके निर्माण में उचित शब्दों एवं प्रश्नों का चयन करना अत्यंत आवश्यक है। अनुसूची में अनेक प्रकार के प्रश्न पूछे जाते हैं, उन प्रश्नों को निम्नलिखित भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1. निर्दिष्ट प्रश्न/संरचित या आयोजित प्रश्न

इसमें प्रश्नों के संभावित उत्तर पहले से ही लिख दिए गए होते हैं और सूचनादाता को इनमें से ही किसी एक उत्तर (विकल्प) का चुनाव करना होता है–

क) आप शिक्षित अथवा अशिक्षित हैं? शिक्षित /अशिक्षित

ख) आपकी वैवाहिक स्थिति क्या है? विवाहित/अविवाहित/विधुर अथवा विधवा/तलाकशुदा

2. अनिर्दिष्ट प्रश्न/खुले प्रश्न

इस प्रकार के प्रश्नों का उत्तर देने में उत्तरदाता को स्वतंत्रता होती है और वह अपनी राय मुक्त रूप से अभिव्यक्त कर सकता है –

क) आपकी राय में बेरोज़गारी के क्या कारण हैं ?

ख) आपके अनुसार उसे कैसे दूर किया जा सकता है?

3. दोहरे/द्वंद्वात्मक प्रश्न

जब किसी प्रश्न के दो ही संभावित उत्तर हो सकते हैं तो ऐसे प्रश्नों को दोहरे उत्तर वाले प्रश्न कहते हैं। इन प्रश्नों का एक उत्तर सकारात्मक (हाँ) तथा दूसरा उत्तर नकारात्मक(नहीं) में होता है –

अ) क्या आप अनुसूचित जनजाति के हैं? हाँ/नहीं

आ) क्या आप हिंदू धर्म से संबंधित हैं? हाँ/नहीं

4. श्रेणीबद्ध प्रश्न

इस प्रकार के प्रश्नों में उत्तरदाता को विभिन्न उत्तरों में से एक नहीं अपितु सभी को चुनना होता है और उन्हें अपनी पसंद के अनुसार एक क्रम देना होता है। उदाहरण के लिए –

- अपने लिए आप कौन-सा व्यवसाय चुनना पसंद करेंगे?
  अ) भारतीय प्रशासनिक सेवा
  आ) किसी बड़े मिल के निदेशक
  इ) प्रथम श्रेणी की यूनिवर्सिटी का ऑफिसर

ई) प्रथम श्रेणी की अनुसंधानशाला का निदेशक
उ) ख्याति प्राप्त डाक्टर
ऊ) अच्छी ख्याति या हाई कोर्ट का वकील

5. अस्पष्ट प्रश्न

इस प्रकार के प्रश्नों से उत्तरदाता यह नहीं समझ पाता है कि प्रश्न क्या पूछा गया है और उसका उत्तर क्या होगा ?

अ) आप शिक्षित हैं अथवा अशिक्षित हाँ / नहीं।

आ) जब ऐसे विशिष्ट शब्दों का इस्तेमाल किया जाए जिनका अर्थ सर्व साधारण में प्रचलित नहीं है जैसे-आप स्वतंत्र अर्थव्यवस्था पसंद करते हैं अथवा नियंत्रित ?

6. निर्देशक प्रश्न

इसमें किसी प्रश्न के द्वारा उसके उत्तर की ओर संकेत किया जाता है। इस प्रकार के प्रश्न पक्षपात को प्रेरित करते हैं –

- क्या यह परिवार के लिए अधिक उपयोगी नहीं होगा कि स्त्रियाँ बाहर सेवा करने की जगह घर में बच्चों की देखरेख करें?

7. बहुअर्थक/अनेकार्थक प्रश्न

इस प्रकार के प्रश्नों की भाषा ऐसी होती है जिनके अर्थ एक से अधिक निकलते हैं। इनसे शोधकर्ता को बचना चाहिए। यथा –

- आप कौन सा व्यवसाय चुनना पसंद करेंगे?
  अ) व्यक्तिगत नौकरी
  आ) पेशागत रोज़गार
  इ) सरकारी नौकरी
  ई) व्यापार अथवा उद्योग
  उ) अन्य

❖ प्रश्नों का चयन/विशेषताएं

प्रश्नों के चुनाव के समय शोध के उद्देश्य, क्षेत्र की स्थिति, उत्तरदाताओं के स्वभाव तथा अनुसंधान करने वाले कार्यकर्ताओं की योग्यता आदि पर विचार किया जाना चाहिए। इस प्रकार प्रश्नों का चयन निम्न बातों को ध्यान में रखकर सावधानीपूर्वक करना चाहिए –

1) **आकार-** प्रश्न छोटे, सुगम, सरल एवं उत्तरदाता से संबंधित हों एवं न्यूनतम संख्यात्मक स्थिति में हों।
2) **बौद्धिक स्तर-** उत्तरदाता के बौद्धिक स्तर के आधार पर प्रश्न नियोजित किए जाने चाहिए।

3) **श्रेणीबद्धता, क्रमबद्धता-** प्रश्नों में एक तारतम्यता व क्रमबद्धता होनी चाहिए।
4) **स्पष्टता-** प्रश्न की भाषा सरल एवं स्पष्ट होनी चाहिए, जिससे कि प्रश्न उत्तरदाता की समझ में आसानी से आ सके।
5) **वैषयिक्ता-** प्रश्न शोध-विषय से संबंधित होने चाहिए, उसके इतर प्रश्नों को पूछने से बचना चाहिए।
6) **अस्पष्टता-** प्रश्नों में अस्पष्टता से बचना चाहिए, इस प्रकार के प्रश्नों के सही उत्तर नहीं मिल पाते हैं।
7) **बहुअर्थक पेचीदा प्रश्न-** इन प्रकार के प्रश्नों को तैयार नहीं करना चाहिए।
8) **समय-** प्रश्नों के चयन में इस बात पर ध्यान देना चाहिए कि उत्तरदाता कम समय में अधिक उत्तर दे सके और वह उबाऊ महसूस न करे, अन्यथा शोध में विश्वसनीयता का स्तर कम होने की संभावना रहती है।
9) **विचारात्मक गहन प्रश्नों का प्रयोग-** इस प्रकार के प्रश्नों के इस्तेमाल से कई विश्वसनीय सूचनाएँ प्राप्त होती हैं। जब उत्तरदाता क्यों, कब, कैसे आदि प्रश्नों का उत्तर देता है तो इससे अन्य उत्तर की सत्यता को समझने में सहायता होती है।
10) **निषिद्ध क्षेत्र या गुप्त जीवन से संबंधित प्रश्न-** इस प्रकार के प्रश्नों की सूचना देने में उत्तरदाता स्वयं को लज्जित पाता है। अत: वह इनसे बचने या गलत उत्तर देने का प्रयास करता है। इसलिए ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।

2.11 अनुसूची के गुण औरसीमाएँ

हम **अनुसूची के गुणों**को निम्न प्रकार से विश्लेषित कर सकते हैं –

1) अनुसूची के प्रयोग से शोधकर्ता को गूढ़विस्तृत जानकारी सरलता से प्राप्त हो जाती है, क्योंकि इसमें शोधकर्ता सूचना संकलित करने के साथसाथ स्वयं भी घटना का अवलोकन कर रहा होता है।
2) प्रत्यक्ष निरीक्षण के कारण प्राप्त तथ्यों की जाँच भी हो जाती है।
3) शोधकर्ता द्वारा अनुसूची स्वयं भरे जाने के कारण अनावश्यक सूचनाओं और त्रुटियों से भी बचाव हो जाता है।
4) तथ्यों का संकलन लिखित रूप में होता है, जिसके कारण शोधकर्ता को अपनी स्मरण शक्ति पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं पड़ती है और साथ ही साथ त्रुटियों की संभावनाएं भी कम रहती हैं।
5) यद्यपि अनुसूची में अधिकांश सीमा तक विषय केसैद्धांतिक आधारों पर ही प्रश्नों की निर्मिति की जाती है तथापि क्षेत्रीय कार्य करते समय शोधकर्ता को यदि यह आभास हो जाता है कि संरचित

अनुसूची में कुछ कमियाँ रह गयी हैं अथवा इसमें कुछ और जोड़ना चाहिए तो यह परिवर्तन या संशोधन आसानी से किया जा सकता है।

6) अनुसूची को स्वयं शोधकर्ता द्वारा भरा जाता है अतः वह उत्तर के लिए कुछ सांकेतिक शब्दों का इस्तेमाल भी कर सकता है, जिससे समय की काफी बचत होती है।
7) शोधकर्ता के सामने होने के कारण उत्तरदाता द्वारा वास्तविकता को छिपाना अपेक्षाकृत मुश्किल होता है, जिससे कि यथार्थ आकड़ों की प्राप्ति के अवसर अधिक होते हैं।
8) शिक्षित-अशिक्षित सभी प्रकार के उत्तरदाताओं से तथ्य संकलन किया जा सकता है।

अनुसूची की अपनी कुछ **सीमाएँ** हैं, जो इस प्रकार हैं –

1) अनुसूची में सार्वभौमिक प्रश्नों का प्रायः अभाव होता है।
2) अनुसूची में शोधकर्ता और उत्तरदाता के प्रत्यक्ष रूप से आमने-सामने होने के कारण अभिनति की समस्या आती है क्योंकि दोनों एक-दूसरे से प्रभावित होते रहते हैं।
3) उत्तरदाता से व्यक्तिगत संपर्क स्थापित न हो पाने से भी सूचनाएँ यथार्थ रूप से प्राप्त नहीं हो पाती हैं।
4) अनुसूची वृहत क्षेत्र के स्थान पर लघु क्षेत्र का प्रतिनिधित्व करती है।
5) अनुसूची विधि अपेक्षाकृत अधिक खर्चीली होती है।
6) प्रत्यक्ष संपर्क होने के कारण कई बार शोधकर्ता उत्तरदाता के बारे में कुछ पूर्वधारणाएँ बना लेता है जो कि शोध की गुणवत्ता के लिए घातक है।

2.12 प्रश्नावली और अनुसूची में समानता व अंतर

एक सीमा तक **प्रश्नावली और अनुसूची में** निम्न **समानताएँ** परिलक्षित होती हैं –

1) अनुसूची व प्रश्नावली प्रश्नों का एक समूह है जिसका प्रयोग तथ्य संकलन के रूप में किया जाता है।
2) दोनों विधियाँ सिद्धांत, प्रारूप व अभिकल्प की दृष्टि से मूर्त हैं।
3) इन दोनों की सहायता से प्राथमिक आँकड़ों का संकलन किया जाता है।
4) ये दोनों प्रश्नों की रचना, शब्द चयन, आकार-प्रकार, संप्रेषण-प्रयत्न तथा संरचना के आधार पर काफी सीमा तक समान हैं।

यद्यपि **प्रश्नावली और अनुसूची** में संरचनागत समानताएँ होती हैं फिर भी इनमें कुछ **मूलभूत अंतर** पाए जाते हैं –

1) सामान्यतः तथ्य संकलन हेतु प्रश्नावली को डाक से प्रेषित किया जाता है और अनुसूची का उपयोग शोधकर्ता द्वारा प्रत्यक्ष रूप में किया जाता है।

2) यदि उत्तरदाता को प्रश्नावली के उत्तर देने में कठिनाई आती है तो वहाँ उसकी समस्या दूर करने के लिए शोधकर्ता मौज़ूद नहीं होता है जबकि अनुसूची में उत्तर के दौरान शोधकर्ता उत्तरदाता के साथ होता है और सर्वथा उसका मार्गदर्शन करता रहता है।
3) लेखनी व उत्तरों की स्पष्टता के आधार पर अनुसूची, प्रश्नावली की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय होती है।
4) प्रश्नावली की भाँति अनुसूची में प्रश्नों की सूची खो जाने का डर नहीं रहता है।
5) अनुसूची के समय शोधकर्ता क्षेत्र में मौज़ूद रहता है जिससे वह अवलोकन विधि से प्राप्त तथ्यों की जाँच भी करता रहता है। इस प्रकार से यथार्थ आँकड़ों की प्राप्ति की संभावना ज़्यादा रहती है जबकि प्रश्नावली में ऐसा कुछ नहीं होता है।
6) अनुसूची द्वारा गहन सूचनाएँ प्राप्त की जा सकती हैं परंतु प्रश्नावली से नहीं।
7) अनुसूची प्रविधि के प्रयोग में अपेक्षाकृत अधिक धन व्यय होता है।
8) प्रश्नावली का प्रयोग विशाल क्षेत्र में फैले हुए उत्तरदाता के लिए किया जाता है जबकि अनुसूची का प्रयोग सीमित क्षेत्र में किया जाता है।

2.13 सारांश

तथ्य संकलन की मूल विधियों के रूप में अनुसूची और प्रश्नावली को माना जाताहै। अनुसूची का इस्तेमाल प्रत्यक्ष साक्षात्कार व प्रत्यक्ष अवलोकन में किया जाता है तथा संबंधितप्रश्नों को शोधकर्ता द्वारा स्वयं लेखबद्ध किया जाता है जबकि प्रश्नावली में प्रश्नों को डाक द्वारा उत्तरदाताओं के पास प्रेषित किया जाता है तथा उनके उत्तरों को लेखबद्ध करने का कार्य स्वयं उत्तरदाता द्वारा ही किया जाता है।

2.14 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : प्रश्नावली क्या है? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
प्रश्न 2 : प्रश्नावली के विभिन्न प्रकारों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 3 : प्रश्नावली को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न विधियों का वर्णन कीजिए।
प्रश्न 4 : प्रश्नावली और अनुसूची में मूलभूतअंतर पर प्रकाश डालिए।
प्रश्न 5 : टिप्पणी लिखिए :

1. मूल्यांकन अनुसूची
2. साक्षात्कार अनुसूची
3.

2.15 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च. सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स,* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क.* वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी.* नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

नेकमिआस डी. एवं नैकमिआस सी. (1981). *रिसर्च मैथड्स इन दी सोशल साइन्सेस.* न्यूयॉर्क : सेन्ट मार्टिन्स प्रेस।

मोसर, सी.ए. एवं कॉल्टन, (1975). *सर्वे मैथड्स इन सोशल इंवेस्टीगेशन.* लंदन : हीनमेन एजुकेशनल बुक्स।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन : द फ्री प्रैस।

गैलटंग, जॉन, (1970). *थ्योरी एण्ड मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन: जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन।

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी.* न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च.* एन्जेलवुड क्लिफ, न्यूयॉर्क : प्रेन्टिस हॉल।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

ज्ञान शांति मैत्री

इकाई 3 साक्षात्कार

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य
3.1 प्रस्तावना
3.2 साक्षात्कार: अर्थ और परिभाषाएँ
3.3 साक्षात्कार के उद्देश्य
3.4 साक्षात्कार की विशेषताएँ
3.5 साक्षात्कार के प्रकार
3.6 साक्षात्कार के गुण व सीमाएँ
3.7 साक्षात्कार के नियम
3.8 सारांश
3.9 बोध प्रश्न
3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरांत आप–

- साक्षात्कार के अर्थ, परिभाषा, उद्देश्य, विशेषता एवं प्रकारों से परिचित हो सकेंगे।
- साक्षात्कार के गुण व दोषों की समालोचना कर सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

सामाजिक शोध तथा सर्वेक्षण के अंतर्गत तथ्य संकलन के उपकरण केरूप में साक्षात्कार भौतिक रूप से एक पारस्परिक प्रक्रिया है, जिसके अंतर्गत साक्षात्कारकर्ता विषय की प्रत्यक्ष उपस्थिति में इष्टतम जानकारी हासिल करता है। साक्षात्कार तथ्य संकलन की एक ऐसी प्रविधि है जिसके माध्यम से सामाजिक इकाइयों की गहनतम भावनाओं एवं तथ्योंको संकलित किया जा सकता है।

3.2 साक्षात्कार: अर्थ और परिभाषाएँ

सामान्यतः दैनिक जीवन में साक्षात्कार के लिए प्रयुक्त अंग्रेज़ी शब्द‘इंटरव्यू’ एक विशिष्ट परिस्थिति एवं परिवेश का बोध कराता है, जिसमें एक ओर साक्षात्कारकर्ता और दूसरी ओर साक्षात्कारदाता होता है।

इसे विभाजित करने पर दो शब्द प्राप्त होते हैं 'इंटर' और 'व्यू'। पहले शब्द 'इंटर' का अभिप्राय 'आंतरिक' है और दूसरे शब्द 'व्यू' का अर्थ 'देखना' है। अपने जीवन तथा सामान्य व्यवहार में हमारे सामने विविध प्रकार के साक्षात्कार होते रहते हैं जैसे- अधिकारियों से मिलने के लिए, नौकरी के लिए, संस्था में प्रवेश हेतु आदि। इस प्रकार साक्षात्कार का शाब्दिक अर्थ है'उत्तरदाता के आंतरिक जीवन को देखना'। यह एकमात्र प्रणाली है, जिसके द्वारा अध्ययनकर्ता समूह के लोगों के व्यक्तित्व का चित्रात्मक अध्ययन प्रस्तुत करता है।

समाज वैज्ञानिकों ने साक्षात्कार को निम्नलिखित रूप से परिभाषित किया हैं :

1) **श्रीमती पी.वी.यंग-** *"साक्षात्कार को एक क्रमबद्ध पद्धति माना जा सकता है। इस पद्धति द्वारा एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति के जीवन में कम काल्पनिकता से प्रविष्ट होता है जो कि उसके लिए सामान्यतया तुलनात्मक रूप से अपरिचित है।"*
2) **गुडे एवं हॉट-** *"साक्षात्कार मूल रूप से एक सामाजिक प्रक्रिया है।"*
3) **करलिंगर-** *"साक्षात्कार एक आमने-सामने अन्तर्वैयक्तिक भूमिका वाली परिस्थिति है जिसमें एक व्यक्ति साक्षात्कारकर्ता, साक्षात्कार किए जाने वाले व्यक्ति, उत्तरदाता से एक प्रश्न पूछता है। प्रश्नों का निर्माण अनुसंधान समस्या के उद्देश्यों के लिए उचित उत्तरों की प्राप्ति हेतु किया जाता है।"*

उक्त परिभाषाओं से स्पष्ट होता है कि साक्षात्कार वह विधि है जिसमें साक्षात्कारकर्ता एवं उत्तरदाता दोनों ही आमने-सामने बैठकर अध्ययन से संबंधितसमस्या पर विचार विमर्श करते हैं या कहा जा सकता है कि किसी भी समस्या पर लोगों से प्रत्यक्ष रूप से उनकी राय जानने के लिए यह विधि अपनाई जाती है।

3.3 साक्षात्कार के उद्देश्य

विवेचनागत अध्ययन की सुविधा हेतु साक्षात्कारके प्रमुख उद्देश्यों को निम्न रूपों में अभिव्यक्त किया जा सकता है –

1) शोध में इसका इस्तेमाल साक्षात्कारकर्ता एवं उत्तरदाता से प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित कर आमने-सामने की स्थिति में अध्ययन विषयक साधनों से तथ्यों के संकलन हेतु किया जाता है।
2) इसका उपयोग संकलित तथ्यों के सत्यापन हेतु भी किया जाता है।
3) इसका इस्तेमाल उपकल्पनाओं के निर्माण व उनके परीक्षण के लिए किया जाता है।
4) इसका प्रयोग उत्तरदाता की क्रियाओं, व्यवहार, आचार-विचार, हाव-भाव आदि का प्रत्यक्ष रूप से निरीक्षण करने के लिए किया जाता है।
5) इसका उपयोग गुणात्मक वैयक्तिक आँकड़ों को मात्रात्मक आँकड़ों के रूप में प्रस्तुत करने के लिए किया जाता है।
6) इसका इस्तेमाल विभिन्न प्रकार के चरों एवं उनके प्रभावों को जानने के लिए किया जाता है।

ज्ञान शांति मैत्री

3.4 साक्षात्कार की विशेषताएँ

साक्षात्कार एक सामाजिक प्रक्रिया है जिसकी विशेषताएँ निम्नवत हैं –

1) साक्षात्कार में शोधकर्ता और उत्तरदाता में प्रत्यक्ष संपर्क स्थापित होता है।
2) साक्षात्कार एक-दूसरे से संपर्क साधने का एक साधन है।
3) साक्षात्कार का एक विशिष्ट उद्देश्य होता है और यह उद्देश्य शोध विषय के संदर्भ में पूर्व निश्चित होता है।
4) साक्षात्कार दो अथवा उससे अधिक व्यक्तियों के बीच विचार-विमर्श होता है।
5) साक्षात्कार के दौरान साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक पृष्ठभूमि का पूर्ण इस्तेमाल करते हुए उत्तरदाता के साथ अर्थपूर्ण अनुसंधानिक संबंध स्थापित करने का प्रयास करता है।
6) साक्षात्कार के दौरान प्रश्नों का आदान-प्रदान साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता दोनों के मध्य होता है।

3.5 साक्षात्कार के प्रकार

सामाजिक शोध में वैसे तो कई प्रकार की साक्षात्कार विधियों का प्रयोग किया जाता है परंतु अध्ययन की सुविधा के लिए उन्हें निम्न भागों में विभाजित किया जा सकता है –

1) संरचित या नियंत्रित साक्षात्कार

साक्षात्कार के इस प्रकार में समस्या से संबंधित विषय पर पहले ही प्रश्नों का निर्माण कर लिया जाता है तथा उसी क्रम में उत्तरदाता से प्रश्न पूछ कर उन्हीं के शब्दों में उत्तर भी संग्रहीत किए जाते हैं। इसमें अनुसूची का प्रयोग किया जाता है। प्रश्न तैयार करते समय यह ध्यान रखा जाता है कि वे विषय से संबंधित हों, उनमें क्रमबद्धता हो और साथ-ही-साथ वे सरल व समझने योग्य हों।

2) असंरचित या अनियंत्रित साक्षात्कार

असंरचित साक्षात्कार में प्रश्न पूर्व रचित नहीं होते हैं बल्कि साक्षात्कारकर्ता उत्तरदाता के सामने बैठकर समस्या के संबंध में प्रश्न पूछता है और उत्तरदाता स्वतंत्र रूप से उनके जवाब देता है। इस प्रकार के साक्षात्कार में साक्षात्कारकर्ता साक्षात्कार निर्देशिका का प्रयोग करता है जिसमें विषय से संबंधित मूल बिंदुओं को पहले ही अंकित किया गया होता है और साक्षात्कारकर्ता उसी के अनुरूप प्रश्न पूछता है। इसका उपयोग ज़्यादातर मनोवैज्ञानिक अध्ययन में किया जाता है।

3) केंद्रित साक्षात्कार

इस विधि का उपयोग जनसंचार के साधनों, जैसे- सिनेमा, रेडियो, पत्र-पत्रिका के किसी विशिष्ट भाग के प्रभाव को जानने के लिए किया जाता है और इसमें उन्हीं लोगों को उत्तरदाता के रूप में शामिल किया

जाता है जो उससे संबंधित हों। इसमें आवश्यकतानुसार साक्षात्कार प्रदर्शिका का प्रयोग कर भी सकता है और नहीं भी।

4) सामूहिक साक्षात्कार

साक्षात्कार के इस प्रकार में एक साक्षात्कारकर्ता अनेक व्यक्तियों का एक ही स्थान पर एक ही समय में साक्षात्कार करता है। वह साक्षात्कार अनुसूची के आधार पर सभी व्यक्तियों से सूचनाएँ प्राप्त करता है। इस विधि का प्रयोग प्रायः तब किया जाता है जब साक्षात्कारकर्ता के पास धन व समय का अभाव होता है।

5) पुनरावृत्त साक्षात्कार

इस विधि द्वारा विभिन्न स्थितियों में उत्तरदाताओं की प्रतिक्रियाओं का अध्ययन किया जाता है। किसी भी व्यक्ति की समान घटनाओं के प्रति अलग-अलग परिस्थिति में धारणाएँ अलग-अलग होती हैं। इन बदलती हुई परिस्थितियों में लोगों की धारणाओं का अध्ययन करने के लिए ही इस विधि का प्रयोग किया जाता है।

3.6 साक्षात्कार के गुण व सीमाएँ

सामाजिक शोध में **साक्षात्कार पद्धति के** निम्नलिखित **गुण** हैं –

1) आँकड़ों के संकलन के लिए साक्षात्कार उत्तम कोटि का शोध उपकरण है।
2) मनोवैज्ञानिक दृष्टि से साक्षात्कार पद्धति अत्यंत महत्वपूर्ण है। साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता दोनों इस प्रक्रिया में एक-दूसरे पर प्रभाव डालते हैं।
3) शोध के लिए गोपनीय आँकड़ों का संकलन करने के संदर्भ में एक साक्षात्कारकर्ता एक व्यक्ति(उत्तरदाता) के आंतरिक जीवन में अधिक अथवा न्यून रूप से कल्पनात्मक ढंग से प्रवेश करता है।
4) साक्षात्कार प्रक्रिया के माध्यम से संकलित आँकड़ों का सत्यापन भी संभव है।
5) साक्षात्कार पद्धति में वर्तमान के अतिरिक्त पूर्व में घटित घटनाओं की जानकारी भी प्राप्त की जा सकती है।
6) सामाजिक घटनाएँ अमूर्त होती हैं और इनके बारे में अध्ययन साक्षात्कार प्रविधि के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है।

साक्षात्कार पद्धति में कुछ **दोष** भी पाए जाते हैं, जो इस प्रकार हैं –

1) प्रश्नोत्तर के लिए स्वतंत्र होने के कारण साक्षात्कारकर्ता व उत्तरदाता का संवाद पक्षपातपूर्ण होना संभव है, जिससे शोध में विश्वसनीयता और वैधता का अभाव आ जाता है।
2) प्रक्रिया लिपिबद्ध न होने के कारण कुछ सूचनाओं के छूट जाने का डर रहता है।
3) साक्षात्कारकर्ता व उत्तरदाता के अलग-अलग पृष्ठभूमि के होने के कारण उनमें घनिष्ठ संबंध स्थापित नहीं हो पाता है, जिसके कारण उपयोगी सूचनाएँ प्राप्त नहीं हो पाती हैं।

4) साक्षात्कार पद्धति में कई बार वास्तविकता की उपेक्षा किए जाने का डर होता है, क्योंकि साक्षात्कारकर्ता प्राप्त सूचनाओं को लिपिबद्ध करने के लिए स्वतंत्र होता है।
5) उत्तरदाता द्वारा अध्ययन के विषय में वैयक्तिक संज्ञान न होने से भी वैध व प्रामाणिक तथ्यों की प्राप्ति नहीं हो पाती है।

3.7 साक्षात्कार के नियम

साक्षात्कार प्रविधि में प्रभावी प्रत्युत्तर प्राप्त करने के लिए निम्नलिखित नियमों का पालन करना आवश्यक है–

1) एक समय पर मात्र एक ही प्रश्न पूछना चाहिए।
2) साक्षात्कारदाता के उत्तर को सावधानीपूर्वक सुनना चाहिए।
3) आवश्यकता पड़ने पर प्रश्न को दोहराया जाए।
4) यदि उत्तरदाता मूल प्रश्न से भटक जाए तो चतुराई और कुशलता का परिचय देते हुए उसे शोध के विषय पर वापस लाना चाहिए।
5) साक्षात्कारदाता को प्रश्नों का उत्तर देने के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए, लेकिन साक्षात्कार के समय को अल्प ही रखना चाहिए।
6) प्रश्नों के उत्तर के संबंधमें सुझाव देनेसे बचना चाहिए।
7) प्रश्नों के अप्रत्याशित उत्तर प्राप्त होने पर आश्चर्यचकित, स्तब्ध, क्रोध आदि भावों को प्रदर्शित नहीं करना चाहिए।
8) यह निश्चित करने का प्रयत्न किया जाना चाहिए कि साक्षात्कारदाता को प्रश्न समझ आ जाए।
9) साक्षात्कारदाता के चेहरे के हाव-भाव और बोलने के ढंग या आवाज पर गंभीरता से ध्यान दिया जाना चाहिए जिससे कि उसकी शरीर भाषा से भी अर्थ निकाले जा सके।
10) साक्षात्कार के मध्य विवादास्पद मुद्दों के संबंधमें तटस्थ भाव या व्यवहार रखना चाहिए।
11) ऐसे उत्तरों पर ध्यान आकृष्ट करना चाहिए जो अस्पष्ट अथवा बहुअर्थी हों।
12) एक असंरचित साक्षात्कार में प्राप्त सूत्रों के विषय में या अतिरिक्त जानकारी प्राप्त करने के लिए अतिरिक्त प्रश्न पूछे जाने चाहिए।

3.8 सारांश

साक्षात्कार एक ऐसी व्यवस्थित प्रक्रिया है जिसमें साक्षात्कारकर्ता एवं उत्तरदाता के मध्य किसी विशिष्ट उद्देश्य के आलोक में परस्पर प्रत्यक्ष रूप से आमने-सामने वार्तालाप अथवा उत्तर-प्रत्युत्तर होता है। यह एक मनोवैज्ञानिक स्थिति है जिसमें साक्षात्कारकर्ता और उत्तरदाता एक-दूसरे के निकट आते हैं तथा मुक्त रूप से सौहार्दपूर्ण वातावरण में स्वतंत्र तरीकेसे विचार-विमर्श करते हैं।

3.9 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : साक्षात्कार क्या है? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 2 : साक्षात्कार के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 3 : साक्षात्कार को परिभाषित करते हुए उसकी विभिन्न विधियों का वर्णन करें।

प्रश्न 4 : साक्षात्कार के प्रमुख नियमों को उल्लेखित करें।

प्रश्न 5 : टिप्पणी लिखिए :

1. सामूहिक साक्षात्कार
2. पुनरावृत्त साक्षात्कार

3.10 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर.* नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस.* यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च, सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क*. वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी*. नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

नेकमिआस डी. एवं नैकमिआस सी. (1981). *रिसर्च मैथड्स इन दी सोशल साइन्सेस*. न्यूयॉर्क : सेन्ट मार्टिन्स प्रेस।

मोसर, सी.ए. एवं कॉल्टन, (1975). *सर्वे मैथड्स इन सोशल इंवेस्टीगशन*. लंदन : हीनमेन एजुकेशनल बुक्स।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च*. लंदन : द फ्री प्रैस।

गैलटंग, जॉन, (1970). *थ्योरी एण्ड मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च.* लंदन: जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन।

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी*. न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च*. एन्जेलवुड क्लिफ, न्यूयॉर्क : प्रेन्टिस हॉल।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

इकाई 4
अवलोकन

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य

4.1 प्रस्तावना

4.2 अवलोकन: अर्थ व परिभाषा

4.3 अवलोकन की विशेषताएँ

4.4 अवलोकन की प्रक्रिया के चरण

4.5 अवलोकन के प्रकार

4.6 अवलोकन के गुण व दोष

4.7 सारांश

4.8 बोध प्रश्न

4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

4.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- अवलोकन के अर्थ, परिभाषा, विशेषता, प्रक्रिया एवं प्रकार से परिचित हो सकेंगे ।
- अवलोकन की समालोचना कर सकेंगे ।

4.1 प्रस्तावना

अवलोकन पद्धति को वैज्ञानिक पद्धति का प्रथम चरण कहा गया है, क्योंकि अवलोकन के आधार पर ही विविध प्रकार के विज्ञानों का विकास हुआ है। अवलोकन को एक ऐसी प्रक्रिया के रूप में बताया जा सकता है, जिसमें एक अथवा उससे अधिक व्यक्ति किसी वास्तविक जीवन की घटना का निरीक्षण करते हैं और संगत घटनाओं को रिकॉर्ड करते हैं। इसका इस्तेमाल नियंत्रित और अनियंत्रित परिस्थितियों में व्यक्तियों द्वारा प्रकट व्यवहार के मूल्यांकन हेतु किया जाता है।

4.2 अवलोकन: अर्थ व परिभाषा

अवलोकन, तथ्यों व घटनाओं के यथार्थ बोध के लिए शोध की मौलिक विधि है।अवलोकन शब्द अंग्रेज़ी भाषा के शब्द 'ओब्जर्वेशन' का हिंदी रूपांतरण है जिसका अर्थ होता है 'देखना' या 'निरीक्षण करना'। किंतु सामाजिक शोध के अंतर्गत अवलोकन का अर्थ है 'तथ्यों के मध्य कार्य-कारण तर्क अथवा उनके पारस्परिक संबंधोंके आधार पर उनका सुव्यवस्थित एवं सूक्ष्म निरीक्षण।

अवलोकन को परिभाषित करते हुए समाज वैज्ञानिकों ने निम्नलिखित परिभाषा दी है :

1. **श्रीमती पी.वी.यंग-** *"अवलोकन आँखों द्वारा विचारपूर्वक किया गया अध्ययन है, जिसे सामूहिक व्यवहार तथा जटिल सामाजिक संस्था के साथ-साथ संपूर्ण का निर्माण करने वाली पृथक इकाइयों के सूक्ष्म निरीक्षण करने की एक प्रणाली के रूप में प्रयोग किया जा सकता है।"*
2. **ऑक्सफोर्ड कंसाइज डिक्शनरी-** *"अवलोकन कारण तथा परिणाम अथवा पारस्परिक संबंधों के संदर्भ में परिशुद्ध निरीक्षण तथा प्रघटना पर ध्यान देना है जैसा वे प्रकृति में घटित होते हैं।"*

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अवलोकन किसी भी सामाजिक घटना के यथार्थ स्वरूप के बारे में संज्ञान विकसित करने की उद्देश्यपूर्ण व सुव्यवस्थितप्रविधि है।

4.3 अवलोकन की विशेषताएँ

अवलोकन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नानुसार हैं –

1) अवलोकन पद्धति प्राथमिक आँकड़ों को संकलित करने की प्रणाली है।
2) यह एक प्रत्यक्ष पद्धति है, जिससे शोधकर्ता अध्ययन की जाने वाली सामग्री से ज़्यादा संपर्क स्थापित करता है।
3) अवलोकन पद्धति में विषय-वस्तु का सूक्ष्म निरीक्षण किया जाता है।
4) अवलोकन प्रविधि में ज्ञानेंद्रियों का पूर्ण उपयोग होता है। यद्यपि अवलोकन में हम सुनने एवं बोलने का भी इस्तेमाल करते हैं परंतु इसमें अधिक महत्व नेत्रों को ही दिया जाता है।
5) यह एक व्यवस्थित तथा जान बूझकर नेत्रों की सहायता से किया जाने वाला निरीक्षण है।
6) इस प्रविधि का इस्तेमाल 'सामूहिक व्यवहार' के अध्ययन के लिए किया जाता है। इस प्रकार से वैयक्तिक अध्ययन विधि के लिए अवलोकन प्रविधि सबसे उत्तम प्रणाली होती है।
7) अवलोकन पद्धति एक विशुद्ध, व्यावहारिक तथा वैज्ञानिक पद्धति है।
8) यह पद्धति उपकल्पना के निर्माण में सहायक की भूमिका वहन करती है।

4.4 अवलोकन की प्रक्रिया के चरण

अवलोकन के लिए एक अच्छी अनुसंधान तकनीक के रूप में दक्ष क्रियान्वयन, उपयुक्त योजना नियोजित करने तथा पर्याप्त रिकॉर्डिंग और व्याख्या की ज़रूरत होती है।

1. अवलोकन के लिए नियोजन

अवलोकन के लिए योजना नियोजित करने में अवलोकन में की जाने वाली विशिष्ट क्रियाओं या व्यवहारों की इकाइयों की, प्रत्येक प्रेषण अवधि की लंबाई निर्धारण करने, व्यक्ति या समूह के अवलोकन के प्रसार, अवलोकन किए जाने वाले व्यक्तियों के समूह की प्रवृत्ति तथा अवलोकन और रिकॉर्डिंग के लिए इस्तेमाल में लाए जाने वाले उपकरणों के संबंधमें निर्णय लेने की परिभाषाएँ शामिल होंगी।

2. अवलोकन का क्रियान्वयन

अवलोकन के कुशल क्रियान्वयन में निम्नलिखित तत्व होने चाहिए –

- अध्ययन किए जाने वाले व्यक्ति या व्यक्तियों के लिए विशेष परिस्थितियों की उपयुक्तव्यवस्था का निर्धारण।
- विशेष गतिविधियों पर या अवलोकन के अंतर्गत आने वाले व्यवहारों की इकाइयों पर फोकस करना।
- अवलोकन करने और तथ्यों की रिकॉर्डिंग के लिए अवलोकन करने वाले के प्रशिक्षण और अनुभवों का प्रभावपूर्ण ढंग से उपयोग करना।
- अवलोकन करने के लिए उपयुक्त भूमिका या स्थान की व्यवस्था निश्चित करना।
- प्रयोग में लाए जाने वाले रिकॉर्डिंग उपकरणों का सही ढंग से रख-रखाव करना।

3. अवलोकनों को रिकॉर्ड करना और उनकी व्याख्या करना

अवलोकन आँकड़ों को रिकॉर्ड कर लिया जाना चाहिए। ऐसा दो तरीकों से किया जा सकता है –

i. पहले तरीके में अवलोकनकर्ता स्वयं द्वारा किए गए अवलोकन में की गई घटना के घटने के साथ-साथ ही रिकॉर्ड करता जाता है।

ii. दूसरे तरीके में अवलोकनक्र्ता अपने अवलोकनों को वास्तविक घटना के घटने के कुछ समय उपरांत, जब घटना संबंधीतथ्य उसके चेतन मन में रहते है, तब रिकार्ड करता/लिखता है।

व्यवहारों को देखने, वर्गीकृत करने और रिकॉर्ड करने में अवलोकनकर्ता को पूरी सावधानी रखनी चाहिए ताकि अवलोकन रिपोर्ट में उसके व्यक्तिगत प्रभाव, पूर्वाग्रह, अभिवृत्तियाँ और मान्यताएँ न आने पाएँ।

4.5 अवलोकन के प्रकार

अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अवलोकन को निम्नानुसार विभाजित किया जा सकता है –

अवलोकन

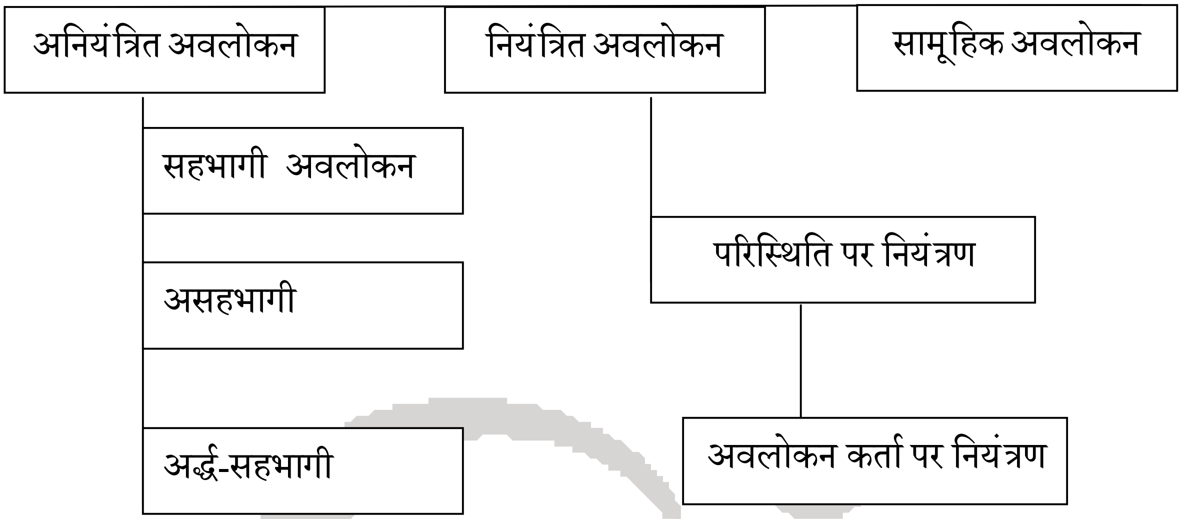

क) अनियंत्रित या अनिदेशित अवलोकन (Uncontrolled Observation)

सामाजिक घटनाओं का अध्ययन करने के लिए अनियंत्रित अवलोकन की पद्धति अत्यंत महत्वपूर्ण है। इस अवलोकन में लोगों पर किसी प्रकार का कोई नियंत्रण नहीं होता है। दूसरे शब्दों में, प्राकृतिक पर्यावरण एवं अवस्था में किन्ही क्रियाओं का निरीक्षण किया जाता है, साथ ही क्रियाएं किसी भी बाह्य शक्ति द्वारा संचालित एवं प्रभावित नहीं की जाती है तो इस प्रकार का निरीक्षण को अनियंत्रित अवलोकन कहा जाता है।

श्रीमती पी.वी.यंग- *"अनियंत्रित अवलोकन में हम वास्तविक जीवन की परिस्थितियों का सावधानी से अध्ययन करते हैं तथा इसमें हम किसी शुद्ध यंत्र का प्रयोग नहीं करते हैं और उस घटना की शुद्धता की जाँच का प्रयत्न भी नहीं करते हैं।"*

इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकन की जाने वाली घटना पर बिना प्रभाव डाले, उसे स्वाभाविक रूप में देखने का प्रयत्न किया जाता है इसलिए **गुडे एवं हॉट** इसे 'साधारण अवलोकन' कहते हैं। जहोदा एवं कुक इसे 'असंरचित अवलोकन' का नाम देते हैं। समाज विज्ञानों में इसे 'स्वतंत्र अवलोकन', 'अनौपचारिक अवलोकन' तथा 'अनिश्चित अवलोकन' के नाम से भी जाना जाता है।

इसकी विशेषताओं को निम्नानुसार व्यक्त किया जा सकता है –

1) यह अत्यन्त सरल एवं लोकप्रिय विधि है।
2) घटना की स्वाभाविक परिस्थिति में अध्ययन किया जाता है।
3) अवलोकनकर्ता पर किसी भी प्रकार का नियंत्रण नहीं लगाया जाता है।

4) अध्ययन की जाने वाली घटना पर भी कोई नियंत्रण नहीं लगाया जाता है।

अनियंत्रित अवलोकन के **तीन** प्रकार होते हैं-

1) सहभागी अवलोकन

सहभागी अवलोकन के अंतर्गत शोधकर्ता उस घटना का अंग बन जाता है जिसका वह अवलोकन कर रहा होता है। यहाँ प्रारंभिक शर्त यह है कि अवलोकनकर्ता को अध्ययन क्षेत्र के लोगों द्वारा एक सहभागी के रूप में स्वीकार कर लिया जाए। श्रीमती पी. वी.यंग के अनुसार सहभागिता मुख्यरूप से *तीन* बातों पर निर्भर करती है–

- अध्ययन की प्रकृति पर
- समूह की परिस्थिति पर (वह किस सीमा तक सहभागी होने में साथ देती है)
- अवलोकनकर्ता की भूमिका निर्धारण पर (वह किस भूमिका में है)

अवलोकनकर्ता द्वारा स्वीकार करने वाली भूमिका कैसी होनी चाहिए, यह अध्ययन समूह के स्वरूप और शोध के केंद्र बिंदु पर निर्भर करता है। साधारणतः सहभागी अवलोकन में यह सवाल अक्सर उठता है कि अवलोकनकर्ता द्वारा अपने अध्ययन के उद्देश्य को समूह को बताना चाहिए अथवा नहीं। दरअसल यह भी कई कारकों पर निर्भर करता है –

- अध्ययन की प्रकृति पर
- नैतिकता की दृष्टि से यह कहाँ तक न्यायसंगत है
- समूह की परिस्थिति पर

2) असहभागी अवलोकन

असहभागी अवलोकन में अवलोकनकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समूह के मध्य उपस्थित तो रहता है, परंतु केवल तटस्थ दर्शक के रूप में। वह स्वयं उस घटना का अंश नहीं बनता, जिसका कि वह अवलोकन कर रहा होता है। इस प्रकार के अवलोकन में अवलोकनकर्ता समूह का न तो स्थाई सदस्य बनता है और ना ही उनकी किसी भी क्रिया में भागीदारी करता है। दूर से ही जो कुछ भी वह निरीक्षण कर पाता है उसी के आधार पर गहन व गूढ जानकारी प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार से निष्पक्ष और स्वतंत्रतापूर्वक अध्ययन इस प्रविधि की प्रमुख विशेषताएं है।

3) अर्द्धसहभागी अवलोकन

सहभागी और असहभागी अवलोकनों की सीमाओं के कारण गुडे एवं हॉट ने इन दोनों के मध्य के मार्ग को अपनाने का सुझाव प्रस्तुत किया, जिसे अर्द्धसहभागी अवलोकन के नाम से जाना जाता है। गुडे एवं हॉट के अनुसार, *"दोनों भूमिकाओं (सहभागी तथा असहभागी) को कार्यान्वित करना स्वयं पूर्णरूपेण प्रछन्न रूप से प्रयत्न करने की अपेक्षा सरलतर है।"*

इस प्रकार के निरीक्षण में शोधकर्ता अध्ययन किए जाने वाले समुदाय के कुछ साधारण से कार्यों में भागीदारी भी करता है, यद्यपि अधिकांशतः वह तटस्थ द्रष्टा की भाँति बाहर से ही निरीक्षण करता है। इस अवलोकन में सहभागी और असहभागी अवलोकन दोनों के लाभ प्राप्त होने की संभावना बनी रहती है।

ख) नियंत्रित अवलोकन (Controlled Observation)

अनियंत्रित अवलोकन में पाई जाने वाली खामियों जैसे-विश्वसनीयता एवं तटस्थता का अभाव आदि ने ही नियंत्रित अवलोकन को आधारशिला प्रदान की है। इसमें अवलोकन की जाने वाली घटना/समस्या/ परिस्थिति पर नियंत्रण किया जाता है। अवलोकन संबंधी योजनाएँ पहले ही तैयार कर ली जाती है, जिसके अंतर्गत चयनित प्रक्रिया एवं साधनों की सहायता से तथ्यों का संकलन किया जाता है। इस अवलोकन में दो प्रकार से नियंत्रण किया जाता है –

1. **सामाजिक घटना पर नियंत्रण** –जिस प्रकार प्राकृतिक विज्ञानों में प्रयोगशाला में परिस्थितियों को नियंत्रित करके उनका अध्ययन किया जाता है, उसी प्रकार इस प्रविधि के अंतर्गत समाज वैज्ञानिक भी सामाजिक घटनाओं अथवा परिस्थितियों कोनियंत्रित करके उनका अध्ययन करता है। तथापि, मानवीय व्यवहारों और सामाजिक घटनाओं को नियंत्रित करना अत्यंत दुष्कर कार्य होता है।
2. **अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण** – इस प्रविधि में घटना पर नियंत्रण न रखकर अवलोकनकर्ता पर नियंत्रण रखा जाता है। यह नियंत्रण कुछ साधनों द्वारा किया जाता है यथा- अवलोकन अनुसूची, अवलोकन की विस्तृत पूर्व योजना, कैमरा, मानचित्रों, विस्तृत क्षेत्रीय नोट्स व डायरी, टेप रिकार्डर इत्यादि।

ग) सामूहिक अवलोकन

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि सामूहिक अवलोकन में अवलोकन का कार्य कई व्यक्तियों द्वारा संपन्न किया जाता है। इसमें अध्ययन की जाने वाली घटना के विभिन्न पक्षों का एकाधिक विषय-विशेषज्ञों द्वारा अवलोकन किया जाता है। इन सभी अवलोकनकर्ताओं में कार्य का बँटवारा कर दिया जाता है और उनके कार्यों का समन्वय एक केंद्रीय संगठन द्वारा किया जाता है।

1944 में जमैका में स्थानीय दशाओं के अध्ययन हेतु इस विधि का प्रयोग किया गया था। सामूहिक अवलोकन का प्रयोग 1984 में इंग्लैण्ड में वहाँ के निवासियों के जीवन, स्वभाव व विचारों के अध्ययन हेतु भी किया गया था। इस प्रविधि में अधिक व्यय के साथ-साथ कुशल प्रशासन की भी आवश्यकता होती है। इसी कारण इस विधि का प्रयोग व्यक्तिगत के बजाय सरकारी या अर्द्ध-सरकारी संस्थानों द्वारा ही अधिक मात्रा में किया जाता है।

4.6 अवलोकन के गुण व दोष

अध्ययन की सुगमता हेतु अवलोकन प्रविधि के महत्वपूर्ण **गुणों** को निम्नानुसार वर्णित किया जा सकता है –

1) अवलोकन अत्यंत सरल व स्वाभाविक प्रविधि है।
2) यह प्रारंभिक अध्ययन प्रविधि है।
3) इसकी सहायता से प्रत्यक्ष तौर पर अध्ययन समूह का अध्ययन किया जा सकता है।
4) इस प्रविधि से संकलित आँकड़ें अन्य प्रविधियों की तुलना में अधिक यथार्थ व विश्वसनीय होते हैं।
5) अवलोकन उपकल्पनाओं के निर्माण व उनके परीक्षण में सहायक प्रविधि है।
6) अवलोकन प्रविधि वैषयिक अध्ययन में सहायक होती है।
7) इसकी सहायता से प्राप्त तथ्यों की जाँच व सत्यापनशीलता संभव है।
8) अवलोकन विधि द्वारा गहन, सूक्ष्म व विस्तृत सूचनाएँ एकत्र करने में मदद मिलती है।

विवेचनागत अध्ययन की सुगमता हेतु यहाँ इसकेकुछ **दोष/परिसीमाओं** को प्रस्तुत किया जा रहा है –

1) अवलोकन प्रविधि के अंतर्गत अभिनति की संभावना बनी रहती है और यह दो रूपों से हो सकती है –
    - जब अवलोकनकर्ता अवलोकन करता है तो उसके मनोवैज्ञानिक विचार उसके अवलोकन की विश्वसनीयता को प्रभावित कर सकते हैं।
    - लोगों को आभास हो जाने पर कि उनका अवलोकन किया जा रहा है, वे जान बूझकर विशिष्ट प्रकार के व्यवहार व मुद्रा बनाने लगते हैं।
2) समाज में कुछ ऐसी परिस्थितियाँ हैं जिनका अवलोकन किया जाना संभव नहीं है, जैसे- पति-पत्नी के संबंध, पारिवारिक कलह आदि।
3) कुछ घटनाएँ उस समय घटित हो जाती हैं जब अवलोकनकर्ता समूह में अनुपस्थित हो।
4) यह प्रविधि पूर्णतः ज्ञानेंद्रियों पर आधारित है परंतु कभी-कभी ज्ञानेंद्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान भी भ्रमपूर्ण हो सकता है।
5) इसका प्रयोग लघु क्षेत्र में ही किया जा सकता है।
6) इसमें अत्यधिक समय व धन खर्च होता है।

4.7 सारांश

अवलोकन सामाजिक शोध की एक वैज्ञानिक प्रणाली है जिसमें शोधकर्ता और उत्तरदाता के मध्य आमने-सामने का प्रत्यक्ष संबंध स्थापित होता है। इसमें अवलोकनकर्ताज्ञानेंद्रियों के प्रयोग से सूचनाओं

को संकलित करने का प्रयास करता है। अवलोकन की सहायता से संकलित सूचनाएँ अपेक्षाकृत अधिक विश्वसनीय और प्रामाणिक होती हैं।

4.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 1 : अवलोकन क्या है? इसकी विशेषताओं पर प्रकाश डालें।

प्रश्न 2 : अवलोकन के विभिन्न प्रकारों का वर्णन करें।

प्रश्न 3 : सहभागी अवलोकन को परिभाषित करते हुए उसके विभिन्न विधियों का वर्णन करें।

प्रश्न 4 : टिप्पणी लिखिए :

1. सामूहिक अवलोकन 2 नियंत्रित अवलोकन

4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

कुमार, आर. (2014). *रिसर्च मैथडोलॉजी : ए स्टेप वाइ स्टेप गाइड टू विग्नर*. नयी दिल्ली : सेज।

आहूजा, आर. (2014). *रिसर्च मैथड्स*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

भट्टाचार्यजी, ए. (2012). *सोशल साइंस रिसर्च : प्रिंसिपल, मैथड्स एंड प्रैक्टिस*. यूएसएफ टैम्पा वे ओपन ऐक्सेस टैक्स्टबुक कलैक्सन. बुक :3.

लाल दास, डी.के., (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च. सोशल वर्क पर्सपेक्टिव्स*, जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स।

रूबिन, ए एवं बेबी ई. (1989). *रिसर्च मैथडोलॉजी फॉर सोशल वर्क*. वेलमोन्ट कैलीफोर्निया: वैड्सवर्थ।

बेकर, एल थेरसे, (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी*. नई दिल्ली : विश्व प्रकाशन।

नेकमिआस डी. एवं नैकमिआस सी. (1981). *रिसर्च मैथड्स इन दी सोशल साइन्सेस*. न्यूयॉर्क : सेन्ट मार्टिन्स प्रेस।

मोसर, सी.ए. एवं कॉल्टन, (1975). *सर्वे मैथड्स इन सोशल इंवेस्टीगेशन*. लंदन : हीनमेन एजुकेशनल बुक्स।

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च*. लंदन : द फ्री प्रैस।

गैलटंग, जॉन, (1970). *थ्योरी एण्ड मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च*, लंदन: जॉर्ज एलेन एण्ड अनविन।

बोगार्डस, इ.एस. (1954). *सोशियोलॉजी*. न्यूयॉर्क : द मैकमिलन कार्पोरेशन।

यंग, पी.वी. (1953). *साइन्टिफिक सोशल सर्विस एण्ड रिसर्च*, एन्जेलवुड क्लिफ. न्यूयॉर्क : प्रेन्टिस हॉल।

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क : मैकग्रा हिल।

खंड 4

विश्लेषण प्रविधि

इकाई 1
विश्लेषण विधि

इकाई की रूपरेखा

1.0 उद्देश्य

1.1 प्रस्तावना

1.2 तथ्यों का विश्लेषण

1.3 विश्लेषण की आवश्यकता

1.4 विश्लेषण के लिए आवश्यक तैयारियाँ

1.5 विश्लेषण हेतु पूर्व-आवश्यकताएँ

1.6 विश्लेषण की प्रक्रिया

1.7 सारांश

1.8 बोध प्रश्न

1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

1.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप -

- तथ्यों के विश्लेषण के बारे में जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- विश्लेषण हेतु आवश्यक तैयारियों को स्पष्ट कर सकेंगे।
- विश्लेषण की प्रक्रिया का वर्णन कर सकेंगे।

ज्ञान शांति मैत्री

1.1 प्रस्तावना

किसी भी सामाजिक शोध की मूल बुनियाद उसकी वैज्ञानिकता को माना जाता है। वैज्ञानिक आधारों पर समाजकार्य शोध में भी तथ्यों को विभिन्न प्रविधियों और तकनीकों के माध्यम से संकलित किया जाता है। इन संग्रहीत तथ्यों के आधार पर ही शोध में निष्कर्ष प्रतिपादित किया जाता है और इसके लिए यह अत्यंत आवश्यक है कि उन तथ्यों का विश्लेषण किया जाए। तथ्यों के विश्लेषण के पश्चात उन्हें समझना और अभिव्यक्त करना सरल हो जाता है, जिससे समाज कार्य शोधकर्ता समस्या को पूरी तरह समझ पाता है तथा उसके निवारण हेतु कुछ सुझावों को प्रस्तुत कर पाता है। मोटे तौर पर यह एक ऐसी प्रक्रिया होती है जो तथ्यों अथवा सूचनाओं और निष्कर्ष के बीच मध्यस्थता का काम करती है और साथ ही उन्हें व्यवस्थित और स्पष्ट रूप प्रदान करती है।

1.2 तथ्यों का विश्लेषण

प्राकृतिक विज्ञानों के समान ही सामाजिक विज्ञान में भी यह आवश्यक है कि तथ्यों अथवा सूचनाओं का संकलन किया जाए और और उन्हें व्यवस्थित तथा विश्लेषित किया जाए, जिससे उनके बारे में संज्ञान लिया जा सके। तथ्यों का विश्लेषण स्पष्ट और व्यवस्थित तरीके से हो जाने से उन्हें समझना और यथार्थ ज्ञान को प्राप्त कर पाना सरल हो जाता है । विश्लेषण का कार्य विचारपूर्ण आधारशिला को स्थापित करना है, जिसके आधार पर इकट्ठा किए गए आँकड़ों को उनके उचित स्वरूप और संबंध के रूप में व्यवस्थित किया जा सके। शोधकर्ता को जब तथ्य प्राप्त होते हैं तब वे बिखरे हुए और अर्थहीन स्वरूप में होते हैं। शोधकर्ता द्वारा उन तथ्यों का सारणीकरण और वर्गीकरण किया जाता है। सारणीबद्ध तथ्यों को तार्किक और सांख्यिकीय दोनों प्रकार से विविध प्रविधियों और तकनीकों की सहायता से विश्लेषित किया जाता है। इस प्रकार विश्लेषण के आधार पर परिणाम को प्राप्त किया जाता है तथा उस परिणाम को अन्य अध्ययनों के परिणामों के संदर्भ में रखकर देखा जाता है। इस संपूर्ण क्रिया के सापेक्ष गुणों और सीमाओं को स्पष्ट करते हुए शोधकर्ता किसी निष्कर्ष पर पहुँच पाता है।

- **प्वयेनकेयर** के अनुसार, *"जिस प्रकार एक मकान पत्थरों से बनता है, उसी प्रकार विज्ञान का निर्माण तथ्यों से होता है। परंतु केवल तथ्यों का एक संकलनउसी तरह विज्ञान नहीं है जैसे पत्थरों का एक ढेर मकान नहीं है।"*
- **पी.वी. यंग** के अनुसार, *"एक सामाजिक अध्ययनकर्ता यह मानकर चलता है कि संकलित तथ्यों के पीछे स्वयं तथ्यों और आँकड़ों से बढ़कर भी कोई ऐसी वस्तु है जो अधिक महत्वपूर्ण तथा स्थिति पर फोकस करने वाली है। वह यह मानकर चलता है कि यदि सुव्यवस्थित और सुविचारित तथ्यों को संकलित आँक्ड़ों के संदर्भ में देखा जाए, तो उनके महत्वपूर्ण सामान्य अर्थ को समझकर उनके आधार पर वैध सामान्यीकरण प्राप्त किया जा सकता है। अतः यह कहा जा सकता हैं कि तथ्यों का विश्लेषण इसी प्रकार के वैध अथवा वैज्ञानिक सामान्यीकरण को प्राप्त करने की एक कार्य-विधि है।"*

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं से यह स्पष्ट हो रहा है कि विश्लेषण कीसंपूर्णप्रक्रिया का शोध के क्षेत्र में कितना महत्वपूर्ण योगदान है। तथ्यों से किसी निष्कर्ष की प्राप्ति के लिए उनका विश्लेषण करना अत्यंत आवश्यक होता है।

1.3 विश्लेषण की आवश्यकता

तथ्यों के विश्लेषण के बिना शोध कार्य स्वयं में अधूरी प्रक्रिया है। पीवी.यंग द्वारा वैज्ञानिक विश्लेषण को 'शोध का रचनात्मक पक्ष' माना गया है। अधिकांश समाज विज्ञानी इसे पूर्ण रूप से शोधकर्ता की रचनात्मकता और कुशलता से संदर्भित करते हैं और उनका मानना है कि शोध की गुणवत्ता और वैधता

की निर्मिति के लिए वैज्ञानिक विश्लेषण आवश्यक चरण होता है। सामाजिक शोधकर्ता किसी भी तर्क अथवा घटना को स्वयं सिद्ध नहीं मानता है, अपितु वह संकलित तथ्यों, स्थापित व पूर्व के आदर्शों और सामाजिक दर्शन को अधिक विश्वसनीय मानता है। इस दृष्टि से उसे किसी भी निष्कर्ष को प्रतिपादित अथवा प्रस्तुत करने से पूर्व संकलित किए गए तथ्यों का सावधानीपूर्वक परीक्षण(कभी-कभी पुनर्परीक्षण) करना आवश्यक होता है। इस प्रकार से ही एक शोधकर्ता समस्या का निवारण, ज्ञान में वृद्धि, अवधारणाओं की निर्मिति, संशोधन अथवा उसके अस्तित्व को चुनौती आदि कार्यों में संलिप्त हो पाता है। इसके अलावा शोधकर्ता तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर स्वयं की एक अंतर्दृष्टि को विकसित करता है जिसके आधार पर वह सिद्धांतों/अवधारणाओं का पुनर्परीक्षणकरता है।

पी.वी.यंग के अनुसार, *"क्रमबद्ध विश्लेषण का कार्य एक ठोस बौद्धिक 'भवन' का निर्माण करना है, जो कि संकलित तथ्यों को उनके उचित स्थान तथा संबंधोंमें प्रस्थापित करने में सहायक हो, जिससे उनसे सामान्य निष्कर्षों को प्राप्त किया जा सके।"*

यंग के इस कथन से स्पष्ट होता है कि तथ्यों के विश्लेषण के बिना किसी भी समस्या अथवा घटना के कार्य-कारण संबंधों की व्याख्या करना संभव नहीं है और न ही यथार्थ ज्ञान की प्राप्ति संभव है। वैज्ञानिक नियमों की निर्मिति और वैधानिकता का निर्धारण तथ्यों के विश्लेषण के आधार पर ही किया जा सकता है। पूर्व के सिद्धांतों और अवधारणाओं के परीक्षण और उनकी प्रासंगिकता पर सवालिया निशान लगाने की दृष्टि से भी संकलित तथ्यों का विश्लेषण महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वहन करता है।

1.4 विश्लेषण के लिए आवश्यक तैयारियाँ

जैसा कि इस इकाई में पहले भी कहा जा चुका है कि शोध की गुणवत्ता की दृष्टि से और निष्कर्ष की वैधता के लिए विश्लेषण एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया है। अतः विश्लेषण का कार्य सुचारु रूप सेसंपन्न किया जा सके, इसके लिए कुछ आवश्यक तैयारी कर लेना आवश्यक होता है। इसके लिए सबसे पहले संकलित किए गए तथ्यों की बुनियादीकमियों को दूर कर लिया जाता है और तथ्यों को सारणीबद्ध तथा वर्गीकृत करके एक संगठित स्वरूप प्रदान कर दिया जाता है। इसके लिए मूल रूप से निम्नबिंदुओंपर ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता होती है–

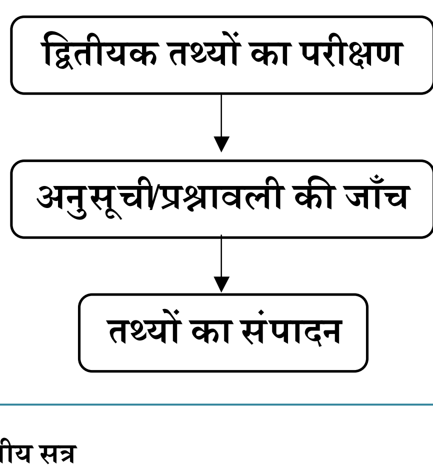

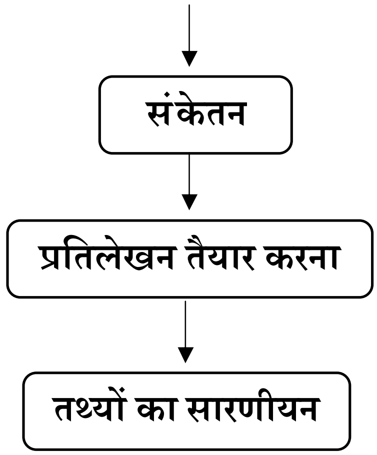

1. द्वितीयक तथ्यों का परीक्षण

विश्लेषण यथार्थ तरीके से किया जा सके इसके लिए आवश्यक है कि पहले ही यह संज्ञान कर लिया जाए कि जिन द्वितीयक तथ्यों का संकलन किया गया है, वे उपयुक्त, विश्वसनीय और पर्याप्त हैं अथवा नहीं। उन तथ्यों की विश्वसनीयता को जाँचने के लिए यह पता करना आवश्यक होता है कि वे तथ्य जिस किसी संस्था अथवा व्यक्ति के द्वारा संकलित किए गए हैं वह कहाँ तक विश्वसनीय हैं। साथ ही जिन प्रविधियों और तकनीकों की सहायता से उन तथ्यों का संकलन किया गया है, वे वैज्ञानिक नियमों के अनुरूप हैं अथवा नहीं। यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि उन तथ्यों का संकलन किन परिस्थितियों और दशाओं में किया गया है। यदि प्रतिकूल परिस्थितियों में तथ्यों को संकलित किया गया है तो विश्लेषण सटीक और उचित नहीं होगा। इसके अलावा तथ्य संकलन के दौरान शोधकर्ता के पक्षपात और पूर्वाग्रह से ग्रसित होने की भावना का संज्ञान कर लेना भी आवश्यक होता है।

2. अनुसूची/प्रश्नावली की जाँच

शोधकर्ता द्वारा अध्ययन क्षेत्र में जाने से पहले ही अनुसूची अथवा प्रश्नावली को जाँच लेना उचित होता है। इसमें उसे यह ध्यान देने की आवश्यकता होती है कि कहीं कोई ऐसा प्रश्न छूट तो नहीं रहा है जो संबंधित शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो। इसके अलावा सभी प्रश्नों को बारीकी से देख लेना आवश्यक होता है कि कहीं कोई पृष्ठ गायब तो नहीं है अथवा कोई प्रश्न अपूर्ण तो नहीं रह गया है।

3. तथ्यों का संपादन

अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त तथ्यों को सही ढंग से संपादित करना भी आवश्यक होता है। यहसंपूर्णप्रक्रिया तीन प्रकार के कार्यों को संपन्न करती है। *पहला* शोधकर्ता द्वारा सभी तथ्यों को एक क्रम प्रदान किया जाता है। इस प्रकार यह पता चल जाता है कि कौन-सी सूचनाएँ प्राप्त हुई हैं और कौन-सी बाकी रह गई है। *दूसरा* शोधकर्ता को यह भी ध्यान देने की आवश्यकता होती है कि वह सभी उत्तरों की जाँच कर ले। कई बार ऐसा होता है कि प्रश्न के उत्तर दूसरे कॉलम में भरदिए गए होते हैं अथवा कॉलम खाली रह जाते हैं अथवा

गलत उत्तर भर दिए गए होते हैं अथवा जोड़ने-घटाने में कोई त्रुटि रह जाती है। अतः उत्तरों की जाँच करके इन आधारगत अशुद्धियों से बचा जा सकता है। *तीसरा* शोधकर्ता का कार्य अनावश्यक तथ्यों को शोध से हटा देना भी होता है। इस प्रकार से केवल वांछित और आवश्यक तथ्य ही विश्लेषण के लिए बचे रह जाएंगे तथा उनका विश्लेषण सरलता, सुगमता और प्रभावी तरीके से संभव हो सकता है।

4. संकेतन

तथ्यों को वर्गीकृत करने के पश्चात उत्तरों का संख्यात्मक विवेचन प्रस्तुत करने के लिए उनका संकेतन करना आवश्यक होता है। इसमें वर्णनात्मक उत्तरों को संकेतों के प्रतीक के रूप में अभिव्यक्त किया जाता है। इस आधार पर लाभ यह होता है कि बड़े-बड़े उत्तरों को किसी संख्या (यथा- 1,2,3,4,…)के आधार पर निर्धारित कर दिया जाता है और उन्हीं के संदर्भ में विवेचन कार्य किया जाता है। इसके कारण समय की काफी बचत हो जाती है और विश्लेषण कार्य में भी सरलता व सहूलियत रहती है।

5. प्रतिलेखन तैयार करना

अनुसूची/प्रश्नावली के आधार पर प्राप्त उत्तरों के संकेतन के पश्चात उनका रिकार्ड कंप्यूटर में रख लेना उचित होता है। इस दृष्टि से उनका प्रलेखन तैयार किया जाता है। यह कार्य शोधकर्ता CATI/SPSS/CAPI जैसे कई सॉफ्टवेयरों की मदद से करता है और उन्हें संचित करके भविष्य के लिए रख लेता है।

6. तथ्यों का सारणीयन

गणनात्मक तथ्यों का व्यवस्थित और वैज्ञानिक तरीके से किसी सारणी अथवा तालिका के अंतर्गत सूचीबद्ध करने की प्रक्रिया ही सारणीयन है। इसके अंतर्गत विस्तृत तथ्यों को संक्षिप्त रूप से अभिव्यक्त करने का प्रयास किया जाता है और कंप्यूटर के माध्यम से यह कार्य बेहद आसान हो चुका है। साथ ही इससे प्रस्तुतीकरण में भी स्पष्टता बनी रहती है।

1.5 विश्लेषण हेतु पूर्व-आवश्यकताएँ

तथ्यों का विश्लेषण एक वैज्ञानिक प्रक्रिया है, परंतु इसकी वैज्ञानिकता के साथ न्याय करने के लिए यह आवश्यक है कि शोधकर्ता, शोध की नैतिकता के अनुरूप कार्यों को संपन्न करे। शोधकर्ता द्वारा तथ्यों का व्यवस्थित रूप से विश्लेषण तभी किया जा सकता है जब कुछ आवश्यक शर्तों को पूरा करे। विश्लेषण के लिए आवश्यक शर्तें/ पूर्व आवश्यकताएँ निम्नलिखित हैं–

1. तथ्यों के संबंध में पूर्ण जानकारी

तथ्यों के बारे में व्यवस्थित विश्लेषण प्रस्तुत करने हेतुप्रमुख शर्त यह है कि शोधकर्ता को तथ्यों के बारे में पूर्ण व यथार्थ जानकारी प्राप्त होनी चाहिए। यदि उसे तथ्यों के बारे में पूर्ण संज्ञान प्राप्त हो तो वह उनका विश्लेषण सरलता और प्रभावी तरीके से कर पाने में सक्षम हो सकेगा।

2. घटनाओं के बारे में अंतर्दृष्टि

शोधकर्ता द्वारा अनेक तथ्यों का संकलन कार्य संपन्न किया जाता है, लेकिन विश्लेषण के दौरान वह अनेक घटनाओं और परिस्थितियों व दशाओं का स्वयं ही अवलोकन करता रहता है। इन घटनाओं तथा परिस्थितियों व दशाओं के बारे में शोधकर्ता की अंतर्दृष्टि जितनी ही गहरी और स्पष्ट होती है विश्लेषण में उतनी ही वैज्ञानिकता का समावेश होता है।

3. आलोचनात्मक कल्पनाशक्ति

विश्लेषण का तात्पर्य उनके वर्गीकरण और विवेचन के इतर विभिन्न तथ्यों के मध्य पाए जाने वाले सह-संबंधों का स्पष्टीकरण भी होता है। इस स्पष्टीकरण के लिए यह अत्यंत आवश्यकहै कि शोधकर्ता में आलोचनात्मक कल्पनाशक्ति हो।

4. ज़िम्मेदारी, अनुभव और बौद्धिक ईमानदारी

तथ्यों का विश्लेषण कार्य संपूर्ण शोध की प्रक्रिया की गुणवत्ता और उसकी वैधानिकता की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य होता है तथा इसके लिए वैज्ञानिक कार्यविधि निर्धारित नियमों का पालन आवश्यकहोता है। इसके लिए एक शोधकर्ता में ज़िम्मेदारी/उत्तरदायित्व,अनुभव और बौद्धिक ईमानदारी का गुण होना अति आवश्यक होता है तथा वह इन्हीं आधारों पर नियमों का पालन दृढ़ता से कर पाता है।

5. पक्षपात रहित

जैसा कि ऊपर भी बताया जा चुका है कि तथ्यों के विश्लेषण के लिए यह आवश्यक है कि वैज्ञानिक नियमों के अनुरूप ही विश्लेषण की प्रक्रिया की जानी चाहिए। इसका स्पष्ट आशय शोधकर्ता द्वारा तथ्यों के विश्लेषण में पक्षपात अथवा अभिनति की भावना से दूर रहने से है।

1.6 विश्लेषण की प्रक्रिया

तथ्यों के विश्लेषण हेतु शोधकर्ता को एक प्रक्रिया का अनुशीलन/पालन करना पड़ता है। पी.वी.यंग द्वारा तथ्यों के विश्लेषण की प्रक्रिया का क्रम कुछ इस प्रकार प्रस्तुत किया है–

1. तथ्यों की माप

इसका अभिप्राय तथ्यों की पुनर्परीक्षा करने से है। चूँकि तथ्यों के विश्लेषण का प्रमुख प्रयोजन संकलित किए गए तथ्यों को अर्थपूर्ण स्वरूप प्रदान कर निष्कर्ष हेतु उपयोगी बनाना होता है। शोधकर्ता को निम्नलिखित बिंदुओंकी तलाश करने की आवश्यकता होती है–

- संकलित तथ्य पर्याप्त वैषयिक व अपनी परिस्थिति के वास्तविक प्रतिनिधि हैं अथवा नहीं।
- तथ्यों का परीक्षण और पुनर्परीक्षण संभव है अथवा नहीं।
- तथ्यों को वस्तुनिष्ठ स्वरूप प्रदान किया जा सकता है अथवा नहीं।
- तथ्य माप के योग्य हैं अथवा नहीं।

- वे क्रमबद्धता सिद्धांत के लिए महत्वपूर्ण हैं अथवा नहीं।
- इनकी सहायता से एक सामान्यीकृत निष्कर्ष को प्रतिपादित किया जा सकता है अथवा नहीं।

2. रूपरेखा का निर्माण

रूपरेखा अध्ययन की एक संरचना होती है जिस परसंपूर्णअध्ययन आधारित होता है। रूपरेखा को तैयार करने की दृष्टि से आवश्यक है कि तथ्यों के बारे में गहनता से संज्ञान कर लिया जाए। विस्तृत विश्लेषण के लिए यह नितांत आवश्यक है कि संकलित तथ्यों में से अधिक तथ्यों को फिर से दोहरा लिया जाए, जिससे अध्ययन की संपूर्णपरिस्थिति व दशा का सटीक ज्ञान प्राप्त हो जाए। साथ ही निम्नलिखित बिंदुओं पर ध्यान आकृष्ट करने की भी आवश्यकता है–

- वे कौन-सी महत्वपूर्ण परिस्थितियाँ हैं जिनके बारे में संज्ञान इन तथ्यों की सहायता से होता है?
- संकलित तथ्यों में कौन-सी उल्लेखनीय समानताएँ और भिन्नताएँ निहित हैं?
- तथ्य किन सामाजिक प्रक्रियाओं की ओर इंगित करते हैं?
- संकलित तथ्य किस प्रकार के अनुक्रम को प्रस्तुत करते हैं?
- इन परिस्थितियों में किस प्रकार के कार्य-कारण संबंध स्पष्ट होते हैं?
- इन तथ्यों से किस प्रकार के निष्कर्ष प्रतिपादित किए जा सकते हैं?

3. तथ्यों का व्यवस्थित वर्गीकरण

एक मार्गदर्शक के रूप में संकलित तथ्यों की रूपरेखा के निर्माण कर लेने के पश्चात उसके व्यवस्थित वर्गीकरण की आवश्यकता होती है। तथ्यों के वर्गीकरण के पश्चात यथार्थ ज्ञान स्पष्ट होने लगता है। सामाजिक विज्ञानों में वर्गीकरण की प्रक्रिया बेहद महत्वपूर्ण मानी जाती है। इसका एक कारण यह भी है कि सामाजिक घटनाएँ अथवा समस्याएँ कई कारकों से प्रभावित होती हैं तथा उनमें अनेक विविधताएँ भी पाई जाती हैं। तथ्यों के वर्गीकरण के पश्चात सभी कारक स्पष्ट तौर पर उभरकर सामने परिलक्षित होने लगते हैं।

4. अवधारणाओं का निर्माण

संपूर्ण परिस्थिति अथवा दशा की अवधारणात्मक व्याख्या करने के उद्देश्य से तथ्यों के वर्गीकरण के पश्चात अवधारणाओं का निर्माण आवश्यक हो जाता है। अवधारणात्मक भाषा के प्रयोग सेसंपूर्ण परिस्थिति को कम ही शब्दों में अभिव्यक्त किए जाने का लाभ मिलता है। विभिन्न विद्वानों द्वारा अवधारणाओं के निर्माण हेतु प्रमुख रूप से **चार कसौटियाँ** प्रस्तुत की गई हैं–

- शब्द सटीक होने चाहिए। साथ ही शब्द का परिस्थितियों अथवा दशाओं के अनुरूप स्पष्ट और सटीक अर्थ प्रकट होना चाहिए।
- वह शब्द परिणाम विचार अथवा अंतिम विचार को प्रकट करता हो।

- शब्द इतना सामान्य होना चाहिए कि संपूर्ण अध्ययन में जहाँ कहीं भी उस शब्द का प्रयोग किया गया हो, वह प्रत्येक स्थान पर एक ही अर्थ को स्पष्ट करता हो।
- उसके द्वारा प्रस्तुत किए गए विचार बुनियादी तौर पर अपने विशिष्टक्षेत्र में महत्वपूर्ण होने चाहिए।

5. तुलना और व्याख्या

संकलित तथ्यों के वर्गीकरण और अवधारणाओं के निर्माण पश्चात तथ्यों में काफी स्पष्टता हो जाती है तथा उनके प्रतिमान भी प्रत्यक्ष रूप से प्रतीत होने लगते हैं। इन प्रतिमानों की तुलना करना एक शोधकर्ता के लिए सरल व संभव हो जाता है। किसी वैज्ञानिक शोध में वैध निष्कर्ष के लिए तुलनात्मक विश्लेषण नितांत आवश्यक होता है। इससे न केवल विभिन्न तथ्यों, परिस्थितियों अथवा दशाओं का स्पष्ट और सटीक ज्ञान प्राप्त होता है अपितु उनका तुलनात्मक महत्व भी उजागर होता है।

6. सिद्धांतों का प्रतिपादन

यह विश्लेषण का अंतिम और सबसे महत्वपूर्ण चरण होता है। यह शोध का सार तत्व माना जाता है इसलिए यह जितना स्पष्ट और यथार्थ हो शोध उतना ही बेहतर माना जाता है। वास्तव में सिद्धांत तथ्यों के आधार पर प्राप्त निष्कर्षों के अति सूक्ष्म रूप होते हैं।सिद्धांत को लिखते समय उन शब्दों का चयन किया जाना चाहिए, जिनका अर्थ सभी लोगों के लिए समान अर्थ के रूप में उभरकर आए। इसके अलावा सिद्धांत, जिसे प्रतिपादित करना हो, इस प्रकार का होना चाहिए जिसके विश्लेषण से संपूर्ण अध्ययन क्षेत्र और मूल निष्कर्ष स्पष्ट हो जाए।

1.7 सारांश

इस इकाई में तथ्यों के विश्लेषण के संदर्भ में जानकारी प्रदान की गई है। विश्लेषण किसी भी शोध को वैज्ञानिक कसौटी प्रदान करने में कितनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है? विश्लेषण की आवश्यकता क्यों है? विश्लेषण की पूर्व शर्ते कौन-सी हैं? उसकी प्रक्रिया अथवा चरण कौन-कौन से हैं? आदि प्रकार के प्रश्नों के उत्तर इस इकाई में दिए गए हैं।

1.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 1:तथ्यों के विश्लेषण से आप क्या समझते हैं?

प्रश्न 2: विश्लेषण की आवश्यकता क्यों पड़ती है? विस्तार से बताइए।

प्रश्न 3:विश्लेषण की पूर्व आवश्यकताओं के बारे में प्रकाश डालिए।

प्रश्न 4:तथ्यों के विश्लेषण की प्रक्रिया को स्पष्ट कीजिए।

1.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च*.नई दिल्ली:प्रेन्टिस हाल

बैली, कैनेथे डी. (1978). *मैथड्स ऑफ सोशल रिसर्च*. लंडन:द फ्री प्रैस

मोसर, सी.ए. एवं कॉल्टन, (1975). *सर्वे मैथड्स इन सोशल इंवेस्टीशन*. लंदन:हीनमेन एजुकेशनल बुक्स

गूडे, डब्ल्यू.जे. एवं हैट, पी.के. (1952). *मैथड्स इन सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क:मैकग्रा हिल

करलिंगर, एफ़.आर. (1964). *फाउंडेशन ऑफ बिहेवरियल रिसर्च*. दिल्ली: सुरजीत पब्लिकेशन्स

मुकर्जी, पी. एन. (2000). *मैथडोलॉजी इन सोशल रिसर्च : डिलेमाज एण्ड पर्सपैक्टिव्स*.नई दिल्ली:सेज पब्लिकेशन्स

सैलिट्स, जी. एवं सहयोगी. (1973). *रिसर्च मैथड्स इन दी सोशल रिलेशन्स*. होल्ड, राइनहार्ट एवं विन्सटन : न्यूयॉर्क

बेकर, एल.टी. (1988). डूइंग *सोशल रिसर्च*. न्यूयॉर्क: मैग्रा हिल

कोठारी, एल.आर. (1985). *रिसर्च मैथडोलॉजी*. नई दिल्ली:विश्व प्रकाशन

सारन्ताकोस, एस. (1988). *सोशल रिसर्च*. लन्दन:मैकमिलन

इकाई 2
सांख्यिकी: परिचय, महत्व एवं सांख्यिकी माध्य

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य
2.1 प्रस्तावना
2.2 सांख्यिकी: अर्थ एवं परिभाषाएँ
2.3 सांख्यिकी के चरण
2.4 सांख्यिकी का महत्व
2.5 सांख्यिकी की सीमाएँ
2.6 सांख्यिकीय माध्यों के प्रकार
2.7 सारांश
2.8 बोध प्रश्न
2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

2.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप –

- सांख्यिकी के अर्थ, परिभाषा, चरण एवं महत्व से परिचित हो सकेंगे।
- सांख्यिकी माध्य के विभिन्न प्रकारों को रेखांकित कर सकेंगे।
- सांख्यिकी की सीमाओं का विश्लेषण कर सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

वर्तमान संदर्भ में सामाजिक विज्ञानों में सांख्यिकी की उपयोगिता दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। इसके पीछे कारण यह है कि इसकी सहायता से तथ्यों के संबंध में यथार्थ ज्ञान सरलता से ज्ञात किया जा सकता है। यह एक प्रकार का उपकरण है जिसके प्रयोग से अनुभव आधारित शोध के प्रत्येक चरण में स्पष्ट समस्याओं का निराकरण किया जा सकता है। सांख्यिकीका प्रयोग विभिन्न समस्याओं के बारे में संज्ञान करने के लिए किया जाता है, इस कारण इसे मानव कल्याण का अंकगणित भी कहा जाता है।

2.2 सांख्यिकी: अर्थ एवं परिभाषाएँ

सांख्यिकी अंग्रेजी के शब्द *'स्टैटिक्स'* का हिंदी रूपांतरण है। स्टैटिक्स शब्द लैटिन भाषा के *'स्टेटस'* शब्द से बना है। कुछ विद्वान इसकी उत्पत्ति इटालियन भाषा के शब्द *'स्टाटिस्टा'* तो कुछ जर्मन भाषा के

शब्द *'स्टाटीस्टिक'* से मानते हैं। पूर्व में इन शब्दों का प्रयोगसंबंधितभाषाओं में राजनीतिक रूप से राज्य व्यवस्था के संदर्भ में किया जाता था। इसके आधुनिक प्रचालन का श्रेय गॉटफ्रायड आकेनवाल को जाता है, इन्होंने इसका प्रयोग 18वीं शताब्दी में किया था। सांख्यिकी शब्द का प्रयोग सामान्य तौर पर दो प्रकार से किया जाता है– *पहला*-बहुवचन के रूप में और *दूसरा*-एकवचन के रूप में। *बहुवचन* में इसका प्रयोग तथ्यों, सूचनाओं, सामग्री, आँकड़ों आदि से है । वहीं *एकवचन* के रूप में यह सांख्यिकीय विज्ञान से संबंधितहै। इसके इतर प्रसिद्ध विद्वान टेट ने इसके प्रयोग को तीन प्रकार से प्रस्तुत किया है*"आप तथ्यों से सांख्यिकी विज्ञान द्वारा सांख्यिकीय माप की संगणना करते हैं। इस प्रकार इसके कुल तीन अर्थस्पष्ट होते हैं- पहला-तथ्य, दूसरा-सांख्यिकी विज्ञान और तीसरा-सांख्यिकीय माप।'*

- **किंग** के अनुसार *"गणना अथवा अनुमानों के संग्रह के विश्लेषण द्वारा प्राप्त परिणामों से सामूहिक प्राकृतिक अथवा सामाजिक घटनाओं का निर्णय करने की विधा को सांख्यिकी विज्ञान कहा जाता है।"*
- **केंडाल** के अनुसार*"सांख्यिकी वैज्ञानिक विधि की वह शाखा है जो प्राकृतिक पदार्थों के समूह की विशेषताओं को मापकर प्राप्त किए गए तथ्यों सेसंबंधितहै।"*
- **कॉनर** के अनुसार*"सांख्यिकी किसी प्राकृतिक अथवा सामाजिक समस्या से संबंधित माप की गणना करने का क्रमबद्ध एवं व्यवस्थित तरीका है, ताकि इनके अंतर्संबंधों को अभिव्यक्त किया जा सके।"*
- **होर्स स्क्रेस्ट** के शब्दों में*"सांख्यिकी से आशय तथ्यों के उन समूहों से है जो कई कारणों से निश्चित सीमा तक प्रभावित होते हैं, संख्याओं में व्यक्त किएजाते हैं। एक उचित मात्रा की शुद्धता के अनुसार गणना अथवा अनुमान पर आधारित होते हैं किसी निश्चित उद्देश्य के लिए व्यवस्थित तरीके से संकलित किए जाते हैं जिन्हें एक-दूसरे से संबंधित के रूप में प्रस्तुत किया जाता है।"*
- **क्राक्सटन तथा काउडन** के अनुसार*"सांख्यिकी एक तरीका है जो संख्यात्मक तथ्यों के संग्रहण, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण और निर्वचन से परिभाषित होता है।"*
- **बाउले** के शब्दों में *"सांख्यिकी किसी शोध से संबंधिततथ्यों की ऐसी संख्यात्मक प्रस्तावनाएँ हैं जिन्हें एक-दूसरे से अंतर्संबंधित के रूप में सजाया गया है"*इनके द्वारा सांख्यिकी को गणना का विज्ञान, माध्यों का विज्ञान और सामाजिक जीव को एक संपूर्णइकाई माना गया है तथा इसे सभी रूपों में माप करने वाले विज्ञान के रूप में प्रस्तुत किया गया है।
- **वॉलिश और रॉबर्ट्स** के अनुसार *"सांख्यिकी, तथ्यों के मात्रात्मक पहलुओं के संख्यात्मक विवरण है जो मदों की माप के रूप में प्रस्तुत होते हैं।"*

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि सांख्यिकी एक प्रकार की पद्धति अथवा प्रविधि है, जिसका प्रयोग तथ्यों के संकलन, प्रस्तुतीकरण, विश्लेषण और निर्वचन हेतु किया जाता है।

2.3 सांख्यिकी के चरण

क्राक्सटन तथा काउडन की उपर्युक्त परिभाषा से कुल **चार चरण** स्पष्ट होते हैं जो सांख्यिकीय शोध के लिए आवश्यक हैं–

1. तथ्यों का संकलन

तथ्यों का संकलन शोध की व्यावहारिकता और सैद्धांतिकता दोनों की दृष्टि से महत्वपूर्ण कार्य होता है और तथ्यों को मनमाने ढंग से एकत्रित नहीं किया जाता है। इसके लिए विभिन्न वैज्ञानिक तकनीकों और प्रविधियों की सहायता ली जाती है। निष्कर्ष पूरी तरह से तथ्यों के संकलन पर ही निर्भर करता है। यदि तथ्यों का संकलन सही प्रकार से नहीं किया गया है तो निष्कर्ष यथार्थ और विश्वसनीय नहीं प्राप्त हो सकेंगे। प्राथमिक तथ्यों (जो अध्ययन क्षेत्र से शोधकर्ता द्वारा स्वयं संकलित किए जाते हैं) के अलावा द्वितीयक तथ्यों (इनका संकलन विभिन्न पुस्तकों, पत्र-पत्रिकाओं, पूर्व में किए गए शोधों आदि के आधार पर किया जाता है) के संकलन में भी पर्याप्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।

2. तथ्यों का प्रस्तुतीकरण

तथ्यों के संकलन, वर्गीकरण और सारणीयन के पश्चात उनके प्रस्तुतीकरण की आवश्यकता पड़ती है। विश्लेषण की सरलता हेतु प्रस्तुतीकरण आवश्यक होता है। तथ्यों को दो विधियों द्वारा प्रस्तुत किया जाता है–

- चित्रमय प्रदर्शन
- बिंदुरेखीय प्रदर्शन

3. तथ्यों का विश्लेषण

तथ्यों के विश्लेषण का मुख्य उद्देश्य तथ्यों को आसानी से समझने और तुलनात्मक अध्ययन करने के योग्य बनाना होता है। इसमें विभिन्न गणितीय विधियों का उपयोग किया जाता है। मध्य, विचरण, विषमता, सह-संबंध आदि की सहायता से तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है।

4. तथ्यों का निर्वचन

तथ्यों के विश्लेषण के बाद सांख्यिकीय शोध का अंतिम चरण तथ्यों का निर्वचन होता है। यह कार्य नितांत लचीला और महत्वपूर्ण है। शोधकर्ता को कुशल, योग्य और अनुभवी होना इसकी बुनियादी शर्त है। यदि निर्वचन में सावधानी नहीं बरती गई तो प्राप्त निष्कर्ष भ्रामक, निरर्थक और दोषपूर्ण सिद्ध हो सकते हैं।

2.4 सांख्यिकी का महत्व

सांख्यिकी के महत्व को निम्नलिखित बिंदुओके आधार पर समझा जा सकता है–

- **संख्यात्मक स्वरूप**

  समकालीन संदर्भ में अधिकतर गुणात्मक आँकड़ों का प्रयोग किया जा रहा है परंतु सांख्यिकीका प्रयोग आँकड़ों को संख्यात्मक अथवा मात्रात्मक रूप में प्रस्तुत करने में मदद करता है। निर्वचन और निष्कर्ष प्रतिपादित करने की दृष्टि से गुणात्मक आँकड़ों को मात्रात्मक आँकड़ों के रूप में रूपांतरित करना नितांत आवश्यक होता है।

- **सरलता**

  सांख्यिकीय पद्धतियों की सहायता से जटिल तथ्यों को सरल स्वरूप प्रदान किया जाता है, जिससे उनकी व्याख्या कर पाना सरल हो जाता है।

- **सह-संबंध**

  सांख्यिकी के प्रयोग से विभिन्न तथ्यों के मध्य पाए जाने वाले सह-सबन्धों को आसानी से विश्लेषित व समझा जा सकता है।

- **तुलनात्मक अध्ययन**

  सांख्यिकीय पद्धतियों का प्रयोग न केवल तथ्यों के मध्य सह-संबंधों को उजागर करता है अपितु यह उनके मध्य तुलना भी करता है। तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर विविध प्रकार के तथ्यों के संबंध में प्रभावी और यथार्थ जानकारी प्राप्त हो पाती है।

- **व्यक्तिगत ज्ञान एवं अनुभव का संवर्धन**

  इससे व्यक्तिगत ज्ञान और अनुभव में भी बढ़ोतरी होती है। इसके द्वारा किसी भी समस्या अथवा घटना अथवा परिस्थिति की विवेचना सूक्ष्म और सरल तरीके से की जाती है, जिसके कारण उन्हें समझना और भी सरल हो जाता है। सांख्यिकी व्यक्ति के बौद्धिक विकास में सहायक की भूमिका निभाती है।

- **सिद्धांतों एवं परिकल्पनाओं का परीक्षण**

  सांख्यिकी द्वारा इसी घटना-परिघटना के विस्तार और घनत्व का पता लगाया जा सकता है। साथ ही बेहतर तरीके से समझ विकसित हो जाने के कारण सिद्धांतों, अवधारणाओं और परिकल्पनाओं का परीक्षण, पुनर्परीक्षण और सत्यापन कार्य किया जा सकता है।

- **भविष्य का पूर्वानुमान**

  सांख्यिकी समाज के तथ्यों के बारे में निश्चित और सटीक व्याख्या प्रस्तुत करने में सहायक होती है। इसकी सहायता से शोधकर्ता भूतकालीन और वर्तमान के तथ्यों के आधार भविष्य का पूर्वानुमान कर पाने में सक्षम हो जाता है।

- **नीति-निर्माण में सहायक**

समाज कार्य शोध में न केवल किसी भी समस्या के कारकों का पता लगाया जाता है अपितु उनके निवारण हेतु सुझाव और उपाय भी प्रस्तावित किए जाते हैं। सांख्यिकी, नीतियों के निर्धारण में सहयोग और सरलता प्रदान करती है क्योंकि योजनाओं का क्रियान्वयन व निर्माण सांख्यिकीय तथ्यों को आधार मानकर किया जाता है।

2.5 सांख्यिकी की सीमाएँ

सांख्यिकी की उपयोगिता होने के बावजूद इसकी कुछसीमाएँ भी हैं जो इस प्रकार हैं–

- **केवल संख्यात्मक तथ्यों के अध्ययन तक सीमित**

सांख्यिकी का यह प्रमुख और पहला दोष है कि यह केवल मात्रात्मक अथवा संख्यात्मक तथ्यों के अध्ययन तक ही सीमित होता है। इसका उपयोग केवल उन्हीं दशाओं में किया जा सकता है जिनमें समस्याओं अथवा घटनाओं के पहलुओं को संख्याओं अथवा अंकों में प्रस्तुत किया जा सकता है।

- **केवल समूहों का अध्ययन**

सांख्यिकी केवल समूहों की विशेषताओं को व्यक्तकरने में सक्षम है। यह व्यक्तिगत इकाइयों के अध्ययन कर पाने में असमर्थ है। विद्वान किंग कहते हैं कि सांख्यिकी अपने विषय की प्रकृति के कारण ही व्यक्तिगत इकाइयों पर विचार नहीं कर सकती और न ही वह कभी करेगी।

- **तथ्यों में सजातीयता**

सांख्यिकीय पद्धतियों के प्रयोग से केवल सजातीय तथ्यों, सूचनाओं अथवाआँकड़ों की तुलना संभव है। यदि तथ्य सजातीय अथवा एकरूप नहीं हैं तो सांख्यिकीय पद्धति का प्रयोग कर पाना संभव नहीं है।

- **समस्या के अध्ययन का साधन मात्र**

सांख्यिकी केवल विविध तथ्यों के सह-संबंधों और तुलनात्मक अध्ययन के आधार पर समस्या के बारे में जानकारी उपलब्ध कराती है, वह समस्या का समाधान प्रस्तावित कर पाने में सक्षम नहीं है।

- **संदर्भहीन सांख्यिकीय परिणाम दोषपूर्ण**

सांख्यिकीय परिणामों को समग्रता और सूक्ष्मता से समझने के लिए यह आवश्यक है कि व्यक्ति को उन परिस्थितियों के बारे में भी संज्ञान हो जिन परिस्थितियों में तथ्यों का संकलन किया गया था। यदि संदर्भ स्पष्ट और सटीक नहीं है तो निष्कर्ष भ्रामक और दोषपूर्ण हो सकते हैं।

- **दुरुपयोग**

सांख्यिकीय पद्धतियों का प्रयोग केवल योग्य और अनुभवी व्यक्तियों द्वारा किया जा सकता है क्योंकि जिन व्यक्तियों को इसके संदर्भ में पर्याप्त ज्ञान और अनुभव नहीं है वे इसका दुरुपयोग कर सकते हैं। यूल और केंडाल के शब्दों में, *"अयोग्य व्यक्ति के हाथों में सांख्यिकीय विधियाँ सबसे भयानक हथियार हैं।"*

2.6 सांख्यिकीय माध्यों के प्रकार

यहाँ केवल उन्हीं प्रकारों का उल्लेख किया जाएगा, जिनका प्रयोग सामाजिक शोध में तथ्यों के विश्लेषण और विवेचन की दृष्टि से विशिष्ट तौर पर किया जाता है -

❖ **अंकगणितीय अथवा समांतर माध्य अथवा मध्यमान अथवा औसत**

इसका प्रयोग सामाजिक शोध में सबसे अधिक मात्रा में किया जाता है। यह वह मूल्य है जोकि किसी श्रेणी के सभी पदों के मूल्यों को उनकी संख्या से भाग देने पर प्राप्त होता है। यह एक ऐसा सरल व संक्षिप्त अंक होता है जो श्रेणी के प्रमुख लक्षणों को व्यक्त करता है-

- **घोष और चौधरी** के अनुसार, *"यह वह परिणाम है जो कि किसी चर/परिवर्त्य में पदों के मूल्यों के योग को उनकी संख्या से भाग देकर प्राप्त होता है।"*
- **सिम्पसन और काफ्का** के शब्दों में *"केंद्रीय प्रवृत्ति का माप एक ऐसी प्रतिरूपी मूल्य है जिसके चारों ओर अन्य संख्याएँ संकेंद्रित होती हैं।"*
- **क्लार्क और शेकाडे** के अनुसार, *"माध्य, तथ्यों के संपूर्णसमूह का विवरण प्रस्तुत करने हेतु एक अकेला अंक प्राप्त करने का प्रयत्न है।"*
- **काक्सटन और काउडन** के शब्दों में, *"माध्य, तथ्यों के विस्तार के अंतर्गत स्थित एक ऐसा मूल्य है जिसका प्रयोग श्रेणी के सभी मूल्यों के प्रतिनिधित्व के तौर पर किया जाता है।"*

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि समांतर माध्य वास्तव में समस्त पदों का औसत मूल्य होता है, जिसे समस्त पदों के योग में समस्त पदों की संख्या से भाग देकर प्राप्त किया जाता है।

समांतर माध्य निकालने की विधियाँ

समांतर माध्य निकालने की विधि इस बात से संबंधित होती है कि पदों की श्रेणी किस प्रकार की है। सरल अथवा व्यक्तिगत श्रेणी, खंडित श्रेणी और अखंडित अथवा सतत श्रेणी का समांतर माध्य निम्न प्रकार से निकाला जाता है–

- **सरल अथवा व्यक्तिगत श्रेणी**

जैसा कि नाम से ही स्पष्ट हो रहा है इस श्रेणी में समांतर माध्य निकालना अत्यंत सरल होता है। इसमें समस्त पदों को जोड़ लिया जाता है और उसमें समस्त पदों की संख्या से भाग दे दिया जाता है। इस प्रकार जो मान प्राप्त होता है, उसे समांतर माध्य कहा जाता है।

सूत्र: $M = \frac{X1+X2+X3+X4+X5+........+Xn}{N}$

जहां M= समांतर माध्य

$\sum X = X1+X2+X3+X4+X5+........+Xn$ = कुल पदों का योग

N= कुल पदों की संख्या

उदाहरण:

दी गई 10 संख्याओं का समांतर माध्य ज्ञात कीजिए

155, 165, 157, 180, 153, 168, 162, 160, 164, 166

सूत्रानुसार $M = \frac{155+165+157+180+153+168+162+160+164+166}{10}$

M= 163

अर्थात कुल 10 संख्याओं का समांतर माध्य 163 है।

- **खंडित श्रेणी**

खंडित श्रेणी में समांतर माध्य के मान कोप्राप्त करना अपेक्षाकृत कठिन है। इसके लिए प्रत्येक आवृत्ति का संबंधित पद से गुणा किया जाता है तथा गुणनफल का योग ज्ञात किया जाता है। इसके पश्चात गुणनफल के योग में आवृत्ति के योग से भाग देकर समांतर माध्य निकाला जाता है।

सूत्र: $M = \sum fx / \sum f$

जहां M= समांतर माध्य

$\sum fx$= (पदों के मूल्य X अवृत्ति का योग)

$\sum f$=N आवृत्तियों का योग

उदाहरण:

परिवार की संख्या	96	108	154	126	95	62	45	20	11	6	5	5	1	1
रोज़गार में संलग्न व्यक्ति	0	1	2	3	4	5	6	7	8	9	10	11	12	13

इस प्रकार की श्रेणी का समांतर माध्य प्राप्त करने के लिए प्रत्येक पदों और उनसे संबंधित आवृत्ति के गुणनफल का योग तथा आवृत्तियों का योग ज्ञात करना होगा। निम्नलिखित सारणी के आधार पर यह सरलता से ज्ञात किया जा सकता है–

परिवार की संख्या (f)	**रोज़गार में संलग्न व्यक्ति (x)**	**गुणनफल (fx)**
96	0	0
108	1	108

154	2	308
126	3	378
95	4	380
62	5	310
45	6	270
20	7	140
11	8	88
6	9	54
5	10	50
5	11	55
1	12	12
1	13	13
योग	**$\sum f$=735**	**$\sum fx$= 2166**

सूत्रानुसार $M=\sum fx / \sum f$

M= 2166 / 735

M= 2.9 अर्थात 3

अतः प्रति परिवार कुल 3 व्यक्ति रोज़गार में संलग्न हैं।

- **अखंडित अथवा सतत श्रेणी**

जब वर्गान्तरों के साथ आवृत्ति दी हुई रहती है तो यहाँ समांतर माध्य निकालने का सूत्र व तरीका निम्न प्रकार से होगा-

सूत्र: $M=\sum fx / \sum f$

जहां M= समांतर माध्य

$\sum fx$= (पदों के मूल्य X आवृत्ति) का योग

$\sum f$=N आवृत्तियों का योग

उदाहरण:

मज़दूरी	50-60	60-70	70-80	80-90	90-100	100-110	110-120
मजदूर	8	10	16	14	10	5	2

यहाँ भी पूर्व की तरह ही सारणी से पदों का गुणनफल का योग और आवृत्ति का योग ज्ञात करना होगा।

मज़दूरी	मजदूर (f)	मध्यमान (x)	गुणनफल (fx)
50-60	8	50+60/2= 55	440
60-70	10	60+70/ 2= 65	650
70-80	16	70+80/ 2= 75	1200
80-90	14	80+90/ 2=85	1190
90-100	10	90+100 /2= 95	950
100-110	5	100+110/2= 105	525
110-120	2	110+120/2= 115	230

सूत्रानुसार M= ∑fx/∑f

M= 5185/65

M= 79.77

अतः औसत दैनिक मज़दूरी= 79.77 रुपये अथवा 80 रुपये

❖ माध्यिका अथवा मध्यांक

माध्यिका अथवा मध्यांक किसी पद श्रेणी का वह बिंदु होता है जो समग्र को दो बराबर भागों में वर्गीकृत कर देता है। इसके लिए सभी पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रमों में व्यवस्थित कर लिया जाता है। यह वह पद-मूल्य है जो कि आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित करके श्रेणी को दो बराबर भागों में वर्गीकृत करता है।

- **कोनर** के शब्दों में, *"मध्यांक श्रेणी का वह पद-मूल्य है, जो समूह को दो बराबर भागों में इस प्रकार से विभाजित करता है कि एक भाग के सभी मूल्य मध्यांक से कम और दूसरे भाग के सभी मूल्य अधिक हों।"*
- **डॉ. चतुर्वेदी** के अनुसार, *"यदि एक श्रेणी के पदों को उनके परिणामों के आधार पर आरोही और अवरोही क्रमों से लगाया जाए तो बिल्कुल बीच वाली राशि के माप को मध्यांक कहा जाता है।"*
- **घोष और चौधरी** के अनुसार, *"मध्यांक श्रेणी में उस पद का मूल्य है जोकि श्रेणी को दो बराबर भागों में विभाजित करता है, जिसमें से एक भाग के मध्यांक कम-से-कम और दूसरे भाग में मध्यांक से अधिक मूल्य होते हैं।"*
- **सेक्रिस्ट** के अनुसार, *"एक श्रेणी की माध्यिका के आधार पर क्रमबद्ध करने पर उस पद का अनुमानित अथवा वास्तविक मूल्य है जो वितरण को दो भागों में विभाजित कर दो है।"*

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मध्यांक केंद्रीय मूल्य होता है जोकि श्रेणी के पदों को दो बराबर भागों में वर्गीकृत करता है।

मध्यांक निकालने की विधियाँ

मध्यांक ज्ञात करने के लिए समस्त पदों को आरोही अथवा अवरोही क्रम में व्यवस्थित किया जाता है। विभिन्न श्रेणियों में मध्यांक ज्ञात करने के तरीके निम्नलिखित हैं–

- **सरल श्रेणी**

सरल श्रेणी में संख्याओं की प्रकृति(सम अथवा विषम) के आधार पर दो सूत्रों का प्रयोग किया जाता है। यदि किसी श्रेणी में कुल पदों की संख्या को n माना जाय तो मध्यांक ज्ञात करने के लिए सूत्र निम्न है–

i) यदि n विषम संख्या है तो

मध्यांक Me=n+1 /2वें पद का मान

ii) यदि n सम संख्या है तो

मध्यांक Me=½[$\frac{n}{2}$ वें पद का मान+ ($\frac{n}{2}$+1) वें पद का मान]

उदाहरण:

एक परिवार के 9 सदस्यों का मध्यांक निर्धारित कीजिए–

25, 15, 23, 40, 27, 25, 23, 25, 20

सर्वप्रथम सभी पदों को आरोही क्रम में रख लिया जाता है। इस आधार पर एक सारणी का निर्माण कर लिया जाता है–

क्रम संख्या	1	2	3	4	5	6	7	8	9
पद-मूल्य	15	20	23	23	25	25	25	27	40

पदों की संख्या विषम होने के कारण निम्न सूत्र का प्रयोग किया जाएगा–

मध्यांक Me=n+1/2 वें पद का मान

Me= 9+1/2 वें पद का मान

Me= 5वें पद का मान अर्थात 25

मध्यांक Me= 25

- **खंडित श्रेणी**

खंडित श्रेणी में मध्यांक ज्ञात करने के लिए सरल श्रेणी(विषम पद) के सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

मध्यांक Me=n+1 /2वें पद का मान

उदाहरण:

मजदूरों की संख्या	25	70	210	275	430	550	340	130	90	55	25
मज़दूरी	25	26	27	28	29	30	31	32	33	34	35

इस प्रकार की श्रेणी में मध्यांक को ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति प्राप्त कर लिया जाता है-

मज़दूरी	मजदूरों की संख्या	संचयी आवृत्ति
25	25	25
26	70	(25+70)= 95
27	210	(95+210)= 305
28	275	(305+275)= 580
29	430	(580+430)= 1010
30	550	(1010+550)= 1560
31	340	(1560+340)= 1900
32	130	(1900+130)= 2030
33	90	(2030+90)= 2120
34	55	(2120+55)= 2175
35	25	(2175+25)= 2200

सूत्रानुसार: मध्यांक Me=n+1/2वें पद का मान

Me= 2200+1/2वें पद का मान

Me= 1100.5 वें पद का मान

1100.5वां पद संचयी आवृत्ति के1560 वाले पद के अंतर्गत आता है, इसलिए मज़दूरी का मध्यांक 30 रुपया हुआ।

- **अखंडित श्रेणी**

अखंडित श्रेणी में $\frac{n}{2}$सूत्र का प्रयोग वर्गांतर में मध्यांक ज्ञात करने के लिए किया जाता है। मध्यांक वर्गांतर का संज्ञान हो जाने के पश्चात निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है-

$$Me = L_1 + \frac{i}{f}(m - c)$$

जहां Me= मध्यांक

L_1= मध्यका वर्ग की निचली सीमा

i= मध्यका वर्ग का विस्तार (L_2-L_1)

f= मध्यका वर्ग की आवृत्ति

m= मध्यका संख्या ($\frac{N}{2}$)

c= मध्यका वर्गांतर से ठीक पहले वाले वर्ग की संचयी आवृत्ति

उदाहरण:

मज़दूरी	100-200	200-300	300-400	400-500	500-600
मजदूरों की संख्या	15	33	63	83	100

यहाँ मध्यांक को ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम संचयी आवृत्ति को प्राप्त करना होगा-

मज़दूरी	मज़दूरों की संख्या	संचयी आवृत्ति
100-200	15	15
200-300	33	(15+33)= 48
300-400	63	(48+63)= 111
400-500	83	(111+83)= 194
500-600	100	(194+100)= 294
	n= 294	

मध्यांक वर्गांतर = n/2 वें पद का मान

= 294/2 वें पद का मान

= 147वें पद का मान

147वां पद संचयी आवृत्ति के 194 में निहित है और इसका वर्गांतर 400-500 है।

अतः सूत्रानुसार $Me = L_1 + \frac{i}{f}(m - c)$

$= 400 + \frac{100}{83}(147 - 111)$

$= 400 + \frac{100}{83}(36)$

$= 400 + \frac{3600}{83}$

$= 400 + 43.37$

$Me = 443.37$

अतः मज़दूरी का मध्यांक = 443.37 रुपये है।

❖ बहुलक अथवा भूयिष्ठक

बहुलक अंग्रेजी के शब्द *'मोड'* का हिंदी रूपांतरण है, जिसकी उत्पत्ति फ्रेंच भाषा के शब्द *'LaMode'* से हुई है। इसका अर्थ फैशन अथवा रिवाज होता है अर्थात यह वह पद है जिसका प्रचलन अधिक होता है।

बहुलक वह मूल्य है जिसका समस्त पदों में उपयोग सबसे अधिक बार होता है अथवा जिसकी आवृत्ति सबसे अधिक होती है।

- **जीजेक** के अनुसार, *"बहुलक वह मूल्य है जो समूह में सबसे अधिक बार आता है और जिसके चारों ओर सबसे अधिक घनत्व वाले पदों का जमाव हो।"*
- **गिलफोर्ड** के शब्दों में, *"बहुलक माप के पैमाने पर वह बिंदु है, जहाँ कि एक वितरण में सर्वाधिक आवृत्ति होती है।"*
- **प्रो. टुटले** के अनुसार, *"बहुलक वह मूल्य है जिसके एकदम आस-पास आवृत्ति घनत्व अधिकतम होता है।"*
- **बोडिंगटन** के अनुसार, *"बहुलक को महत्वपूर्ण प्रकार, रूप अथवा पद का आकार अथवा सबसे अधिक घनत्व की स्थिति के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।"*
- **काक्सटन एवं काउडेन** के शब्दों में, *"एक वितरण का बहुलक वह मूल्य है जिसके निकट श्रेणी की इकाइयाँ अधिक से अधिक केंद्रित होती हैं। उसे श्रेणी का सर्वाधिक प्रतिरूपी अथवा विशिष्ट मूल्य माना जा सकता है।"*

उपर्युक्त वर्णित परिभाषाओं के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बहुलक वह मूल्य है जिसकी आवृत्ति समस्त पदों में सर्वाधिक बार होती है और साथ ही इसके चारों ओर सर्वाधिक पदों का जमाव रहता है।

बहुलक निकालने की विधियाँ

अलग-अलग श्रेणियों में बहुलक को ज्ञात करने की भिन्न-भिन्न विधियाँ होती हैं। संबंधित विधियों का उल्लेख किया जा रहा है–

❖ सरल श्रेणी

सरल श्रेणी में बहुलक को ज्ञात करना अत्यंत सरल होता है।

उदाहरण:

निम्न पदों से बहुलक ज्ञात कीजिए–

33, 20, 35, 50, 37, 35, 33, 35, 25, 35, 34 और 35

सभी पदों को एक क्रम से सजाने पर–

20, 25, 33, 33, 34, 35, 35, 35, 35, 37 और 50

चूंकि 35 सबसे अधिक बार प्रयोग हुआ है, इसलिए बहुलक Z अथवा Mo= 35

❖ खंडित श्रेणी

खंडित श्रेणी में बहुलक को निम्न प्रकार से ज्ञात किया जा सकता है–

उदाहरण:

पदों का मान	5	9	13	17	7	11	19	15
आवृत्ति	1	7	11	5	2	9	4	8

यहाँ स्पष्ट तौर पर यह परिलक्षित होता है कि पद-मान 13 की आवृत्ति सबसे अधिक 11 बार है, अतः बहुलक Mo= 13

❖ अखंडित श्रेणी

अखंडित श्रेणी के बहुलक को ज्ञात करने के लिए सर्वप्रथम निरीक्षण के द्वारा वर्गांतर का संज्ञान किया जाता है। इसके बाद निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया जाता है–

$$Me = L_1 + \frac{f_1 - f_0}{2f_1 - f_0 - f_2} \times i$$

जहां Z/Mo= बहुलक

L_1= बहुलक वर्ग की निचली सीमा

f_1= बहुलक वर्ग की आवृत्ति

f_0= बहुलक वर्ग से तुरंत पहले वर्ग कीआवृत्ति

f_2= बहुलक वर्ग से तुरंत बाद वाले वर्गकी आवृत्ति

i= बहुलक वर्ग विस्तार

उदाहरण:

मज़दूरी	0-10	10-20	20-30	30-40	40-50	50-60	60-70	70-80
मज़दूरों की संख्या	5	4	8	6	2	6	7	2

यहाँ देखने पर स्पष्ट तौर पर यह प्रतीत होता है कि 20-30 वर्गांतर की आवृत्ति सबसे अधिक 8 बार है।

अतः सूत्रानुसार: $Mo = L_1 + \frac{F_1 - F_0}{2F_1 - F_0 - F_2} \times i$

$= 20 + \frac{8-4}{2(8)-4-6} \times 10$

$= 20 + \frac{4}{16-10} \times 10$

$= 20 + \frac{40}{6} \times 10$

$= 20+6.67$

$= 26.67$

अत: बहुलक Mo= 26.67

2.7 सारांश

इस इकाई में सांख्यिकी के बारे में सैद्धांतिक और आभ्यासिक जानकारी प्रस्तुत की गई है। सांख्यिकी के अर्थ, परिभाषा, महत्व व सीमाओं के बारे में वर्णन प्रस्तुत किया गया है। इसके अलावा माध्य, मध्यिका और बहुलक के बारे में उदाहरण सहित विस्तृत विवेचन भी प्रस्तुत किया गया है। यह व्याख्या एक समाज कार्य शोधकर्ता के रूप में अवश्य उपयोगी सिद्ध होगी।

2.8 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: सांख्यिकी क्या है? स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 2:सांख्यिकी के चरण बताइए।

प्रश्न 3:सांख्यिकी के महत्व को स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4:सांख्यिकी की सीमाओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 5:टिप्पणी कीजिए

1- माध्य
2- मध्यिका
3 – बहुलक

2.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

मेलेक, एम. (1977). *इसेशनल स्टैटिक्स फॉर सोशल रिसर्च.* फिलाडेल्फिया: जे.बी.लेपिनकाट कंपनी

यंग, पी.वी. (1977). *साईन्टिफिक सोशल सर्वे एण्ड रिसर्च.* नई दिल्ली:प्रेन्टिस हाल

सेंडर्स, डी. (1995). *स्टैटिसटिक्स अ फर्स्ट कोर्स.* न्यूयॉर्क: मैग्रा हिल पब्लिकेशन

सिरकीन, आर.एम. (2005). *स्टैटिक्स फॉर सोशल साइन्सेज.* वाशिंगटन: सेज पब्लिकेशन्स

अग्रेस्टी, ए. एवं फिनले, बी. (2008). *स्टैटिक्स मेथड्स फॉर सोशल साइन्सेज.* न्यू जर्सी: प्रेंटिस हाल

बेकर, एल.टी. (1988). *डूइंग सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क: मैग्रा हिल

लेविन, जे. (1983). *एलीमेंट्री स्टैटिक्स इन सोशल रिसर्च.* न्यूयॉर्क: हार्पर एंड रॉ पब्लिशर्स

लालदास, डी.के. (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च: अ सोशल वर्क पर्सपेक्टिव.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

गुप्ता, एस.पी. (1980). *स्टैटिकल मेथड्स इन सोशल रिलेशन.* न्यूयॉर्क: हॉल्ट

आहूजा, र. (2004). *सामाजिक अनुसंधान.* जयपुर: रावत पब्लिकेशन

इकाई 3 प्रस्तुतीकरण

इकाई की रूपरेखा

3.0 उद्देश्य

3.1 प्रस्तावना

3.2 शोध रिपोर्ट तैयार करने के उद्देश्य

3.3 रिपोर्ट की अंतर्वस्तु

3.4 उत्कृष्ट रिपोर्ट की विशेषताएँ

3.5 रिपोर्ट लेखन हेतु पूर्व आवश्यकताएं

3.6 सारांश

3.7 बोध प्रश्न

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

3.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन पश्चात आप –

- शोध रिपोर्ट के उद्देश्यों की जानकारी प्राप्त कर सकेंगे।
- रिपोर्ट की अंतर्वस्तु और विशेषताओं को रेखांकित कर सकेंगे।
- रिपोर्ट लेखन के विभिन्न चरणों से अवगत हो सकेंगे।

3.1 प्रस्तावना

शोध के आधार पर किसी समस्या अथवा घटना के बारे में जानकारी प्राप्त की जाती है और निष्कर्ष प्रतिपादित किया जाता है। समाज कार्य शोध में हम समस्या के बारे में संज्ञान प्राप्त करते हैं और निष्कर्ष के साथ सुझाव भी प्रस्तावित करते हैं। रिपोर्ट वह विधा है जिसके आधार परसंपूर्णशोध को दस्तावेज़ में सँजोने का काम किया जाता है। दूसरे शब्दों में शोध के आधार पर जो तथ्य हमें प्राप्त होते हैं उन्हें ही वैज्ञानिक तरीके से लिपिबद्ध कर देना ही रिपोर्ट तैयार करना कहा जाता है।

गुडे एवं हॉट के अनुसार, *"रिपोर्ट तैयार करना शोध का अंतिम चरण होता है तथा इसका प्रयोजन रुचि वाले लोगों के अध्ययन के समस्त निष्कर्षों की विस्तृत व्याख्या करना है और उन्हें इस प्रकार से व्यवस्थित करना है कि प्रत्येक पाठक, तथ्यों को समझने एवं स्वयं के लिए निष्कर्ष की प्रामाणिकता का निश्चय करने में सफल हो सके।"*

3.2 शोध रिपोर्ट तैयार करने के उद्देश्य

सामाजिक शोध में रिपोर्ट तैयार करना बहुत महत्वपूर्ण कार्य होता है। साथ ही इसे तैयार करने के लिए काफी सावधानी बरतने की आवश्यकता रहती है। यदि रिपोर्ट तैयार करने में असावधानी हुई तो इससे पूरे शोध की विश्वसनीयता पर ही सवालिया निशान खड़ा हो सकता है। रिपोर्ट से ही समाज को नवीन ज्ञान की प्राप्ति हो पाती है। इसके प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार हैं–

1. **दस्तावेजीकरण:-** जैसा कि ऊपर भी बताया जा चुका है कि रिपोर्ट तैयार करने में पूरे शोध की क्रियाविधि, कार्यप्रणाली, निष्कर्ष आदि का विवरण वैज्ञानिक तरीके से लिपिबद्ध किया जाता है। रिपोर्ट का उद्देश्य दस्तावेज़ अथवा प्रलेख को तैयार करना होता है, जिसकी सहायता से ज्ञान में बढ़ोतरी हो सके। शोधकर्ता द्वारा शोध के सभी चरणों में काफी मेहनत की जाती है तथा उसकी यह मेहनत रिपोर्ट तैयार करने पर ही पूरी होती है। यह रिपोर्ट ही तय करता है कि उसका काम किस कोटि का है। अतः शोध के लेखे-जोखे को तैयार करते समय पर्याप्त सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है।
2. **उपयोगितावादी:-**रिपोर्ट का उद्देश्य शोध की सहायता से प्राप्त ज्ञान को समाज के अन्य लोगों तक पहुँचाने का होता है। इन अर्थों में रिपोर्ट तैयार करके संग्रहीत ज्ञान को दूसरों को दिया जाना उपयोगितावादी परिप्रेक्ष्य का सूचक है।
3. **योजनाओं का मूल्यांकन-** रिपोर्ट तैयार कर देने से हमारे पास एक दस्तावेज़ संचित हो जाता है, जो वैज्ञानिक विधियों और तकनीकों से संग्रहीत तथ्यों के आधार पर निर्मित किया गया होता है। इस प्रकार से कई योजनाओं की सफलता अथवा असफलता कीजाँच करना संभव हो जाता है।
4. **तथ्यों का संज्ञान कराना:-**रिपोर्ट का उद्देश्य समाज को शोध के निष्कर्षों और तथ्यों की वास्तविकता का संज्ञान कराना होता है। इसे इस प्रकार से तैयार किया जाता है कि पढ़ने वाले व्यक्ति को इसमें निहित समस्त विवरण और व्याख्या सरलता से समझ में आ जाएँ।
5. **अग्रिम शोधों के लिए उपयोगी:-**रिपोर्ट का एक उद्देश्य यह भी होता है कि इसमें निहित तथ्यों, निष्कर्षों और सुझावों के आधार पर भविष्य में किए जाने वाले शोधों में सहायता हो सके।

3.3 रिपोर्ट की अंतर्वस्तु

सामान्य तौर पर शोध की रिपोर्ट को निम्न सारणी की सहायता से समझा जा सकता है–

क्रम संख्या	प्रारंभिक भाग	मध्य/मुख्यभाग	अंतिम भाग
1.	मुख्य पृष्ठ	प्रस्तावना	संदर्भ-ग्रंथ सूची
2.	आवरण पृष्ठ	साहित्य पुनरावलोकन	परिशिष्ट
3.	प्रमाण-पत्र/ उद्घोषणा	शोध प्रारूप	

4.	विषय-वस्तु	तथ्यों का विश्लेषण और विवेचन	
5.	विषय-वस्तुओं की सूची	निष्कर्ष	
6.	सारणियों की सूची	सारांश	

रिपोर्ट लेखन का कार्य बहुत ही सावधानी का कार्य होता है। रिपोर्ट की अंतर्वस्तु में निम्नलिखित तत्वों को शामिल किया जाता है–

1. प्रस्तावना

यह रिपोर्ट का प्रारंभिक भाग होता है। इसमें विषय से संबंधित तथ्यों के बारे में विवरण दिया जाता है। प्रस्तावना का उद्देश्य पाठक को संबंधित विषय के बारे में सामान्य जानकारी उपलब्ध कराना होता है। प्रस्तावना में निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है–

- शोध का विचार और इसकी उत्पत्ति
- शोध की योजना
- शोध का महत्व
- शोध संपन्न कराने वाली संस्था के बारे में विवरण
- शोध में संलग्न व्यक्तियों के बारे में विवरण
- कार्यकर्ताओं का निरीक्षण और उनका परीक्षण
- तथ्यों की वैधता और विश्वसनीयता का आधार
- प्रारंभिक परिचयात्मक तथ्यों का विवरण
- शोध में लगने वाले समय और श्रम का विवरण
- शोध में आने वाली कठिनाइयों का विवरण
- सहयोगी व्यक्तियों और संस्थानों के बारे में विवरण और उनका आभार

2. समस्यायीकरण अथवा समस्या का विवरण

शोध समस्या के बारे में उल्लेख करने हेतु निम्नलिखित बातों पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है–

- समस्या की पृष्ठभूमि
- शोध की आवश्यकता
- समस्या और चयन का आधार
- शोध की व्यावहारिक उपयोगिता

- संबंधित समस्या के संदर्भ में हुए अन्य अध्ययनों का विवरण

3. उद्देश्य

रिपोर्ट तैयार करने के दौरान इस बात पर ध्यान देने की आवश्यकता होती है कि शोध का उद्देश्य क्या है?, शोध की क्या व्यावहारिक उपयोगिता होगी?,शोध मानव जाति के ज्ञान को संवर्धित करने में कहाँ तक मदद करेगा?शोध के आधार पर विद्यमान सिद्धांतों की जाँच किस प्रकार से की जा सकेगी? आदि।

4. विषय

रिपोर्ट तैयार करते समय शोध के विषय पर ध्यान देना चाहिए। इस विषय के चयन के पीछे शोधकर्ता का क्या तर्क है? इस बारे में भी विवरण देना चाहिए। इसके अलावा विषय को स्पष्ट रूप में परिभाषित भी करना चाहिए। इस प्रकार से पूरे शोध की स्पष्टता बनी रहती है और साथ ही विषय के संज्ञान के बारे में भ्रांतियाँ नहीं रहती हैं।

5. अध्ययन क्षेत्र

रिपोर्ट में इस बात को दर्ज कर देना चाहिए कि शोध का अध्ययन क्षेत्र क्या है? इस अध्ययन की सीमा क्या है? इस प्रकार से विषय के बारे में पाठक की समझ और भी सटीक हो जाती है।

6. प्रविधि

सामाजिक शोध वैज्ञानिक प्रविधियों और तकनीकों से संचालित प्रक्रिया होती है। इसमें अनेक प्रविधियों और तकनीकों की सहायता ली जाती है। रिपोर्ट तैयार करते समय शोधकर्ता को यह भी अंकित करने की आवश्यकता होती है कि उसने शोध में किस प्रविधि अथवा तकनीक का प्रयोग किया है? इसके अलावा उसे यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि उसने प्रविधि का प्रयोग किस आधार पर किया है? प्रविधि के प्रयोग के पीछे उसका वैज्ञानिक तर्क क्या है?

7. निदर्शन

समय और धन की बचत की दृष्टि से शोध में निदर्शन प्रविधि का विकास हुआ है। इसमें शोधकर्ता समग्र का अध्ययन करने के स्थान पर किसी स्थान विशेष अथवा समूह विशेष से तथ्यों का संकलन करता है। रिपोर्ट तैयार करने के समय इस बात का उल्लेख किया जाना चाहिए कि तथ्यों के संकलन हेतु निदर्शन का प्रयोग क्यों किया गया? साथ ही यह भी स्पष्ट करना चाहिए कि किस निदर्शन का प्रयोग किया गया और क्यों?

8. कार्यकर्ताओं का संगठन

बिना कार्यकर्ताओं के संगठन के किसी भी कार्य को कर पाना बहुत मुश्किल होता है। सामाजिक शोध के प्रारूप को बनाना, सर्वेक्षण करना, तथ्यों के संकलन व संपादन आदि कार्यों के लिए कार्यकर्ताओं के संगठन की आवश्यकता होती है। रिपोर्ट में यह लिपिबद्ध किया जाना चाहिए कि शोध कार्य को संगठन

द्वारा किस प्रकार संपन्न किया गया? इस प्रकार से शोध कार्य के आरंभ से लेकर अंत तक के संपूर्ण विवरण को प्रस्तुत किया जाना चाहिए।

9. तथ्यों का विश्लेषण

रिपोर्ट लेखन में इस भाग पर विशिष्ट ध्यान आकृष्ट करने की आवश्यकता होती है। इसमें अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त सभी तथ्यों का विश्लेषण और विवेचन प्रस्तुत किया जाता है। इस विश्लेषण को यथा-प्रयास सरल, बोधगम्य और सटीक ढंग से व्यक्त किया जाना चाहिए। इसके अलावा आवश्यकता पड़ने पर सांख्यिकीय तथ्यों का प्रस्तुतीकरण भी करना चाहिए। इसके अलावा तथ्यों के संदर्भ स्रोत को भी पाद टिप्पणी (फूटनोट) के रूप में स्पष्ट किया जाता है।

10. परिशिष्ठ

रिपोर्ट के अंतिम भाग में साम्ग्री को संलग्न किया जाता है (यदि आवश्यक हो तो)। इसमें निम्नलिखित सामग्री को संलग्न किया जाता है–

- अनुसूची/प्रश्नावली की प्रति
- पुस्तकों की सूची
- पारिभाषिक शब्द और उनका विवेचन
- लेख और विवरण की प्रति

11. तथ्यों की विशिष्टता

रिपोर्ट जितनी ही रुचिकर होगी पाठकों के ध्यान को उतना ही अधिक आकृष्ट करेगी। तथ्यों को अच्छी तरह से स्पष्ट किया जाना चाहिए। रिपोर्ट लेखन में तथ्यों की व्याख्या दो प्रकार से की जा सकती है– पहली रिपोर्ट में एक-साथ ही सभी आवश्यक तथ्यों की व्याख्या कर दी जाय और दूसरीप्रत्येक अध्याय के अंत में आवश्यक तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत कर दिया जाय।

12. सुझाव

यदि शोध व्यावहारिक प्रकृति का हो और शोध समस्या अथवा शोध के उद्देश्य का निवारण प्रस्तुत करना हो तो रिपोर्ट के अंत में कुछ सुझावों को अवश्य ही प्रस्तावित कियाजाना चाहिए। यहाँ यह ध्यान देने की बात है कि वे सुझाव तार्किक व व्यावहारिक होने चाहिए।

3.4 उत्कृष्ट रिपोर्ट की विशेषताएँ

अच्छी रिपोर्ट के संबंध में विद्वानों के विचारों में मतभेद पाए जाते हैं। रिपोर्ट तैयार करना एक वैज्ञानिक कार्य होता है, इसलिए इसमें ध्यान और कुशलता की आवश्यकता होती है। एक उत्कृष्ट रिपोर्ट की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख यहाँ किया जा रहा है–

1. **आकर्षक:-** यह एक मनोवैज्ञानिक तथ्य है कि मनुष्य आकर्षक वस्तुओं पर अधिक ध्यान देता है। इसलिए रिपोर्ट का शीर्षक पृष्ठ आकर्षक होना चाहिए। इसके अलावा इसकी अंतर्वस्तु भी आकर्षक होनी चाहिए। कंप्यूटर से प्रिंट लेतेसमय यह ध्यान देना चाहिए कि सामग्री पेज के बिल्कुल बीच प्रिंट हो रही है अथवा नहीं। साथ ही पूरे पेज को अच्छे तरह से नियोजित कर लेना चाहिए।
2. **सरल भाषा:-** रिपोर्ट में प्रयुक्त भाषा इतनी सरल और सधी हुई होनी चाहिए कि वह हर किसी को आसानी से समझ में आ सके। कठिन और क्लिष्ट भाषा के प्रयोग से कभी-कभी लोग उबाऊ महसूस करने लगते हैं।
3. **अच्छी लेखन शैली:-** शोधकर्ता की लेखन शैली स्पष्ट, सुदृढ़ और संतुलित होनी चाहिए। उग्र और क्लिष्ट शब्दों के प्रयोग से तथ्य अपनी वास्तविकता और सत्यता को खो देते हैं। इसके अलावा ऐसा करने से तथ्य अतिशयोक्तिपूर्ण और अस्वाभाविक लगने लगते हैं।
4. **वैज्ञानिक व्याख्या:-** जैसा कि पहले भी कहा जा चुका है कि रिपोर्ट लेखन का कार्य वैज्ञानिक नियमों के अनुरूप किया जाता है। अतः शोधकर्ता द्वारा लिखे गए तथ्यों का वैज्ञनिक स्तर होना चाहिए, जिससे पाठक को ये तथ्य कल्पना अथवा अवास्तविक न लगे।
5. **स्पष्ट, सटीक और विस्तृत विवरण:-** रिपोर्ट का लेखन कार्य इस प्रकार से प्रभावी होना चाहिए कि पाठक उसके बारे में संशय न कर सके। शोध में प्रयुक्त प्रविधियों, तकनीकों, निदर्शन तथा इनकी सहायता से अध्ययन क्षेत्र से प्राप्त तथ्यों आदि को रिपोर्ट में उचित ढंग से शामिल किया जाना चाहिए।
6. **तार्किक और क्रमवार तथ्यों का प्रस्तुतीकरण:-** पुनरावृत्ति के अलावा यह भी ध्यान रखना चाहिए कि तथ्यों का क्रम बना रहे और उन क्रमों का नियोजन तार्किक ढंग से किया जाय।
7. **पुनरावृत्ति से बचाव:-** उत्कृष्ट रिपोर्ट के लिए यह आवश्यक है कि तथ्यों की पुनरावृत्ति से बचा जाय। एक ही तथ्य का कई स्थानों पर प्रयोग करने से रिपोर्ट अपनी मौलिकता खो देती है।
8. **व्यावहारिक शब्दावली का प्रयोग:-** अच्छे रिपोर्ट को तैयार करने में शोधकर्ता को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि इसमें कम-से-कम बोझिल शब्दों का प्रयोग किया जाय। उसे किसी तथ्य अथवा समस्या को व्यक्त करने के लिए पारिभाषिक शब्दों के स्थान पर व्यावहारिक शब्दों का प्रयोग करना चाहिए।
9. **सामग्री-स्रोतों का विवरण:-** रिपोर्ट लेखन के दौरान जहाँ उल्लेखनीय हो वहाँ तथ्यों के स्रोतों का उल्लेख किया जाना चाहिए। इससे तथ्यों की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता बनी रहती है।
10. **विश्वसनीय तथ्यों का प्रयोग:-** रिपोर्ट में जितने अधिक विश्वसनीय तथ्यों का प्रयोग किया जाएगा रिपोर्ट उतनी ही अच्छी मानी जाएगी। इसके लिए आवश्यक है कि निष्कर्ष के साथ तथ्यों का भी प्रस्तुतीकरण किया जाए।

11. संक्षिप्त और ज्ञानवर्धक:- एक उत्कृष्ट रिपोर्ट संक्षिप्त, ज्ञानवर्धक और बोधगम्य होनी चाहिए।

12. शोध की कठिनाइयों का विवरण:- एक अच्छी रिपोर्ट की विशेषता यह भी है कि शोध के दौरान शोधकर्ता को किन-किन समस्याओं का सामना करना पड़ा? और उसके अध्ययन की सीमा क्या है? का उल्लेख किया जाय।

3.5 रिपोर्ट लेखन हेतु पूर्व आवश्यकताएँ

रिपोर्ट लेखन का कार्य बहुत ही सावधानीपूर्ण और कठिन कार्य होता है। इसमें यह ध्यान देने योग्य बात है कि शोध की किसी भी बात का उल्लेख छूट न जाए जिसका उल्लेख शोध की वैज्ञानिकता, प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के लिए आवश्यक हो। रिपोर्ट लेखन के लिए प्रमुख पूर्व शर्तें निम्नानुसार हैं-

- रिपोर्ट के सफल लेखन के लिए विषय अथवा समस्या की प्रकृति और उसके क्षेत्र के बारे में पर्याप्त जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।
- विषय से संबंधित उपलब्ध साहित्यों का अध्ययन कर लेना चाहिए। इसमें पूर्व में किए गए शोध, विभिन्न दस्तावेज़, न्यूज पेपर, पत्र-पत्रिका, लेख, जर्नल, इंटरनेट आदि की सहायता ली जाती है। इन अध्ययनों से इस बात का संज्ञान होगा कि रिपोर्ट लेखन कैसे तैयार किया जाता है? उसमें सामान्य तौर पर कौन-सी गलतियाँ आती हैं? इसके अलावा तुलनात्मक परीक्षण के आधार पर यह भी समझा जा सकता है कि उनसे कैसे बचा जाए?
- रिपोर्ट की भाषा सरल और संतुलित होनी चाहिए। यह यह भी ध्यान देने की बात है कि भाषा इतनी भी सरल न हो कि रिपोर्ट का स्तर ही गिर जाए । आवश्यकता पड़ने पर पाद टिप्पणी (फूटनोट) का भी प्रयोग किया जाना चाहिए।
- शोध की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता को बनाए रखने के लिए शोध में प्रयुक्त विधियों और तकनीकों का उल्लेख विस्तार से किया जाए। इसके अलावा इस बात का विवरण भी दिया जाना चाहिए कि इस विधि अथवा तकनीक का प्रयोग ही क्यों किया गया? इसके पीछे कौन-सा वैज्ञानिक तर्क है?
- रिपोर्ट लेखन को कुछ यांत्रिक उपकरणों की सहायता से अधिक उपयोगी बनाया जा सकता है। इसमें पाद टिप्पणी, उप-शीर्षक, सारणी, फोटो, रेखाचित्र, मानचित्र आदि यांत्रिक उपकरणों की मदद से और भी प्रभावी बनाया जा सकता है।
- रिपोर्ट में शोध अध्ययन क्षेत्र का विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया जाना चाहिए। साथ ही अध्ययन की कमियों को भी उल्लेखित किया जाना चाहिए। इसके अलावा भविष्य के शोध कार्य के लिए कुछ दिशा-निर्देशों को भी शामिल करना चाहिए।

- शोध को वस्तुनिष्ठ स्वरूप प्रदान करने के लिए आवश्यक है कि रिपोर्ट में सांख्यिकी का प्रयोग किया जाय। साथ ही सांख्यिकीय सीमाओं का विवरण भी किया जाना चाहिए।
- शोधकर्ता को रिपोर्ट लेखन के पूर्व ही रिपोर्ट की रूपरेखा निर्मित कर लेनी चाहिए। इससे वह भ्रमित नहीं होगा।

3.6 सारांश

शोध में रिपोर्ट की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण होती है। शोध की प्रामाणिकता और विश्वसनीयता के लिए यह आवश्यक ही कि रिपोर्ट लेखन के कार्य को संजीदगी और सादगी से किया जाय। इस इकाई में शोध में रिपोर्ट की आवश्यकता और उपयोगिता पर चर्चा प्रस्तुत की गई है। रिपोर्ट के लिए आवश्यक शर्तों के बारे में भी विवेचन किया गया है।

3.7 बोध प्रश्न

प्रश्न 1: शोध रिपोर्ट क्या है? इसके उद्देश्यों की विवेचना कीजिए।

प्रश्न 2:एक उत्कृष्ट रिपोर्ट की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।

प्रश्न 3: रिपोर्ट की अंतर्वस्तु स्पष्ट कीजिए।

प्रश्न 4: रिपोर्ट के लिए आवश्यक प्रमुख शर्तें क्या हैं?

3.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

रूबिन, ए. एवं बेबी, ई. (1989). *रिसर्च मेथडोलोजी फॉर सोशल वर्क*. कैलिफोर्निया: बेलमोंट वेड्सवर्थ

बेकर, एल.टी. (1988). डूइंग *सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क: मैग्रा हिल

कार्लिंगर, एफ़.आर. (1964). *फाउंडेशन ऑफ बिहेविरल रिसर्च*. दिल्ली: सुरजीत पब्लिकेशन्स

ब्लेक, जे.ए. एवं चेम्पियन, डी.जे. *(1976). मेथड्स एंड इशूज इन सोशल रिसर्च* न्यूयॉर्क: जोहन वेली

मोनेटी, डी.आर. (1986). *अपलाइएड़ सोशल रिसर्च: टूल फॉर द ह्यूमन सर्विस* शिकागो: हॉल्ट

लालदास, डी.के. (2000). *प्रेक्टिस ऑफ सोशल रिसर्च: अ सोशल वर्क पर्सपेक्टिव*. जयपुर: रावत पब्लिकेशन्स

इकाई -4 संदर्भ शैली

इकाई की रूपरेखा

4.0 उद्देश्य
4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्धरण (Citation)एवं संदर्भ(Reference)क्या है
4.3 संदर्भ शैली
    4.3.1 नोट व्यवस्था (Note system)
    4.3.2 कोष्ठबद्ध व्यवस्था (Parenthetical system)
4.5 प्रमुख संदर्भ शैलियाँ
    4.5.1 एपीए (APA)
    4.5.2 एमएलए (MLA)
    4.5.3 शिकागो (Chicago)
    4.5.4 वैंकुवर (Vancouver)
    4.5.5 हार्वर्ड (Harvard)
4.6 एपीए शैली
4.7 सारांश
4.8 बोधप्रश्न
4.9 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

ज्ञान शांति मैत्री

4.0 उद्देश्य

इस इकाई का अध्ययन करने के बाद आप -

1) संदर्भ शैली के अर्थ से परिचित हो सकेंगे
2) विभिन्न संदर्भ शैलियों का परिचय प्राप्त कर सकेंगे
3) एपीए संदर्भ शैली का विस्तृत वर्णन कर सकेंगे

4.1 प्रस्तावना

उद्धरण किसी भी अकादमिक लेखन का अनिवार्य एवं महत्वपूर्ण भाग होता है। यह स्पष्ट करता है कि शोधकर्ता ने अपने लेखन के लिए किस-किस पूर्व उपस्थित साहित्य की सहायता ली है? संदर्भ अकादमिक लेखन को प्रामाणिकता भी प्रदान करता है। उद्धरण यह भी बताता है कि शोधकर्ता ने अपने कार्य के लिए कितना परिश्रम किया है? अपने विषय को समझने और प्रस्तुत करने के लिए पूर्व उपस्थित

मान्य साहित्य का कैसे चिंतन – मनन किया है? उन्हें किस तरह से उद्धृत किया है? एक अच्छे शोध आलेख/पुस्तिका/शोध में संदर्भ गुणात्मकता की कसौटी भी माना जाता है।

4.2 उद्धरण(Citation) एवं संदर्भ(Reference) क्या है ?

उद्धरण किसी भी लेखन में प्रयुक्त प्रकाशित एवं अप्रकाशित स्रोत का संदर्भ(reference) है। उद्धरण एक तरह से एल्फान्यूमेरिकल रूप में मूल स्रोत का संक्षिप्त रूप होता है अर्थात इसमें अंग्रेजी के शब्द एवं संख्याएं होती है जिन्हें किसी अकादमिक रचना में प्रयुक्त किया जाता है। शोध में लिखते समय इसका संक्षिप्त रूप लिखा जाता है और अंतिम में पुस्तकों की सूची (बिबलियोग्राफी) में इसका पूरा उल्लेख दिया जाता है। जहाँ से कोई भी जिज्ञासु उस मूल स्रोत की पूरी जानकारी प्राप्तकर सकता है। अत: उद्धरण शोध के बीच के संदर्भ एवं बिबलियोग्राफी के संयुक्तरूप का नाम है।

संदर्भ की आवश्यकता निम्नलिखित कारणों से होती है-

1) उन मूल स्रोतों के प्रति आभार प्रदान करना जो लेखक/लेखिका के स्वयं के नहीं है।
2) मूल स्रोतों की जानकारी पाठकों को प्रदान करना और पाठक को यह तय करने देना कि लेखक/लेखिका ने जिस रूप में स्रोतों को अपने दावे के पक्ष में लिया है, वे स्रोत वैसे ही है।
3) अकादमिक ईमानदारी के लिए।
4) साहित्य चोरी (प्लॅगरिज्म) से बचने के लिए।
5) शोध विषय से संबंधित साहित्यकी विविधता और गहनता की जानकारी पाठक को देना।

संदर्भ के प्रमुखत: **तीन** मुख्य तत्व (Key elements) होते हैं-

1) पाठ अंतर्गत संदर्भ (In-text Reference) जो बताता है कि प्रस्तुत निश्चित अवधारणा, शब्दावली, विचार किसी अन्य का है।
2) पाठ अंतर्गत संदर्भ की पूरी जानकारी प्रदान करने वाले संदर्भों की पूरी सूची(Reference list)
3) संदर्भ सूची को समाहित करते हुए शोध विषय की व्यापक जानकारी देने वाले अन्य साहित्यों को शामिल करती हुई साहित्य सूची (बिबलियोग्राफी)।

4.3 संदर्भ शैली

सामान्यत: दो तरह की संदर्भ व्यवस्थाएं प्रचलित है-

4.3.1 नोट व्यवस्था (Note System) : इसमें पाठ में व्यक्त किए गए संदर्भ संख्याक्रम में पाद टिप्पणी (Foot notes) या अंतिम टिप्पणी (End notes) के रूप में प्रस्तुत होते है-

- पाद टिप्पणी (Foot notes) : इसमें पृष्ठ के अंत में टिप्पणियां क्रमानुसार दी जाती है।

- अंतिम टिप्पणी (End notes) : यह संपूर्ण आलेख के अंत में दी जाती है। इसे चाहे तो आलेख के अंत में या अगले नए पृष्ठसे दिया जाता है।

सामान्यत: नोट व्यवस्था में शिकागो (Chicago)एवं एमएलए(MLA) शैलियां प्रयुक्तकी जाती है।

4.3.2 कोष्ठकबद्ध व्यवस्था (Parenthetical System) : इसे हार्वर्ड व्यवस्था/लेखक-दिनांक व्यवस्था भी कहा जाता है। इस व्यवस्था में आंशिक संदर्भ रहता है जो पाठ के अंतर्गत कोष्ठक रूप में दिया जाता है, जैसे - लेखक-दिनांक/वर्ष। पूरा संदर्भ दस्तावेज के अंत में दिया जाता है।
सामान्यत: कोष्ठकबद्ध व्यवस्था में एपीए, हार्वर्ड (Harvard) एवं वैंकुवर (Vancouver) शैलियाँ प्रयुक्त की जाती है।

4.4 प्रमुख सदंर्भ शैलियाँ

संपूर्णअकादमिक जगत में विभिन्न प्रकार की संदर्भ शैलियाँ प्रयुक्तकी जाती है। विभिन्न ज्ञानानुशासनों ने अपने लिए या तो नई संदर्भ शैली आवश्यकतानुसार विकसित की है या पहले से प्रयुक्त संदर्भ शैली को स्वीकार किया। एक और तथ्य यह भी है कि विभिन्न ज्ञानानुशासनों की संदर्भ शैली एक भी हो सकती है। प्रमुख विभिन्नसंदर्भ शैलियों का उल्लेख निम्नानुसार है :

4.4.1 एपीए (अमेरिकन साइकॉलिजकल एसोशिएसन) – यह अमेरिकी मनोविज्ञानी संघ द्वारा प्रयुक्त संदर्भ शैली है। प्रमुखत मनोविज्ञान जर्नल्स में प्रयुक्त होने के बावजूद भी इसे समाज विज्ञान, शिक्षा, व्यवसाय प्रबंधन एवं अन्यज्ञानानुशासनों में स्वीकार किया जाता है।

उदाहरण – निल्सन, रॉन (2005). द *लिटिल ग्रीन हैंडबुक*. मेलबोर्न : स्क्राइब पब्लिकेशन्स.

4.4.2 एमएलए (मॉडर्न लैंग्वेज एसोसिएशन ऑफ अमेरिका) – इसे मुख्यत: अंग्रेजी एवं मानविकी (साहित्य, तुलनात्मक साहित्य, संस्कृति अध्ययन, आलोचना, भाषा) जैसे ज्ञानानुशासनों में प्रयुक्त किया जाता है।

उदाहरण – जैकब्स, एलन. द प्लेजर्स ऑफ रीडिंग इन द एज ऑफ डिस्ट्रेक्शन. ऑक्सफोर्ड : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस. 2011

4.4.3 शिकागो – इसे कभी कभार टर्बियन (Turbine) शैली भी कहा जाता है। इसका स्रोत ''***शिकागो मैनुअल ऑफ स्टाइल***'' है। इस मैन्युअल का सरल संस्करण ''*ए मैनुअल फॉर राइटर्स ऑफ टर्म पेपर्स, थिसिस एंड डिस्सर्टेशन्स*'' है जिसे केट टर्बियन ने लिखा। शिकागो संदर्भ शैली समाज विज्ञान(इतिहास, राजनीति विज्ञान आदि) एवं थियोलॉजी में प्रयुक्तहोती है।

उदाहरण – माइकल पॉलेन, द ऑम्निवोर्स डिलिमा : ए नेचुरल हिस्ट्री ऑफ फोर मिल्स (न्यूयार्क : पेंगुइन, 2006)

4.4.4 वैंकुवर – इस संदर्भ शैली को ***'द इंटरनेशनल कमिटी ऑफ मेडिकल जर्नल एडिटर्स'*** द्वारा बनाया गया। 1978 में इस कमिटी ने "***यूनिफॉर्म रिक्वायरमेंट फॉर मैन्युस्क्रीप्ट सबमिटेड टू बायोमेडिकल जर्नल्स***" नामक दिशानिर्देशिका बनाई। इसी से वैंकुवर संदर्भ शैली बनी। यह मुख्यतः चिकित्सा विज्ञान (मेडिकल साइंस) में प्रयुक्त होती है।

उदाहरण – बिक, जे. *.101 थिंग यू नीड टू नो अबाउट इंटरनेट लॉ* न्यूयार्क : श्री रिवर्स प्रेस ; 2000

4.4.5 हार्वर्ड – इस संदर्भ शैली का स्रोत हार्वर्ड लॉ रिव्यू एसोसिएशन द्वारा प्रकाशित "***द ब्लू बुक : ए यूनिफॉर्म स्टाइल ऑफ साइटेशन***" है। इस संदर्भ शैली का मुख्यतः प्रयोग कानून, प्राकृतिक विज्ञानों, समाज एवं व्यवहार विज्ञान और औषधि विज्ञान में किया जाता है।

उदाहरण – पेटरसन, जे. (2005). *मैक्सिमम राइड*. न्यूयार्क : लिटिल ब्राउन .

संपूर्ण अकादमिक जगत में प्रयुक्त होने वाली ये प्रमुख संदर्भ शैलियाँ है। अब हम इनमें से एपीए संदर्भ शैली पर विस्तार से चर्चा करेंगे।

4.5 एपीए संदर्भ शैली

इस अनुभाग में हम यह देखेंगे कि एपीए शैली का प्रयोग लेखन में किस तरह किया जाता है? हर शैली की तरह एपीए शैली में उद्धृत करने का एक मानक तरीका होता है। इस तरीके को अमेरिकन साइकॉलॉजिकल एसोसिएशन द्वारा ***'पब्लिकेशन मैनुअल ऑफ द अमेरिकन साइकॉलॉजिकल एसोसिएशन'*** के नाम से प्रकाशित किया जाता है। वर्तमान में इस मैनुअल का **छठवां संस्करण** प्रयोग में आ रहा है जिसे चार वर्षों की कड़ी मेहनत के बाद जुलाई 2009 से लागू किया गया। इसे निम्नानुसार बताया जा सकता है (इग्नू : 2014; The university of toledo : 2015; APA:2011)-

	संदर्भ ग्रंथ सूची	पाठ के अंतर्गत उद्धरण (Citations in text)
किताब मुख्य लेखक/लेखिका	निल्सन, रॉन (2005), द *लिटिल ग्रीन हैंडबुक*, मेलबोर्न : स्क्राइब पब्लिकेशन्स.	• *अगर लेखक का नाम सीधा आता है-* निल्सन (2005) ने इस प्रक्रिया को.......... • *अगर लेखक का नाम सीधा नहीं*

		आता है तो - एक अन्य रिपोर्ट (निल्सन: 2005)
दो लेखक/लेखिका	मेक्केंडलेस, बी.आर. एवं इवांस, इ.डी. (1973). *चिल्ड्रेन एंड यूथ : साइकोसोशल डवलपमेंट*. हिंसडेल, आईएल : ड्राइडेन प्रेस.	• *अगर लेखक द्वय का नाम सीधा आता है तो* - मेक्केंडलेस एवं इवास (1973) • *अगर उल्लेख सीधे नहीं आता है तो* - एक अन्य प्रवृत्ति की ओर इशारा कुछ लेखकों ने किया (मेक्केंडेलेस एवं इंवास1973)
तीन या तीन से ज़्यादा लेखक/लेखिका	बेक्सटर, क्रेग, मलिक, वाई.के., केनडी, एच. के., एवं ओबेर्स्ट, आर.सी. (1988). *गवर्नमेंट एंड पालिटिक्स इन साउथ एशिया*. लाहौर : वेनगार्ड बुक्स.	• *पहली बार*-(बेक्सटर, मलिक, केनडी व ओवेर्स्ट, 1988, पृ.122) • *इसके बाद*- (बेक्सटर एवं अन्य, 1988)
संपादित पुस्तक	पावर्स, रोजर एवं कोगेल, विलियम (संपा.). (1997). *प्रोटेस्ट, पावर एंड चेंज: एन इन साइक्लोपीडिया ऑफ नानवायलेंट एक्शन फ्रॉम एक्ट-अप टू वीमन्स सफरेज*, न्यूयार्क एवं लंदन: गार्लेंड.	• उल्लेख-(पावर्स व वोगेल, 1997, पृ.33) *या* • (पावर्स व वोगेल, 1997)
संपादित पुस्तक में अध्याय	शॉर्प, जीन, ए स्टडी ऑफ द मिनिंग ऑफ नॉन वायलेंस (जी. रामचंद्रन एंव टीके. महादेवन)(संपा.). (1971). *गांधी : हिल रिलिवेंस फॉर हिज टाइम्स* (21-66). बर्कले : वर्ल्ड विदाउट वॉर.	*उल्लेख* (शॉर्प, 1971, पृ.17) या (शॉर्प, 1971)
समूह लेखक/लेखिका का प्रकाशन	एपीए(अमेरिकन साइकाट्रिक एसोसिएशन) (1980). *डायनोस्टिक एंड स्टेस्टिकल मैन्युअल ऑफ मेंटल डिसआर्डर्स*. वाशिंगटन, डीसी:एपीए.	*उल्लेख* – (एपीए, 1980)*या* (एपीए, 1980,पृ.3)
सरकारी प्रकाशन	इंडिया:अटामिक एनर्जी कमीशन (ए ई सी) (1970).*अटॉमिक एनर्जी एंड स्पेस रिसर्च:ए प्रोफाईल फॉर द डिकेड1970-*	*उल्लेख* (ए ई सी, 1970) *या* (ए ई सी, 1970 पृ. 2)

	1980.बाम्बे:एईसी.	
कान्फ्रेंस प्रोसिडिंग प्रकाशित	सेन, अमर्त्य (1980). इक्वालिटी ऑफ व्हाट, द *टन्नेर लेक्चर्स ऑन हयूमन वैल्यूज* (एस. मेक्मुरिन) (संपा.) खंड 1. सॉल्ट लेकसिटी : यूनिवर्सिटी ऑफ उताह प्रेस.	*उल्लेख* (सेन, 1980, पृ.110)*या* (सेन, 1980)
बहुखंडीय काम	ओ' डॉन्नेल, जी.एवं शिमटर,पी. (संपा.). (1986), *ट्रांजिक्शन फ्रॉम अथोरिटेरियन रूल : प्रास्पेक्ट्स फॉर डेमोक्रेसी* (खंड 1-4).ब्लाटीमोर : जॉन हापकिंस यूनिवर्सिटी प्रेस.	*उल्लेख* (ओ'डॉन्नेल एवं शिमटर, 1986, खंड 2, पृ. 159-160) *या* (ओं, डॉन्नेल एवं शिमटर, 1986)
विश्वकोश	मेडले, डी.एम. (1983) टीचर इफेक्टिवनेस, *इन साइक्लोपीडिका ऑफ एज्युकेशनल रिसर्च* (खंड 4, पृ. 1894-1903). न्यूयार्क : द फ्री प्रेस.	*उल्लेख* (मेडले, 1983, पृ.1895) *या* (मेडले, 1983)
जर्नल आलेख एक या दो लेखक/लेखिका	हैरिंगटन ए.जे. (1985). क्लासरूम एज फॉरम्स फॉर रिजनिंग एंड राईटिंग *कॉलेज कम्पोजिशन एंड कम्युनिकेशन*. 3614, पृ. 404-413.	*उल्लेख* (हेरिंगटन,1985)*या*(हेरिंगटन,1985,पृ. 405)
जर्नल आलेख तीन या ज्यादा लेखक/लेखिका	एंडरसन, ए., डगलस, के., लॉटन, जी एवं जे. वेब (2001), जजमेंट डे : देअर ऑर ओनली एंजेल्स एंड डेविल्स. ग्लोबल इवायरमेंट सप्लीमेंट. *न्यू साइंटिस्ट* 2288, पृ. 1-23.	*उल्लेख* • *पहली बार-सभी का नाम* एंडरसन, डगलस, लॉटन, वेब, 2001, पृ.19 • *बाद में* -एंडरसन एवं अन्य, 2001 पृ. 19
जर्नल आलेख (इलेक्ट्रॉनिक) डी ओ आई के साथ (मुद्रित जर्नल की हूबहू इलेक्ट्रॉनिक	शुल्ट्ज, जे. (2006). इंटीग्रेटेड एक्पोजर थेरेपी एंड एनालिटिक थेरेपी इन ट्रामा ट्रीटमेंट. *अमेरिकन जर्नल ऑफ ऑर्थोसाइक्रिटरी*, 76(4) 482-488. डीओआई : 10.1037/0002-9432.76. 4.482	*उल्लेख* (शुल्ट्ज, 2006) *या* (शुल्ट्ज, 2006, पृ. 487)

प्रति)		
जर्नल आलेख (इलेक्ट्रॉनिक)	टॉफलर, एल्विन एवं टॉफलर, हैदी (2003), व्हाय द यूनाइटेड नेशन्स इज क्रेकिंग एज द फ्यूचर अराइव्ज. पैरालेक्स : द *जर्नल ऑफ इथिक्स एंड ग्लोबलाइजेशन*. http://www.parallaxonline.org/tofflerl.html से 20 अक्टूबर 2004 को पुनर्प्राप्त.	(टॉफलर व टॉफलर, 2003)
वेबपेज	रेमन एच. मलफोर्ड लाइब्रेरी,द यूनिवर्सिटी ऑफ टो लेडो हेल्थ, साइंस कैम्पस (2008). *इन्सट्रक्शन्स टू ऑथर्स इन द हैल्थ साइंस.* http;//mulford.mco.edu/instr/ से 17 जून 2008 को पुनर्प्राप्त.	(आरएचएम लाइब्रेरी, 2008)
वार्षिक रिपोर्ट (इलेक्ट्रॉनिक)	पियर्सन पीएलसी (2005) *रीडिंग अलाउड: एनुअल रिव्यू एंड समरी फाइनेंशियल स्टेटमेंट्स 2004*.http://www.pearson.com/investor/ar 2004/pdfs/summary_report_2004.pdf से पुनर्प्राप्त.	(पियर्सन पीएलसी, 2005)
अखबार आलेख बिना लेखक/लेखिका	ऑलसेट फॉर प्राइवेटली-फंडेड मेन्ड स्पेस फ्लाइट्स (2003, सितम्बर 28) द *हिंदू* P.8 जहाँ लेखक/लेखिका का नाम न हो, वहाँ आलेख के महत्वपूर्ण प्रथम शब्दों को ही उद्धरण बनाया जाता है	(‘आलसेट’, 2003. P.8) *या* (‘आलसेट, 2003)
पत्रिकाएं आलेख	खिलनानी, सुनील (2004, नवंबर 15). अमेरिकन्स आर इन पॉलिटिकल ब्लाइंडनेस. *आउटलुक*, 28-31.	(खिलनानी, 2004, पृ. 30) (खिलनानी, 2004)
टेलिविजन सीरिज	बीबीसी (1980). *यस मिनिस्टर*. यूके : बीबीसी.	(बीबीसी, 1980)
ओडियो,	मास जे.बी (निर्माता) एवं ग्लूक डी.एच.	(मॉस एंव ग्लूक, 1979)

ज्ञान शान्ति मैत्री

विजुअल मीडिया एवं स्पेशल इन्सट्रक्शनल मेटेरियल। इसमें- ऑडियोरिकॉर्ड, फ्लैशकार्ड, मोशनपिक्चर्स, विडियो रिकार्डिग, स्लाइड, किट, चार्ट, गेम, पिक्चर, ट्रासपरेन्सी, फिल्म स्ट्रीप आदि गैर-पुस्तकीय संसाधन आते हैं।	(निर्देशक) (1979). *डीपर इन हिपनोसिस* (मोशन पिक्चर) एंगलवुड क्लिफ न्यूजर्सी :प्रिंसटन –हॉल.	
वेबसाइट	यूनाइटेड नेशन्स डवलपमेंट प्रोग्राम (यूएनडीपी) (2003). *हयूमन डवलपमेंट रिपोर्ट.* http://www.undp.org/hdr_2003 से 20 अक्टूबर 2004 को पुनर्प्राप्त.	(यूएनडीपी, 2003, पृ.46) (यूएनडीपी, 2003)
साक्षात्कार	असंकलित साक्षात्कार को वैयक्तिक संवाद के रूप में बताया जा सकता है	(माधवन नैयर, वैयक्तिक संवाद, अगस्त 12, 2004)
किसी अन्य किताब के द्वितीयक स्रोत का उल्लेख		पाठ में दोनों संदर्भो का उल्लेख होगा परन्तु संदर्भ ग्रंथ सूची में जिस किताब से उद्धरण लिया गया है, केवल वही शामिल होगी।

4.6 सारांश

किसी भी अकादमिक एवं शोध प्रकाशन के लिए कुछ निर्धारित मानदण्ड होते हैं। संदर्भ शैली उसका एक महत्वपूर्ण अंग है। विभिन्नअनुशासनों ने अपने विकास के साथ-साथ अपने अनुसार संदर्भ शैलियों को जन्म दिया। आगे चलकर वे अपने विषय के इतर भी अन्य विषयों में स्वीकारी गईं। इस इकाई में हमने कुछ महत्वपूर्ण संदर्भ शैलियों का परिचय प्राप्त किया। एपीए संदर्भ शैली का परिचय प्राप्त करते हुए पाठ के अंतर्गत इस कैसे उद्धृत किया जाए, यह भी हमने जाना।

4.7 बोध प्रश्न

1. संदर्भ की आवश्यकता क्यों होती है?
2. संदर्भ शैली के दोनों प्रकारों को बताइए।
3. प्रमुख संदर्भ शैलियों का उल्लेख कीजिए।

4.8 संदर्भ एवं उपयोगी ग्रंथ

- एपीए (2011). द *पब्लिकेशन मैनुअल ऑफ द अमेरिकन साइकॉलॉजिकल एसोसिएशन* (6वां संस्करण). वाशिंगटन डी.सी. : अमेरिकन साइकॉलॉजिकल एसोसिएशन.
- इग्नू (2014). *हैंडबुक फॉर प्रोजेक्ट वर्क जीपीएस*. नई दिल्ली : इग्नू.
- The university of toledo (2015). https://www.utoledo.edu/library/help/guides/docs/apastyle.pdf
- www.apastyle.org
- https://en.wikipedia.org/wiki/Citation

ज्ञान शांति मैत्री